http://www.jainkosh.org

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[तृतीय भाग]

[प्रवक्ता - अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्यश्री १०५ मनोहर जी वर्णी महाराज]

आप्तकी मीमांसामें देवागम नभोयान देहातिशय व तीर्थंकृत्व मात्रसे आप्तताके अनिर्णयका कथन—यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ है जो कि तत्त्वार्थशास्त्रपर रचित गंधहस्तिमहाभाष्य टीकाका मंगलाचरण रूप है। वहाँ प्रथम ही आप्तदेवको नमस्कार किया गया है। उससे पहिले आप्तके निर्णय करनेमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है। आप्त कौन हो सकता है? इसका निर्णय करना इस ग्रन्थका मूल प्रयोजन है, पूज्य श्री आचार्य समन्तभद्रने अब तक यह बताया कि कोई भगवान आप्त इसलिए नहीं है कि उसके देवागम या आकाश-विहार आदिक विभूतियाँ हैं क्योंकि देवोंका आना आकाश में विहार होना, ये सब बातें तो मायावी पुरुषोंमें भी पाई जाती हैं। अतः देवागम व गमनविहारके कारणसे हे प्रभो! आप महान नहीं हो तथा आपका देहमलमूत्र आदिक से रहित है तथा बाहरमें देवतालोग पुष्पवृष्टियाँ करते हैं इस कारणसे आप महान हो यह बात नहीं है; क्योंकि मलमूत्र स्वेद रहित शरीर रागादिमान देवोंकेभी पाया जाता है जो देवगतिके जीव हैं, उनका वैक्रियक शरीर है, उस शरीरमेंमलमूत्रादिक नहीं हैं। तो दिव्य सत्य शारीरिक महान अतिशय हैं इस कारण भीप्रभु आप हमारे लिए महान नहीं हो। तब इस बीचमें मानों आप्तकी ओरसे किसीने पूछा कि प्रभुने तीर्थ चलाया है इस कारण तो प्रभु महान हैं ना, तो उसके उत्तरमें अभी तीसरी कारिकामें विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है कि तीर्थ चलाने मात्रसे भी प्रभु हम लोगोंके महान नहीं हैं प्रमाणभूत नहीं हैं। यह बात सुनकर जो तीर्थपरम्परा नहीं मानते, केवल एक यज्ञ और श्रुतिवाक्यमें ही विश्वास रखते हैं वे बोल उठे कि धन्य हो समन्तभद्र! आपने बहुत ही उत्तम कहा है नित्यवाद, अनित्यवाद, सुगत, कपिल आदिक जितने भी ये तीर्थ चलाने वाले सम्प्रदाय हैं, इनमें कोई भी आप्त नहीं हो सकता, पुरुष कोई आप्त नहीं हुआ करता, एकश्रुतिवाक्य अपौरुषेय आगम ही प्रमाणभूत है उसकेउत्तरमें बहुत विस्तारसे कहा गया है कि तीर्थंकृत (तीर्थच्छेद) सम्प्रदाय भी चाहे वह नियोगवादी या विधिवादी हों वे सब प्रमाणभूत नहीं है क्योंकि उनके भाषणमें भी परस्परविरोध पाया जाताहै

लौकायतिकत्व, शून्यवाद व सर्वाप्तवादकी भी अप्रमाणता होनेसे वीतराग सर्वज्ञ परमपुरुषमें आप्तपनेकी उत्थानिका प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानने वाले चार्वाकोंका सम्प्रदाय जो कि आज इस मानव लोकमें बहुतायतसे फैला हुआ है और जिसके सिखानेकी भी आवश्यकता नहीं है। भले ही लोग चार्वाकके नामसे न समझते हों लेकिन जो आंखों दिखे वही मात्र तत्त्व है। स्वर्ग, नरक, परमात्मा, आत्मा आदि जो आंखों नहीं दिख सकते हैं वे कुछ नहीं हैं। इस बातको मानने वाला प्राय: सारा ही मानव जगत है। तो ऐसे एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण माननेवालों का सम्प्रदाय भी प्रमाणभूत नहीं है। इस बातको सुनकर शून्यवादीने भी अपनी बात रखी कि ये सब प्रमाणभूत नहीं हैं। न तीर्थ चलाने वालेके सम्प्रदाय प्रमाणभूत हैं, न अपौरुषेय आगम प्रमाणभूत है, न प्रत्यक्ष मात्र प्रमाण मानने वालोंका सम्प्रदाय प्रमाणभूत है। प्रमाण नामक कोई तत्त्व ही नहीं है। न प्रमाण तत्त्व है न प्रमेयतत्त्व है। यों शून्यवादको सिद्ध करने वालोंके प्रति भी संयुक्त बताया गया है कि शून्यवादका मंतव्य भी प्रमाणभूत नहीं है, इसी प्रकार जो सभीको आप्त मानने वाले हैं ऐसे वैनयिक भी प्रमाणभूत नहीं हैं। जब उक्त तृतीय कारिकामें इन सब परस्पर विरुद्ध कथन करने वाले सम्प्रदायोंके प्रमाणभूत पनेका निराकरण किया गया तो उससे यह सिद्ध है कि जिसका वचन परस्पर विरुद्ध नहीं है और जिसकी सिद्धिमें बाधक प्रमाण भी कोई नहीं है ऐसे हे देव ! हे वर्द्धमान देव! आप ही संसारी प्राणियोंके प्रभु हैं क्योंकि दोष और आवरणमें हानि जहाँ अत्यन्त पायी जाती है अर्थात् दोष और आवरणोंका जहाँ रंच भी सद्भाव नहीं है ऐसी स्थिति आपकी है और साक्षात् समस्त तत्त्वार्थोंका परिज्ञान हुआ है इस कारण हे वीतराग सर्वज्ञ वर्द्धमान स्वामी ! आप ही संसारी प्राणियोंके प्रभु हो। इस ही प्रकार अनेक मुनिजनोंने, सूत्राकार आदिकने भी स्तवन किया है। इस तरह समन्तभद्राचार्यके द्वारा आप्तकी प्रमाणताके परीक्षणकी भूमिका निरूपण करनेके बाद अब मानो प्रभुने ही पूछा हो, प्रभुकी ओरसे प्रभुभक्तोंने ही पूछा हो कि मुझमें (प्रभुमें) दोष और आवरणोंकी हानि सम्पूर्णतया आपने कैसे निर्णीत की है ? इस तरह पूछे गये हुए ही मानो आचार्य कहते हैं कि

दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात् ।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥ ४ ॥

दोषों और आवरणोंकी पूर्ण हानि सिद्ध करने वाले अनुमानप्रयोगमें धर्मित्वकी प्रसिद्धिका कथन — कहींपर अर्थात् किसी परम पुरुषमें दोष और आवरणकी हानि निःशेष होती है अर्थात् दोष और आवरण पूर्णतया नष्ट होते हैं अर्थात् कोई परम पुरुष दोष और आवरणोंसे सर्वथा रहित है, क्योंकि दोष और आवरण ये दोनों तारतमभावरूपसे हीन होते हुए देखे जाते हैं। जो चीज तारतमभावसे कम कम होती हुई नजर आती है उसका कहीं सम्पूर्णतया भी अभाव हो जाता है, जैसे कि किसी स्वर्णमें अतरङ्ग और बहिरङ्ग मलका अभाव अपने कारणोंसे हो जाता है। स्वर्णमें किट्ट और कालिमा दोष हो जाया करते हैं। तो जब अनेक स्वर्णोंमें यह नजर आता है कि किसीमें किट्टकालिमा कम है, किसीमें और कम है तो कहीं किट्टकालिमा का पूर्णतया भी क्षय है यह बात सिद्ध होती है और प्रत्यक्ष भी देखनेमें आती है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यहाँ इस अनुमान प्रयोगसे यह सिद्ध किया है कि किसी परम पुरुषमें दोष और आवरणकी हानि सम्पूर्णतया हो जाती है क्योंकि दोष और आवरणकी हानिका अतिशायन पाया जाता है याने दोष और आवरणोंका तारतमभावमें हीयमानपना देखा जाता है, इस अनुमान प्रयोगमें धर्मी है दोष और आवरणकी हानि। धर्मीका लक्षण कहा गया है "प्रसिद्धोधर्मी" जो प्रसिद्ध हो वह धर्मी है। जैसे अनुमान बनाया कि इस पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए धूम होनेसे, तो इसमें धर्मी है पर्वत। जो साध्यका आधार हो उसे धर्मी कहते हैं। साध्यका आधार बनाया जा रहा है पर्वतको। पर्वतमें अग्नि है तो पर्वत वादी और प्रतिवादी दोनोंको सिद्ध होना चाहिए, सो सिद्ध है ही सबको स्पष्ट दिखता है कि यह पर्वत है। जिस पक्षमें साध्य सिद्ध किया जाता है वह पक्षवादी प्रतिवादी दोनोंको अबाधित पसिद्ध होना चाहिए। सो इस कनुमान प्रयोगमें दोषावरणोंकी हानि अर्थात् दोष सामान्य और आवरण सामान्यकी हानि बराबर प्रसिद्ध है, इस कारण यह पक्ष है धर्मी है, इसमें कोई विरोध नहीं है, कैसे समझा लोगोंने कि दोष सामान्य और आवरण सामान्यकी हानि प्रसिद्ध है ? यह समझा है यह निरखकर कि लोगोंमें एक देशरूपसे निर्दोषता पायी जाती है और ज्ञानादिक पाये जाते हैं। दोष न रहनेका ही फल है निर्दोषता आना। और आवरण न होनेका ही फल है ज्ञानादिक होना। तो जब हम लोगोंमें एक देशरूपसे निर्दोषता पायी जा रही है, ज्ञानादिक पाये जा रहे हैं तो इस निश्चयसे यह प्रसिद्ध हो ही जाता है कि दोष सामान्य और आवरण सामान्यकी हानि वास्तविक होती है, क्योंकि कारणके भावमें कार्य नहीं होता है। निर्दोषपना और ज्ञानादिक होना यह इस बातको सिद्ध करता है कि वहाँ दोष और आवरण नहीं हैं। थोड़ी निर्दोषता होना, थोड़ा ज्ञान होना यह सिद्ध करता है कि कुछ अंशोंमें दोष और आवरण नहीं है। तो इस प्रकार 'दोष और आवरण सामाय की हानि होना" यह इस अनुमान प्रयोगमें पक्ष बनाया गया है।

दोषों और आवरणोंकी हानिकी निःशेषताकी साधना—इस अनुमानमें सिद्ध यह किया जा रहा है कि दोषावरणकी हानि किसी पुरुषमें निःशेषरूपसे होती है अर्थात् किसी आत्मामें दोषों व आवरणोंकी पूर्णतया हानि है, बिल्कुल अभाव है। यह यहाँ सिद्ध किया जा रहा है। जो वादीको इष्ट हो, वादी प्रतिवादी दोनोंको अबाधित हो, किन्तु प्रतिवादीको जो असिद्ध हो वह साध्य कहलाता है। तो दोष व आवरणकी सामान्य हानि वादी भी मान रहा है, प्रतिवादी भी मान रहा है किन्तु किसी जगह पूर्णतया हानि हो जाती है, दोष और आवरणोंका अभाव हो जाता है, यह यहाँ सिद्ध किया जा रहा है, क्योंकि प्रतिवादीको समग्ररूपसे दोषों व आवरणोंका अभाव होनेके सम्बन्धमें विवाद है। तो इस अनुमान प्रयोगमें दोषावरणकी हानि यह तो पक्ष है और कहीं सम्पूर्णतया (हानि) है यह साध्य है और हेतु दिया गया है यह कि क्यों कि इसका अतिशायन पाया जाता है। अर्थात् हानिकी अधिकता पायी जाती है। कहीं हानि कम है, किसी पुरुषमें हानि अधिक है, किसी पुरुषमें उससे भी अधिक है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह सिद्ध है कि कहीं हानि पूरेरूपसे भी है। इस अनुमान प्रयोगमें दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे किसी स्वर्ण पाषाण आदिकमें किट्टकालिमा आदिक बहिरङ्ग अन्तरङ्ग दोषों का क्षय पूर्णतया है, सो यह दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है। अनुमान प्रयोगमें दृष्टान्त वह दिया जाता है जो वादी और प्रतिवादी दोनोंके द्वारा सम्मत हो। दृष्टान्त एक असिद्ध बात को सिद्ध करनेके लिए माध्यम होता है। सो ये दृष्टान्त वादी प्रतिवादी दोनोंके प्रसिद्ध है। तो जैसे स्वर्ण पाषाण आदिकमें किट्टकालिमाकी हानि बढ़ती हुई देखी गई हैं तो कहीं सम्पूर्णरूपसे भी हानि है यह बात भी देखी जाती है, इसी कारण दोष और आवरणोंकी हानि भी बढ़-बढ़कर जब हम लोगोंमें दोष आवरणकी हानि अधिक प्रतीत हो रही है तो यह किस परम पुरुषमें सम्पूर्णतया है इस बातको सिद्ध करती है। इसका भाव यह है कि रागादिक भाव होना और पदार्थोंका ज्ञान न होना याने अज्ञानादि होना दोष है? ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय व अन्तराय ये आवरण हैं तो जब भावोंमें यह बात देखी जा रही है कि रागादिक दोष और ज्ञानावरणादि आवरण ये किसीमें कम हैं किसीमें और कम हैं। जब कमतीका अतिशय देखा जा रहा तो उससे यह सिद्ध होता कि कोई परम पुरुष, कोई आत्मा ऐसा भी होता कि जिसमें रागादिक दोष रंचमात्र भी नहीं होते और ज्ञानावरणादि भी रंचमात्र नहीं रहते। इस कारिकामें यह सिद्ध किया जा रहा है कि कोई पुरुष होता है ऐसा जो वीतराग और सर्वज्ञ हो, इसकी सिद्धि इस कारिकामें करनेके बाद अगली कारिकामें यह बताया जायगा कि हे वर्द्धमान प्रभु सकल परमात्मन् हे अरहंत देव! ऐसी आप्तता आपमें ही होता अतः आप ही आप्त हो और इसकी कारण पूर्वक सिद्धि की जायगी। यहाँ सामान्यतया सिद्ध किया जा रहा है कि कोई आत्मा ऐसा अवश्य है जिसमें अज्ञान रागादिक दोष रंचमात्र भी नहीं रहते।

दोष और आवरण दोनोंकी भिन्नस्वभावताका वर्णन—अब यहाँ कोई शंका करता है कि इस अनुमान प्रयोगमें जो यह कहा जा रहा है कि दोष और आवरणकी हानि कहीं सम्पूर्णतया है तो वह दोष नाम किसका है? जो आवरणसे भिन्न स्वभाव रखता हो। हम तो ऐसा ही समझते हैं कि इस जीवमें जो रागादिक दोष हैं वे ही सब आवरणका काम करते हैं। इस दोषके कारण ज्ञान आनन्द पूर्णतया प्रकट नहीं हो पाते हैं। तो आवरणसे भिन्न कोई स्वभाव रखता हो ऐसा दोष नामक क्या पदार्थ है? इस शंकापर कहते हैं कि पहिले तो शब्दरचनापरसे ही उत्तर लीजिए। सिद्धान्तकी बात भी आगे कहेंगे। इस कारिकामें दोषावरणयोः यह शब्द देकर द्विवचनसे सिद्ध किया है कि दोष और आवरण ये दोनों भिन्न स्वभाव वाले भाव है। द्विवचन देनेकी सामर्थ्यसे यह जानना चाहिए कि अज्ञान आदिकको दोष कहते है। अज्ञान रागद्वेष कषाय ये जो जीवके विभाव हैं उनको दोष कहते है और वह दोष स्वपरपरिणाम हेतुक है याने अपने और परपदार्थके परिणमनके हेतुसे है। अर्थात् अज्ञानादि दोष अपने उपादानसे और अज्ञानावरणादि कर्मके उदयके निमित्तसे होते हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तथा रागादिक भावोंके कारण स्वयं जीवमें भी विचित्र विषय परिणमन होता है और अज्ञान रागादिक दोषके कारण पर पदार्थमें, कर्ममें भी परिणमन होता है रागादिक दोष अपने व परके परिणमनका हेतुभूत भी है। यदि यह अभिमत होता कि दोष ही आवरण है, ऐसा प्रतिपादन करनेकी इच्छा होती या प्रतिपादन किया होता तो दोषावरणयो: ऐसा जो शब्द दिया है यह द्विवचन न दिया जाता। यह द्विवचन प्रयोग जो कि द्वन्द्व समास करनेपर सप्तमीके द्विवचनमें प्रयोग हुआ है, यह द्विवचनका प्रयोग ही सिद्ध करता है कि दोष और और आवरण ये दोनों भिन्न-भिन्न भाव हैं। तो दोषावरणयो: इसमें दए गए द्विवचनकी सामर्थ्यसे यह सिद्ध होता है कि आवरणसे भिन्न स्वभाव है दोषका। आवरण है ज्ञानावरण कर्म और दोष कहलाते हैं रागद्वेष मोह आदिक अज्ञानभाव। अज्ञानभाव तो जीवके विभावपरिणमन हैं, और आवरण कार्माणवर्गणाका विभाव परिणमन है। आवरण अचेतन हैं, वे अचेतनके परिणमन हैं और दोष ये चेतनके परिणमन हैं। दोष स्वयं चेतना स्वरूप नहीं है क्योंकि उसमें स्वयं ज्ञान नहीं पड़ा है लेकिन हैं चेतनके परिणमन। तो द्विवचनकी सामर्थ्यसे यह निश्चित हुआ कि पौद्गलिक ज्ञानावरण आदिक कर्मोंसे, आवरणोंसे भिन्न स्वभाव वाले ही अज्ञान आदिक दोष हैं। उन अज्ञान आदिक दोषोंका कारण है आवरण कर्म और जीवका पूर्व अपना परिणमन। यहाँ उपादान और निमित्त दोनों कारणोंके सम्बन्धमें प्रकाश दिया गया है। वर्तमानमें जीवमें जो रागादिक अज्ञान आदिक दोष हो रहे हैं, इन दोषोंकी उपपत्तिका कारण निमित्त दृष्टिसे ज्ञानावरण आदिक कर्म हैं। उपादान दृष्टिसे उस जीवका उस ही जातिका अपना पहिला परिणमन है। रागद्वेष आदिक संयुक्त जीवके रागद्वेषादिककी उत्पत्ति हो रही है, सो इन रागादिक दोषोंका कारण अपना परिणाम है। यह उपादान रूपसे बात कही गई है, और चूँकि रागादिक दोष आत्माके स्वभावमें नहीं हैं और फिर हो रहे हैं तो उनका निमित्त कारण कोई अन्य है, वे हैं ज्ञानवरण आदिक कर्म।

रागादिक दोषकी केवल स्वपरिणाम हेतुकताकी असिद्धि—यहाँ कोई शंका करता है अथवा क्षणिकवादियोंका यह मंतव्य हो रहा है कि अज्ञान आदिकभाव केवल अपने आत्माके कारणसे होते हैं, उसमें परपदार्थोंका कारण नहीं है। ऐसा मंतव्य रखनेका प्रयोजन यह है कि यदि रागादिक दोषोंकी उत्पत्ति होनेक कारण आवरणको, ज्ञानावरण आदिक कर्मोंको मान लिया जाय तो इसमें एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें कार्य कारण सम्बन्ध जुट जायगा, किन्तु क्षणिकवादियोंके कार्य कारण भाव नहीं माना गया है। जहाँ वस्तु क्षण-क्षणमें अपना उत्पाद व्यय कर रहे हैं वहाँ एक दूसरेके निमित्तकी बात कहाँ है? अतएव यह शंका की जा रही है कि जीवमें जो राग-द्वेष अज्ञान आदिक भाव होते हैं वे अपने ही परिणामके हेतुसे होते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शका रखना अयुक्त है क्योंकि यदि अज्ञान आदिक दोष अपने ही परिणाम के कारण होते हों तो यह फिर अनित्य नहीं रह सकता जो बात अपने ही स्वरूपके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण होती हो वह कदाचित् रहे, कदाचित् न रहे, ऐसा कैसे हो सकता है ? जो अपना स्वरूप है वह तो सदा ही रहेगा, लेकिन ये रागादिक भाव कादाचित्क हैं, कभी हुए कभी मिट गए, नये-नये होते हैं। ये रागादिक दोष होते हैं और होकर मिट जाते हैं। इससे सिद्ध है कि रागादिक भाव निज आधारभूत वस्तुके स्वके परिणमन मात्र हेतुसे नहीं है। जो अपने ही परिणामके हेतुसे होता है वह कादाचित्क नहीं हो सकता। जैसे जीवका जीवत्व आदिक स्वरूप। जीवका जीवत्व कादाचित्क नहीं है, क्योंकि जीवका वह स्वरूप है, नित्य है। तो इस प्रकार रागादिक भाव जीवका स्वरूप नहीं। अतः सिद्ध है कि रागादिक दोष जीवके मात्र अपने परिणामके कारण नहीं हुआ करते, उनके होनेमें स्व और पर दोनोंका परिणाम कारण है।

अज्ञानादि दोषमें केवल परपरिणामहेतुकताका अभाव—अब यहाँ सांख्यके अनुयायी शंका करते हैं कि अज्ञान आदिक दोष पर पदार्थोंके परिणमनके कारणसे ही होते हैं, ऐसा मान लीजिए। जो रागद्वेषादिक विकार होते हैं है आवरण कर्मके कारणसे होते हैं, ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है ? ऐसा माननेपर वे विकार कादाचित्क हैं, इससे भी विरोध नहीं आता, क्योंकि विवरणके हेतुसे हुये हैं। औपाधिक हैं, अतएव वे रागादिक दोष कादाचित्क रहेंगे। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि अज्ञान आदिक दोषोंसे मात्र परपरिणाम हेतुक कहना भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि यदि रागादिक दोष अपने योग्य उपादानसे न हों और केवल कर्मके परिणमनोंके कारणसे ही हों तो मुक्त आत्माओंके भी रागादिक दोषोंका प्रसंग हो जायगा, क्योंकि कर्म तो सर्वत्र भरे पड़े हैं और कर्म ही जीवके रागादिक दोषोंको उत्पन्न करते हैं, तब कर्म मुक्त आत्माओंके भी रागादिक दोष उत्पन्न करदें, लेकिन ऐसा तो नहीं है। निर्णीत बात यही है कि समस्त कार्य उपादान और सहकारी कारणकी सामग्रीसे जन्य होनेके रूपसे माने गए हैं अर्थात् प्रत्येक कार्य अपने उपादान कारण और सहकारी सामग्री याने निमित्त कारण हेतुसे उत्पन्न होते हैं। इसमें उपादान कारण तो वह है जो कार्यरूप परिणमता है। कार्य होनेपर भी उपादानभूत द्रव्य उसमें रहता है अर्थात् उपादान कारणभूत पदार्थमें उस काल कार्य अभेदरूपसे है, किन्तु सहकारी सामग्रीका कार्यमें कार्यके आधारभूत पदार्थमें अत्यन्ताभाव है।

दृष्टान्त व विवरण सहित उपादान, निमित्त, निमित्तनैमित्तिक भाव व वस्तुस्वातन्त्र्यका दिग्दर्शन—जैसे मिट्टीसे घड़ा बनाया गया तो उस घड़ेका उपादान कारण तो पूर्वपर्याय संयुक्त वह मिट्टी है और निमित्त कारण, सहकारी सामग्री कुम्हार, चक्र, दण्ड आदिक अनेक हैं। अब इनमेंसे यदि सहकारी सामग्री न हो तो केवल मिट्टीसे ही स्वयं घड़ा न बन जायगा और उपादान कारण मिट्टी है लेकिन सहकारी सामग्री वहां न हो तो भी घड़ा न बन सकेगा, ऐसा इसमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव होनेपर भी वस्तुस्वरूपसे देखा जाय तो कार्यका जो उत्पाद

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुआ है यह उपादानभूत द्रव्यमेंसे हुआ है, सहकारी सामग्रीसे कार्य नहीं बना, लेकिन उपादानका ऐसा परिणमन स्वभाव है कि यदि वह विभावरूप परिणमता है तो वह किसी पर उपाधिका आश्रय पाकर परिणमता है, जिसे स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि निमित्तको पाकर उपादान अपने विभाव वाला होता है। ऐसा होना उपादानभूत द्रव्यका परिणमन स्वभाव ही है। निमित्तभूत कारण अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादानमें सौंपता नहीं है। सहकारी सामग्रियोंका उपादानभूत द्रव्यमें अत्यन्ताभाव है, इतनेपर भी निमित्त नैमित्तिक भावकी व्यवस्था युक्तिसंगत है और इस ही तरहकी अनेक कार्योंमें प्रतीति भी हो रही है। तब यह सिद्ध हुआ कि दोष जो जीवमें उत्पन्न होते हैं वे स्व और परके परिणामके हेतुसे होते हैं। रागादिक दोष उत्पन्न हुए तो पूर्वविभाव दशायुक्त जीव तो उपादान कारण है और राग प्रकृति का उदय निमित्त कारण है। साथ ही जो विषयभूत पदार्थ उसके उपयोगमें आयें वे आश्रयभूत हैं। इस प्रकार कर्मोदयका निमित्त पाकर बाह्य विषयोंका आश्रय करके जीवमें रागादिक दोष उत्पन्न होते हैं। तो यह सिद्ध हुआ कि जीवके अज्ञान आदिक दोष स्वपर परिणामहेतुक हैं, कार्य होनेसे। जैसे दाल पकायी गई तो पाकरूप कार्य में वह दाल स्वयं उपादान कारण है। उस दालमें योग्यता थी सामग्री पाकर पकनेकी तो वह पक गयी, अन्यथा जैसे कुरडू मूंगका दाना जो कि कभी सीझता ही नहीं है उसे कितनी ही देर बटलोहीमें रखा जाय वह कंकड़ोंकी भांति ज्योंकी त्यों रहती है। अन्तर क्या रहता है कि उस दालके दानेमें पकनेकी योग्यता ही नहीं है तो जैसे दाल पकी तो उपादान कारण तो वह स्वयं दाल है और निमित्त कारण अग्नि है। तो जैसे ये सब लौकिक कार्य स्व और परके परिणामके कारणसे होते हैं, उपादान और निमित्त दोनों हेतुवोंकी समग्रतासे होते हैं इसी प्रकार जीवके रागादिक दोष भी स्व और परके परिणामके हेतुसे होते हैं।

परस्पर कारणकार्यभावकी प्रसिद्धिके लिये दोष और आवरण दोनों की निःशेष हानिरूप साध्यका कथन—अब यहाँ कोई शंका करता है कि जब यहाँ बताया गया है कि रागादिक दोष आवरणके कार्य हैं तब समस्त आवरणोंकी हानि होनेपर अज्ञान आदिक दोषोंकी हानि तो अपने आप ही सिद्ध हो गयी, क्योंकि कारण के नाश होनेका नियम बना हुआ है। तो आवरणके दूर होनेपर दोष हानि होना सामर्थ्य सिद्ध है और दोषकी हानि होनेपर आवरणकी हानि होना भी सामर्थ्य सिद्ध है। जब रागादिक दोष नहीं रहते हैं तो आवरण भी नहीं रहते हैं। यहाँ पर भी यही हेतु लागू होता है कि कारणोंके नाश होनेपर कार्यके नाश होनेका नियम है। तब जब परस्पर यह बात है कि दोष हानिसे आवरण हानि हुई, आवरण हानिसे दोष हानि हुई तब इनमेंसे किसी एकको हानि ही निःशेषरूपसे साध्य करना चाहिये। दोनोंको साध्यमें क्यों रखा है कि दोष और आवरण दोनोंकी हानि किसी जगह सम्पूर्णरूपसे हो जाती है। इनमेंसे यदि एक हीको साध्य बनानेको कहा जाय कि किसी परमपुरुषमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अज्ञान आदिक दोषोंकी हानि सम्पूर्णतया है तो उससे दूसरी बात अपने आप ही सिद्ध हो जाती या यह कहते कि किसी जीवमें आवरणकी हानि निःशेषरूपसे है तो इसमें भी दूसरी बात स्वयं सिद्ध हो जाती। फिर दोनोंको साध्यरूपमें यहाँ क्यों रखा गया है ? इस शंकापर उत्तर देते हैं कि यहाँ एकके कहनेपर दूसरेकी सिद्धि सामर्थ्यसे हो ही जाती है फिर भी दोनोंको साध्यमें रखनेका कारण यह है कि यह भी प्रसिद्ध हो जाय कि दोष और आवरण याने जीवके परिणाम और पुद्गलके परिणाम इन दोनोंमें परस्पर कर्य कारण भाव है यह बात प्रसिद्ध करनेके लिए यहाँ दोष आवरण दोनोंके सम्पूर्णरूपसे अभावका साधन किया गया है।

आवरणकी कारणरूपता व दोषकी कार्यरूपताका वर्णन—अज्ञान दोष तो ज्ञानावरणके उदय होनेपर होता है। जब जीवका पूर्वबद्ध ज्ञानावरण कर्म विपाक अवस्थामें होता है तो जीवमें अज्ञानभाव होता है। जीवका दूसरा दोष है अदर्शन, वह दर्शनावरण कर्मके उदय होनेपर होता है। जीवका दोष है मिथ्यात्व, वह दर्शन मोहके उदय होनेपर होता है। मिथ्यात्व नाम है मिथ्याभावका। जैसा वस्तुस्वरूप है उसके विपरीत अभिप्राय बने तो उसे मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्या शब्दका सही अर्थ तो है सम्बन्ध। सम्बन्धबुद्धिको मिथ्यात्व कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे स्वतन्त्र है, किसीका किसीमें कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी एक दूसरेके साथ सम्बन्ध मानना यह है मिथ्यात्व भाव। तो दर्शन मोह नामका जो मोहनीय कर्म है उसका उदय होनेपर जीवके मिथ्यात्व दोष होता है। नाना प्रकारका अचारित्र भी जीवका दोष है। अपने स्वभावमें न ठहरकर परवस्तुमें उपयोगके रमानेको अचारित्र कहते हैं। चूंकि परवस्तुवें अनेक हैं और उनमें उपयोग रमानेकी पद्धतियां भी अनेक हैं। अतः अचारित्र नाना प्रकारके हैं। वे सब नाना प्रकारके अचारित्र विविध चारित्र मोहके उदय होनेपर होते हैं। इन अचारित्रोंको संक्षेपमें बाँधा जाय तो चूंकि उपयोगका ज्ञान स्वभावमें रमनेकी कमी सिथिलता अनेक अंशोंमें होती है और उनकी पद्धतियाँ भी विविध हैं। अतः चार प्रकारोंमें उन्हें बाँटिये। प्रथम तो ऐसा पूर्ण अचारित्र जिसमें चारित्रके आधारका उपयोग भी नहीं हो सकता। दूसरा असंयम जो अप्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहनीयके उदयसे होता है। अनन्तानुबंधी कषाय चारित्र और सम्यक्त्व दोनोंके विघातका कारण है, पर अणुव्रतरूप परिणाम न होना, पापसे एकदेश भी विरक्तिका भाव न होना यह अप्रत्याख्यानावरणके उदयसे होता है। प्रत्याख्यानावरणके उदयमें महाव्रतरूप परिणाम नहीं होते और संज्वलन कषायके उदयमें विशुद्ध वीतराग भाव यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं होता। तो अनेक प्रकारके चारित्र मोहके उदय होनेपर नाना प्रकारके अचारित्र प्रकट होते हैं। अंतराय कर्मका उदय होनेपर दानका भाव न होना, शील न होना ये सब दोष उत्पन्न होते हैं। इस तरह ये चार घातिया कर्म गुणोंमें विकार, गुणोंका आवरण करनेसे आवरणरूप हैं। ये जीवके गुणोंका घात करनेमें निमित्त होनेसे घातिया कर्म कहलाते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दोषकी कारणरूपता व आवरणकी कार्यरूपताका वर्णन उक्त विवरण तो हुआ दोषको कार्यरूप बतानेका. अब आवरणके कार्यत्वकी बात सुनिये ! कि यह बताया गया कि इन इन कर्मोंके उदय होनेपर जीवमें इस इस प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं इस कथनमें यह सिद्ध हुआ कि जीवके दोष उत्पन्न होनेका कारण आवरण कर्म का उदय है। अब इस ही प्रकार यहाँ भी देखिये कि कर्म जो बँधते हैं वे भी जीवके दोषका निमित्त पाकर बँधते हैं, जैसे कि ज्ञान दर्शनके सम्बन्धमें प्रद्वेष जगे, ज्ञान दर्शन का कोई आच्छादन करे अथवा मात्सर्य निन्दा, तिरस्कारकरे ज्ञान दर्शनमें बिघ्न डाले, ज्ञानदर्शनके साधनभूत शास्त्र आदिकको छुपायें, मिटाये तो इस प्रकारके भावोंसे ज्ञानावरण, दर्शनावर जीवके साथ बँध जाते हैं। यहाँ बताया जा रहा कि जीवके दोषका निमित्त पाकर ज्ञानावरण आदिक कर्मोंका परिणमन होता है। केवली भगवान, विशुद्ध वस्तु स्वरूपका प्रतिपादक शास्त्र निग्रन्थ गुरुजनोंका संघ दयामयी धर्म और देवगतिके जीव इनका अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीय कर्म बनता है, जीवके साथ बँधता है। किन-किन दोषोंसे दर्शन मोहनीयकर्म उत्पन्न होते हैं यह बात यहाँ कही जा रही है। भगवान अरहंत सकल परमात्मा परमौदारिक दिव्य देहमें विराजमान हैं उनके क्षुधा, तृषा, व्याधियाँ आदिक किसी भी प्रकारका दोष नहीं है, लेकिन कोई पुरुष केवली भगवानका ऐसा स्वरूप कहने लगे कि वे तो आहार करते हैं तो यह उनका अवर्णवाद है। अवर्णवाद कहते हैं उसे–जैसा वर्णन नहीं है स्वरूप नहीं है उस प्रकारसे बोलना, सो इस दोषके कारण दर्शनमोहनीय कर्म जीवके साथ बँधते हैं। शास्त्रोंमें संसारसे छुटकारा पानेका उपाय लिखा है लेकिन कोई यह कहे कि शास्त्रोंमें लिखा है कि पशु यज्ञ करो, पशु बलि दो, इस शास्त्रका अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीय कर्म जीवके साथ बँधते हैं। ये दर्शन मोहनीयकर्म वे हैं जिनके उदयमें जीवके मिथ्यात्वभाव जगता है, संसारके समस्त दुःखोंका कारण मिथ्यात्वभाव है निर्ग्रन्थ गुरुजनोंका, संघका अवर्णवाद करना - ये मलिन होते हैं। निर्लज्ज होते हैं आदिक रूपसे गुरुजनोंका अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीयकर्मका जीवके साथ बंध होता है। देवगतिके जीव वैक्रियक शरीर वाले हैं। इनके हजारों वर्षोंमें कुछ थोड़ी सी क्षुधा जगती है और उनके ही कंठसे अमृत झरता है, उनकी तृप्ति हो जाती है है। देवगतिके जीवोंका स्वरूप तो है इस प्रकार लेकिन यह कहना कि ये देव बलि चाहते हैं, पशुकी बली देनेसे ये देव प्रसन्न होते हैं और वे देव उसका स्वाद लेते हैं, यह उनका अवर्णवाद है। इस तरह केवली आदिक के विषयमें अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीयकर्मका आश्रव होता है, मोहनीयका दूसरा भेद है चारित्रमोह। जब जीव कषायके वेगमें आता है तो कषायके तीव्र उदयके परिणामसे चारित्र मोहनीयकर्म जीवके साथ बँध जाते हैं इसी प्रकार अन्तरायकर्म किस दोषसे बँधता है ? तो कोई जीव दूसरेके दान लाभ भोग उपभोग बल प्रकाशनमें विघ्न डाले तो उसके अन्तरायकर्म बँधते हैं। तो जैसे पहिले बताया गया था कि भिन्न-भिन्न कर्मोंके उदयसे जीवमें भिन्न-भिन्न प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं इसीप्रकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ समझिये कि भिन्न–भिन्न प्रकारके कर्म जीवके साथ बँधते हैं। यह सब बतानेका प्रयोजन यह है कि दोष और आवरण दोनोंमें परस्पर कार्य कारण भाव है। आवरण के निमित्तसे दोष उत्पन्न होते हैं, दोषके निमित्तसे आवरणका निर्माण होता है। यों दोष और आवरणमें परस्पर कार्यकारण भाव दिखानेके लिये इस कारिकामें दोनों साध्य बताये गए हैं कि अज्ञानादिक दोषकी हानि किसी परम पुरुषमें सम्पूर्णतया होती है और आवरणकी हानि भी किसी परम पुरुषमें पूर्णतया होती है। इनका परस्परमें कार्यकारण भाव है।

दोष और आवरणमें परस्पर निमित्त नैमित्तिकभावका युक्ति द्वारा समर्थन —रागादि दोष व ज्ञानावरणादिकर्मका परस्पर निमित्तनैमित्तिक भावमें सम्बन्धमें विवरण स्वयं आगे एक स्वतंत्र कारिकामें किया जायगा। यहाँ केवल इतना ही अवधारण करते हैं कि जीवमें जो रागादिक दोष होते हैं वे अपने उपादान और आवरणभूत कर्मके निमित्तसे होते हैं। इन दो बातोंमेंसे यदि किसी एकको न माना जाय तो कार्यव्यवस्था नहीं बन सकती। यदि यह कहा जाय कि केवल जीवके परिणामसे ही जीवमें दोष उत्पन्न होते हैं तो जीव तो सदा है, जीवका वह परिणाम भी सदा रहेगा। और वे रागादिक दोष भी सदा रहेंगे। उनका कभी क्षय न हो सकेगा, फिर मुक्ति कभी हो ही न सकेगी। यदि यह मान लिया जाय कि जीवके दोष ज्ञानावरणादिक कर्मके ही कारण होते हैं, उसमें स्व आत्माके हेतुपनेकी जरूरत नहीं है। तो जब किसी पुरुषकी भांति कर्म स्वतन्त्र कार्यकर्ता हो गया, जैसे कि लोकमें किसी पुरुषको स्वतन्त्ररूपसे कार्यकर्ता निहारते हैं इस तरह ये कर्म जीवमें रागादिक दोषोंको उत्पन्न करने वाले हो गए तब तो मुक्त आत्माओंके भी वह दोष ला देगा, फिर मुक्त अवस्था ही क्या रही? तो कार्य व्यवस्था उपादान और निमित्त कारण दोनोंसे बनती है। जिसमें अन्तर यह है कि निमित्तभूत कारण तो दूर ही रहता है, उसका कार्यमें प्रवेश नहीं है, लेकिन उसके न होनेपर कार्य होता नहीं देखा गया अतएव वह निमित्तभूत है। उपादान कारण कार्यके समयमें भी रहता है। यों स्वपरपरिणामहेतुक अज्ञान आदिक दोष हैं, यह प्रमाणसे सिद्ध होता है।

पौद्गलिक ज्ञानावरणादि कर्मकी संसारहेतुताकी सिद्धि—यहाँ क्षणिकवादी शंका करते हैं कि अविद्या और तृष्णारूप दोष ही संसारका हेतु है। कोई पौद्गलिक आवरण कर्म संसारका कारण नहीं है, क्योंकि अनादिकालसे अविद्या और तृष्णाकी वासनासे इस चित्तका, आत्माका यह संसरण चल रहा है। तो जब पौद्गलिक आवरण कर्म संसारके कारण नहीं हैं तब केवल इस कारिकामें दोषकी ही बात कहनी चाहिये थी। पौद्गलिक आवरण संसारका हेतु हो नहीं सकता क्योंकि पौद्गलिक मूर्तिमान कर्मके द्वारा अमूर्त चेतनपर आवरण नहीं लग सकता है, ऐसी शंका करते हुए उन क्षणिकवादियोंको समाधान दिया जाता है कि कारिकामें जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आवरण शब्द ग्रहण किया है वह बिल्कुल युक्तिसगत है। पौद्गलिककर्म जो मूर्तिमान हैं वे जीवके ज्ञानादिक भावके आवरण बन सकते हैं। ये जीवके अज्ञाना दोषकी उत्पत्तिमें निमित्त कारण हैं अतः आवरण कर्म न माननेपर केवल अविद्या व तृष्णा रूप दोष ही संसारका हेतु है, ऐसा कथन निराकृत हो जाता है, देखो मद्य, शराब मूर्तिमान ही तो, उसके द्वारा अमूत चेतनका आवरण किया गया है यह तो प्रत्यक्ष ही देखा गया है। यह तो प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि कोई पुरुष मदिरा पी लेता है तो उसके सम्बंधसे उस पुरुषको विभ्रम पैदा होता है। उसका ज्ञान भी भ्रम भरा होता है। अटपट बकता है। उसे होश नहीं रहता। तो देखिये ! मूर्तिमान मदिराने उस पुरुषके ज्ञानपर आवरण कर दिया ना, इसी प्रकार मूर्तिमान पौद्गलिक ज्ञानावरण आदिक कर्मके निमित्तसे जीवके रागादिक दोष उत्पन्न होते हैं और वे संसारकी परम्परा बढ़ाते हैं। यदि मूर्तमान पदार्थ चित्तका आवरण करनेमें समर्थ न हों तब तो मदिरा पीनेके बाद भी पुरुषके ज्ञानमें दोष न आना चाहिए।

मूर्तिमान पौद्गलिक कर्मके द्वारा चेतन गुणकी आवृतताकी सिद्धि— यहाँपर शंकाकार कहता है कि कि मदिराके सम्बन्धमें तो बात यह है कि मदिरा आदिक पदार्थोंके द्वारा इन्द्रिय ही आवृतकी गई हैं, चेतन आत्माका आवरण नहीं हुआ है, इसके समाधानमें कहते हैं कि यह बात असंगत है। अच्छा बतलावो कि जिन इन्द्रियोंका मदिराके द्वारा आवरण मानते हैं वे इन्द्रियाँ क्याअचेतन हैं ? इन्द्रियको अचेतन माननेपर मदिरा आदिकके द्वारा उसका आवरण होना सम्भव नहीं है, यदि अचेतन मदिरा अचेतन इन्द्रियका आवरण करे, विकार करे, तो वह मदिरा जिस बर्तनमें रखी है उससे तो घना सम्बन्ध है ना ? मदिरा भी अचेतन है और वे थाली कटोरा बोतल आदिक भी अचेतन हैं यदि अचेतन मदिरा भी अचेतन इन्द्रियपर विकार करता है तो थाली, कटोरा, बोतल आदिक पदार्थोंमें भी विकार क्यों नहीं करता ? तो जैसे अचेतन मदिरा अचेतन थाली, कटोरा, बोतल आदिकमें विभ्रम पैदा नहीं कर सकता है इसी प्रकार अचेतन मदिरा इन्द्रियपर भी आवरण नहीं कर सकता। जिस मदिराके द्वारा इन्द्रियाँ आवृत की गई, वे इन्द्रियाँ यदि चेतन हैं तो फिर यही बात तो सिद्ध हुई कि जो चेतन होता है निश्चयतः वह अमूत होता है। इन्द्रियाँ हैं चेतन तो साथ ही वे हो गयी अमूर्त तो मदिरा मूर्तिमानके द्वारा चेतन अमूर्तका ही आवरण सिद्ध हो गया। यही बात प्रकृतमें सिद्ध कर रहे थे। तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि ज्ञानावरण आदिक पौद्गलिक कर्म हैं और वे संसारके कारणभूत हैं। तब दोष की हानिकी तरह आवरणकी हानि भी कहींपर विशेष रूपसे होती है अर्थात् दोष समाप्त होनेकी तरह आवरण भी कहीं समाप्त हो जाता है, तब दोष हानि कहीं समस्त है जैसे यह साध्य बताया इसी तरह आवरण हानि भी कहीं समस्त है यह भी साध्य बनता है। दोषसे भिन्न ज्ञानावरण आदिक मूर्तिमान कर्म प्रमाणसे सिद्ध हैं, रागादिक दोष ये तो चेतनके परिणमन हैं और ज्ञानावरण आदिक ये कार्माणस्कंध पौद्गलिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिणमन हैं। रागादि दोष चेतनकी परिणति है, है विभाव परिणति, और आवरण कर्म अचेतनकी परिणति है। ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, उन दोनोंके नष्ट होनेपर प्रभुता प्रकट होती है। तो इस कारिकामें जो साध्य बताया गया कि कहीं दोषकी हानि सम्पूर्णतया होती है व कहीं आवरणकी हानि सम्पूर्णतया होती है। इस तरह दो साध्य बनाना बिल्कुल युक्तिसंगत है।

अतिशायन हेतु द्वारा लोष्ठादिमें दोष हानिकी निःशेषतासे सिद्ध-साध्यताकी शंकापर विचार—अब यहाँ कोई शंका करता है कि आपके इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि जिसका अतिशायन है तो वह कहीं प्रकृष्ट रूपसे बन जाता है। दोषकी हानि हो रही तो यह हानि किसी परम पुरुषमें सम्पूर्णतया होजाती है, इसी तरह आवरणकी हानि हो रही है तो यह आवरणकी हानि किसी जीवमें सम्पूर्णतया हो जाती है। ठीक है, और तब काष्ठ, लोह पत्थर आदिकमें सम्पूर्णरूपसे दोषकी निवृत्ति और आवरणकी भी निवृत्ति है तो यह अनुमान तो बहुत अच्छा कहा, कहीं दोष नहीं है और आवरण नहीं है। सो पत्थर ढेला आदिकमें न दोष है न आवरण है, दोनोंकी सम्पूर्णतया निवृत्ति है, इस कारण यहाँ सिद्धसाध्यता है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कहना बिना विचारे हुआ है, क्योंकि इस शंकाकारने साध्यका ज्ञान नहीं किया। इस अनुमानमें साध्य क्या कहा जा रहा है? इसपर दृष्टि नहीं दी। यहाँ साध्य है दोष और और आवरणका प्रध्वंसाभाव। अत्यन्ताभाव साध्य नहीं है। जैसे कि लोष्ठ, पत्थर आदिकमें दोष और आवरणका अत्यन्ताभाव है, है ही नहीं, न था न है, न होगा। तो ऐसा अत्यन्ताभाव यहाँ साध्य नहीं बनाया गया, किन्तु दोष और आवरणका प्रध्वंसाभाव साध्य बनाया गया है। प्रध्वंसाभावका यह अर्थ है कि थे दोष और आवरण लेकिन उनका ध्वंस किया गया। पहिले थे और फिर न रहे इसे प्रध्वंस कहते हैं। ऐसे प्रध्वंसके साथ जो अभाव हुआ है वह यहाँ साध्य है अत्यन्ताभाव साध्य नहीं है, क्योंकि अत्यन्ताभावका साध्यपना अनिष्ट है, साध्य होता है इष्ट और अबाधित। जो वादीको इष्ट नहीं है वह साध्य हो ही नहीं सकता और इस तरह भी परख लीजिए कि यदि दोष और आवरणका अत्यन्ताभाव साध्य होवे तब तो आत्माकी सदा मुक्ति रहना चाहिये। क्योंकि वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे आवरणका, अचेतनका आत्मामें अत्यन्ताभाव है, एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका त्रैकालिक अभाव है। कभी भी किसी द्रव्यमें किसी दूसरे द्रव्यका प्रवेश नहीं हो सकता। तब तो यों आत्माकी सदा ही मुक्ति कहलायगी। सो यहाँ अत्यन्ताभाव साध्य नहीं है, किन्तु दोषका और आवरणका प्रध्वंसाभाव ही साध्य है।

अतिशायन हेतु द्वारा दोषावरणके अत्यन्ताभावकी साध्यता न होने की तरह इतरेतराभावकी साध्यता न होनेका कथन—अभाव चार प्रकारके माने गए हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव (इतरेतराभाव) और अत्यन्ता-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव । इन चार प्रकारके अभावोंमेंसे इस अनुमानमें केवल प्रध्वंसाभाव साध्य है। अज्ञान आदिक दोषोंका और ज्ञानावरण आदिक कर्मोंका प्रध्वंस हो जाना, प्रध्वस हो कर अभाव होना यह यहाँ साध्यरूपसे माना गया है। जैसे यहाँ अत्यन्ताभाव साध्य नहीं हो सकता इसी तरह इतरेतराभाव भी यहाँ साध्य नहीं माना गया है। इतरेतराका अर्थ है कि एकमें दूसरेका न होना, एक दूसरे रूप नहीं होना आत्मा दोषावरणरूप नहीं है और दोषावरण आत्मा नहीं है, इस तरहका इतरेतराभाव इस अनुमानमें साध्य नहीं माना गया, क्योंकि इतरेतराभाव इस अनुमानमें साध्य नहीं माना गया? क्योंकि इतरेतराभाव तो आत्मामें कर्म आदिककी अपेक्षासे प्रसिद्ध ही है। आत्मामें कर्म नहीं हैं। कर्मोंमें आत्मा नहीं है दोष और आवरण ये अनात्मस्वरूप हैं। ये आत्माके स्वरूप नहीं हैं। आवरण तो प्रकट पौद्गलिक अचेतन पदार्थका परिणमन है और दोष उन अचेतन आवरणोंके निमित्तसे उत्पन्न हुआ विकार है, सो दोष आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा दोषावरण स्वभाव वाला नहीं है। तो यह बात अपने आप सिद्ध है। उस इतरेतराभावको साध्य बतानेका अर्थ क्या हुआ और यदि यहाँ इतरेतराभावको साध्य बनाया जाय तो जैसा दोष अत्यन्ताभाव साध्य बनानेपर कहा गया है वही दोष यहाँपर भी घटित होता है। अब प्रागभावकी बात सुनिये ! जिस प्रकार अत्यन्ताभाव और इतरेतराभाव साध्य नहीं है इस अनुमानमें उसी प्रकार प्रागभाव भी साध्य नहीं है। प्रागभाव कहते हैं पहिले अविद्यमान पर्यायोंका स्वकारणसे भाव होनेको। सो यहाँ पहिले अविद्यमान दोष और आवरणका अपने कारणसे आत्मामें प्रादुर्भाव माना है। इस प्रागभावको यहाँ अतिशायन हेतु देकर साध्य नही बनाया जा रहा है। प्रकृत शंकामें जो लोष्ठ पत्थर आदिकमें उपालम्भ दिया है कि दोष आवरणकी निःशेष हानि (निवृत्ति) लोष्ठ आदिकमें पायी जा रही है सो यह सिद्धसाध्य है ऐसा तो सारी दुनिया मान रही है। सो यह बात यहाँ साध्यरूपसे नही है। लोष्ठ आदिकमें दोष और आवरणका प्रध्वसाभाव नहीं है प्रध्वंसाभावका लक्षण है-हो करके होना। पहिले कुछ पर्याय हो, उस पर्यायके होनेके बाद वहाँ दूसरी पर्याय होना वह है प्रध्वंसाभाव। या सीधा यह समझिये कि जो पर्याय हो वह पर्याय न रहे, उसका नाम है प्रध्वंसाभाव। सो लोष्ठ आदिकमें दोष और आवरणका अत्यन्ताभाव चल रहा है, वहाँ प्रध्वंसाभाव नहीं है। लोष्ठमें पहिले तो रागादिक दोष हों, आवरण लगे हुए हों और फिर दोष आवरण हटें तो उसे प्रध्वंसाभाव कहा जायगा। इस कारण दोष और आवरणकी निवृत्तिसे लोष्ठ आदिकमें मानकर सिद्ध साध्यताका कथन करनायुक्त नहीं हैं।

बुद्धिकी हानिका भी अतीशायन देखा जानेसे बुद्धिके परिक्षयका प्रसंग होनेसे हेतुमें अनैकान्तिक दोष आनेकी आशङ्का— अब शंकाकार कहता है कि इस अनुमानमें दोष और आवरणकी हानिका अतिशायन देखा जाता है। अर्थात् तारतमभावसे हीनाधिकता देखी जाती है और उससे फिर यह साध्य बनाया जा रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि दोष और आवरणकी हानि कहींपर पूर्णरूपसे है क्योंकि अनेक जीवोंमें दोषकी और आवरणकी हानि अधिकाधिकरूपसे देखा जा रही है। किसीमें दोष हानी जितनी है उससे अधिक दोष हानि दूसरेमें है। उससे अधिक किसी अन्य परम पुरुषमें है। तो जब दोषकी कमी विशेषता देखी जा रही है तो कोई पुरुष ऐसा है कि जहाँ दोषकी पूर्णतया हानि है और आवरणकी पूर्णतया हानि है। तो यहाँ आतिशयन हेतु देखकर दोष और आवरणकी हानि पूर्णतया सिद्ध की जा रही है सो करिये, परन्तु साथ ही साथ यह भी बात मान लीजिए कि किसीमें बुद्धिका भी पूर्णरूपसे क्षय हो जाता है। क्योंकि यह भी तो संसारी जीवोंमें देखा जा रहा है कि किसीमें जितना ज्ञान है उससे कम ज्ञान अन्य जीवमें है, उससे भी कम ज्ञान अन्य जीवमें है। तो जब यों ज्ञानकी हानिमें तारतमता, हानिकी अधिकता देखी जा रही है तो उससे यह भी सिद्धकर डाले कि किसी जीवमें बुद्धिका पूरा क्षय है और इस तरह मान लेनेसे फिर हेतु अनेकान्तिक दोषसे दूषित हो जाता है, क्योंकि ज्ञानका सर्वथा परिक्षय होना यह माना नहीं गया। बुद्धिका समस्तरूपसे अभाव होना यह तो विपक्षकी बात है और उसकी भी सिद्धि हो जाती है, तब आपका यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो जाता है।

बुद्धि परिक्षयवाले प्रसंगकी आशंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधान में कहते हैं कि यह कहना भी मालूम होता है कि अशिक्षित पुरुषके ही द्वारा कहा गया है। सर्वप्रथम बात यह है कि दोष और आवरण ये विकार विकाररूप हैं। विकारकी जहाँ हानि देखी जाती है वहाँ यह निर्णय होता है कि किसी जगह यह विकार सर्वथा भी नष्ट हो जाता है, किन्तु जहाँ स्वभावकी बात हो और उपाधि कारणवश उस स्वभावकी हानि देखी जा रही हो तो उससे यह निर्णय न किया जा सकेगा कि किसीमें यह स्वभाव बिल्कुल भी समाप्त हो जायगा। बुद्धि, ज्ञान यह है आत्माका स्वभाव। दोष और आवरणके कारण आत्माके ज्ञानमें कमी आ रही है। किसी जीवमें जितना ज्ञान है उससे कम अन्य जीवमें है उससे कम अन्य जीवमें है। यहाँ तक कि कम होते होते सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य पर्याप्तक जीवका ज्ञान बहुत सूक्ष्मरूपसे रह गया है लेकिन ज्ञान जीवका स्वभाव होनेसे ऐसा कहीं भी नहीं हो सकता कि इस ज्ञानका सर्वथा अभाव बन जाय। तो अतिशायन हेतुसे विकार हानिकी निःशेषताकी सिद्धि होती है, स्वभाव हानिकी निःशेषताकी सिद्धि नहीं होती। मुख्य बात तो यह है और मोटेरूप अबसे बुद्धिकी हानि कहीं निःशेष होती है, यह समझना है तो इसे भी परख लीजिये।

पृथ्वी आदि चैतन्य गुणके सर्वथा निवृत्त होनेसे भी हेतुमें अनेकांतिक दोषका अनवसर—चैतन्य आदिक गुणोंकी व्यावृत्ति अर्थात् निवृत्ति, अभाव, प्रध्वंसाभाव सर्वरूपसे पृथ्वी आदिकके माना गया है। लोष्ठ, पत्थर, शरीर आदिकमें चेतना आदिक गुण रंच भी नहीं हैं। तो लो है ना, कोई ऐसा पदार्थ कि जहाँ बुद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की पूर्णतया व्यावृत्ति हो । शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिकमें समस्त रूपसे चैतन्य आदिक गुणोंका अत्यन्ताभाव है, फिर तो बुद्धिकी हानिमें अतिशयीपना पाया जा रहा है । किसीमें बुद्धि जितनी है उससे कम दूसरेमें है और उससे भी कम तीसरेमें है । तो बुद्धिकी हानिमें अतिशायिता पाई जाती है फिर भी सर्वात्मक रूपसे पृथ्वी आदिक पदार्थोंमें चैतन्य आदिक गुणोंका प्रध्वंसाभाव नहीं है । इस तरह अनेकान्तक दोष तो ज्योंका त्यों ही रहा । उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बिना समझे बढ़ी हुई बात कही गई है । पृथ्वी आदिक पुद्गलमें पृथ्वी कायिक आदिक जीव थे । जब पृथ्वी कायिक आदिक जीवोंके द्वारा पृथ्वी आदिक पुद्गल शरीररूपसे ग्रहण किए गए और फिर अपनी आयुकी क्षयसे वे पृथ्वी आदिक पुद्गल छुट गये अर्थात् पृथ्वी कायिक जीवोंका तद्भव मरण हो गया और वे पृथ्वी आदिक शरीरोंको छोड़कर चल बसे तो अब जो शरीर पड़ा रहा उसमें चेतन आदिक गुणोंकी व्यावृत्त सर्वरूपसे पाई जा रही है । और, वही प्रध्वंसाभावका रूप है । ऐसा तो माना ही गया है, उपदेशमें कहा भी है कि लोक में ऐसा कोई पुद्गल नहीं है कि जो जीवोंके द्वारा बारबार भोग–भोग करके छोड़ा न गया है पृथ्वी आदिकमें चेतना आदिक गुणका अभाव प्रसिद्ध है अन्यथा याने चैतन्य आदिक गुणोंका सद्भाव होनेपर चैतन्य आदिकके अभावका अभाव बन जायगा, सो तो नहीं है । पृथ्वी आदिकमें चैतन्य आदिक गुणोंका बराबर अभाव है

अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धका निश्चय माननेकी अयुक्तता— उक्त समाधानपर शकाकार कहता है कि यह तो अदृश्यानुपलम्भकी बात है अर्थात् वह चेतनागुण, बुद्धिगुण अदृश्य है । किसी भी इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें नहीं आ रहा । तो अदृश्यका यदि अनुपलम्भ है, अदृश्य चीज मिल नहीं रही है तो इससे कहीं उसका अभाव सिद्ध न हो जायगा । अभाव सिद्ध हुआ करता है दृश्य पदार्थोंका अनुपलम्भ होनेसे जो दृश्य हैं और फिर वे न पाये जायें तो उनका अभाव मानना चाहिए, पर चेतन तो अदृश्य तत्त्व है । वह न पाया जाय तो इससे उसका अभाव न बन जायगा । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह अदृश्यके अनुपलम्भ होने मात्रसे अभावका सिद्धि मानेंगे तो दूसरोंके चेतनकी निवृत्तिमें भी शंका आ पड़ेगी । जैसे कोई रोगी पुरुष मर गया है तो उसका अर्थ यही है ना, कि इस शरीरसे चेतन निकल गया । अब चेतन है अदृश्य और अदृश्यके न पाये जानेसे उसके अभावको असिद्ध कर रहे हो, तो मरे हुए पुरुषमें भी यह शंका रहेगी कि इसमें जीव है या नहीं ? इसमें जीव नहीं है ऐसा जो लोग दृढ़ताका निर्णय रखते हैं वह निर्णय न बन सकेगा । तो चेतनके निवृत्तिकी शंका हो जानेसे फिर जो उस मृतक शरीरका लोग संस्कार करते हैं, अग्नि में दाह करते हैं तो जितने लोग संस्कार करने वाले हैं वे सब पातकी बन बैठेंगे, क्योंकि अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धि ही मानते हो । उस मृतक शरीरमें चेतना नहीं है इसका निर्णय तो अब हुआ नहीं, हो भी सके, न भी हो सके । अभावका निश्चय न रहा । फिर ऐसे मृतक शरीरको आगमें जला देने वाले लोग पापी बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैठेंगे। इससे अदृश्यके अनुपलम्भ होनेसे अभावकी असिद्धि बताना युक्त नहीं है, और बहुत करके यह सब देखा ही जा रहा है कि जो रोगादिक अप्रत्यक्ष हैं उनकी भी निवृत्तिका निर्णय होता है। जैसे रोगीके शरीरमें क्या रखा है उसका प्रत्यक्ष तो नहीं है। भले ही किसी चेष्टासे अनुमान किया जाय पर रोगका प्रत्यक्ष नहीं होता। किसीको शिर दर्दकी वेदना है तो क्या वेदना किसीको दिख रही है? अथवा किसीका दर्द नजर आता है क्या? तो रोग अप्रत्यक्ष है, फिर भी अब इसके सिर दर्द नहीं रहा, अब इसके तकलीफ नहीं है। इस प्रकारका निर्णय दूसरे लोग करते ही लगते हैं। इस कारण यह कहना कि चेतन अदृश्य है, उसकी अनुपलब्धिसे अभावकी सिद्धि नहीं की जा सकती, यह कथन असंगत है।

पृथिव्यादिमें अदृश्य चेतनके अनुपलम्भसे चेतनादिके अभावकी सिद्धि न होनेका प्रतिपादन करने वाले शंकाकार द्वारा अपनी शंकाका पोषण—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि व्यापर, वचनालाप, आकार विशेषकी व्यावृत्तिके संकेतसे लोग जान जाते हैं कि इसमें चैतन्य नहीं रहा और इसी संकेतसे लोग विवेचन करते हैं कि यह चैतन्यरहित हो गया, अतः देहसंस्कर्ताओंको उसका पातक नहीं लगता। पूर्व शंकाके समाधानमें जो यह कहा गया कि अप्रत्यक्ष, होकर भी रोग आदिककी निवृत्तिका निर्णय हुआ करता है सो बात वहाँ भी यह है कि इन रोगादिकोंकी निवृत्ति यद्यपि अप्रत्यक्ष है फिर भी उसमें रोगादि निवृत्तिसूचक संकेत पाये जाते हैं जैसे कि साफ शुद्ध आवाज निकलना, देहका स्फुरित होना आदि उनसे रोगादिक निवृत्तिका निर्णय है इसी तरह जिस पुरुषमें चैतन्य न रहा, याने जो मृतक हो गया तो कैसे जान लिया कि इसमें चैतन्यका अभाव हुआ है? चैतन्यके सद्भावमें जैसा व्यवहार व आकारविशेष रहता है वैसा व्यापार न निरखकर वचनालाप न देखकर और कातिन्मान आकारविशेष न समझकर जान लिया जाता है कि इसमें चैतन्यका अभाव हुआ है। अनुमान प्रयोग भी इस हीका समर्थन करता है। इस मृतक शरीरमें चैतन्य नहीं है, क्योंकि व्यापार, वचनालाप व आकार विशेषकी अनुपलब्धि होनेसे। तो यहाँ कार्य विशेषकी अनुपलब्धि बताया है, वह कारण विशेषके अभावका अविनाभावी है। जहाँ कार्य विशेष नहीं पाया जाता वहाँ उसका कारण विशेष भी नहीं पाया जाता। जैसे कि चंदन वाले धूमकी अनुपलब्धि चंदन वाले धूमको उत्पन्न करनेमें समर्थ चन्दन वाली अग्निके अभावका सूचक है। चंदनकी आगमें जिस तरहका धुवाँ निकलता है उस प्रकारका धूम न पाया जाय तो उससे यह सिद्ध होता कि यहाँ चन्दन वाली अग्नि नहीं है। और, भी दृष्टान्त में सुनो! इस प्राणीमें रोग नहीं है क्योंकि स्पर्श आदिक विशेषकी अनुपलब्धि है। किसी पुरुषको ज्वरका रोग था, पश्चात् ज्वर रोग मिटनेपर सभीका यह निर्णय हो जाता है कि इसके अब रोग नहीं रहा। तो यह निर्णय किस बलपर होता है कि ज्वरमें जैसे स्पर्श आदिक अब नहीं पाये जा रहे हैं, तो कार्य विशेषकी अनुपलब्धिसे कारण विशेषका अभाव निर्णीत हो जाता है। तथा और भी दृष्टान्त देखिये! जैसे किसी पुरुष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी भूतग्रहकी बाधा रहती हो और जब न रहती हो तब वह साफ व्यवहार, व काय कहता है तो उस समय यह अनुमान बनता है कि अब यहाँ भूतग्रह आदिक नहीं है, क्योंकि चेष्टा विशेषकी अनुपलब्धि है। समीचीन वैद्यशास्त्र भूत तंत्र आदिकके जो संकेत हैं उस संकेतसे जिसको रोग आदिक काय विशेषका अभ्यास बन चुका है ऐसे पुरुषोंको उसके विवेककी उत्पत्ति होती ही है। अर्थात् रोग है अब नही हैं इसमें भूत ग्रह आदिक है अब नहीं हैं, यह सब नि:सन्देह निर्णय हो जाता है। तो इस तरहसे जब पृथ्वी आदिकमें मनुष्य देहमें जब चैतन्य नहीं रहता है तो स्पष्ट समझमें आता है कि अब यहाँ चैतन्य नहीं रहा। तब किसी मृत मानव शरीरको जलानेमें दाहसंकार करने वालेको उस मानवीय आत्माको हिंसाका पाप नहीं लगता है वह आत्मा वहाँ है हो नहीं। तब फिर परचैतन्य निवृत्तिमे सदेह बताकर दाहसंस्कार करने वालेको पाप लगेगा ऐसा प्रसंग देकर जो अदृश्यानुपलम्भसे अभावको असिद्ध करनेमें बाधा डाल रहे हो वह बाधा युक्त नहीं है।

चैतन्यके अदृश्य होनेपर भी व्यापारादि विशेषकी अनुपलब्धि होनेसे मृत कायमें चैतनके अभावके निर्णयका प्रतिपादन करते हुए उक्त शंकाका समाधान — उक्त शंकाकार अब समाधन करते हैं कि जो कुछ अभी कहा है वह बात तो पृथ्वी आदिकमें भी सर्वरूपसे चेतना आदिक गुणोंकी व्यावृत्ति माननेमें समान है। कहा जा सकता है कि इन राख आदिमें या पृथ्वी लोष्टमें पृथ्वी चेतनादि गुण नहीं है। जैसे ऊपर निकले ढुढ़कते हुए पत्थरोंके सम्बन्धमें यह निर्णय है कि इस पत्थरमें जो कि पृथ्वीकाय है इसमें जीव तो था और उस पृथ्वीकायिक जीवके सम्बन्धसे उस लोष्ट पृथ्वीका बढ़ावा चल रहा था, लेकिन अब नहीं है, यह बात बिल्कुल निर्णीत होती है। उसका अनुमान प्रयोग है कि भष्म आदिकमें पृथ्वी चेतनादि गुण नहीं है, क्योंकि व्यापार, व्यवहार आकार विशेष उस तरहका रहा नहीं। यों संकेतके वशसे सिद्धान्तको समझने वाले लोग बराबर ऐसा विवेचन कर सकते हैं। अब यहाँ मीमांसक शंका करते हैं कि व्यापार व्यवहार आदिक विशेषकी अनुपलब्धिसे यद्यपि कहीं व्यापार व्यवहार आदिक उत्पन्न करनेमें समर्थ चेतन आदिक गुणकी व्यावृत्ति सिद्ध हो जाती है, तिसपर भी कहीं उस व्यापार आदिकको जाननेमें असमर्थ चेतनादिककी व्यावृत्ति असिद्ध होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि सर्वरूपसे वहाँ चेतनकी व्यावृत्ति हुई है। समाधानमें कहते है कि यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि प्राणियोंमें व्यापार आदिक समस्त कार्योंको उत्पन्न करनेमें असमर्थ चेतनका असम्भवपना है, अर्थात् चेतन हो और उस चेतनके सद्भावका सूचन व्यापार आकार विशेष न पाया जाय यह बात नहीं बन सकती। यदि ऐसा हो कि व्यापारादिक समस्त कार्योंको उत्पन्न करनेमें असमर्थ चेतन हो तो वहाँ यह कहा जायगा कि यह शरीरी (देहवाला प्राणी) ही नहीं है मुक्त आत्माकी तरह। जैसे मुक्त आत्मा सिद्ध भगवानके व्यापार व्यवहार आदिक नहीं हैं तो वह शरीरी तो नहीं, शरीररहित है, केवल आत्मा ही आत्मा है। इससे यह बात सि[illegible]

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्यविशेषकी अनुपलब्धि होनेसे सर्वरूपसे पृथ्वी आदिकमें चेतन आदिक गुणकी व्यावृत्ति ही है। जैसे कि मृत शरीरमें पर चैतन्यके व्यापारादिककी निवृत्ति निर्णीत है ना, इसी तरह व्यापारादि कार्यविशेष न पाये जानेसे यह सिद्ध हो ही जाता है कि इस पृथिवी आदिकमें सर्वरूपसे चेतनादिक गुणकी व्यावृत्ति है।

अदृश्यानुपलम्भ अभावकी असिद्धिका नियम बनानेमें शंकाकारके मंतव्योंमें विडम्बना –यदि यह बात आप (मीमांसक) सब जगह मान लेंगे कि उस अदृश्यानुपलम्भसे सर्वरूपसे चेतनादि गुणकी निवृत्ति सिद्ध नहीं होती तो इस तरह यदि मानते हैं तो अब इस समय यहाँ राम, रावण, वेदके कर्ता आदिक पुरुषका अनुपलम्भ है और वह है अदृश्यका अनुपलम्भ। सो ऐसे काल और क्षेत्रकी अपेक्षासे दूरवर्ती पुरुषोंका अभाव सिद्ध हो जायगा और यह प्रसंग मीमांसकोंके विरुद्ध हो जायगा और तब देखिये ! इस तरह अदृश्यके अनुपलम्भसे अभावकी सिद्धि न मानने पर तो व्याप्ति भी सिद्ध नहीं हो सकती। कोई अनुमान बनाया गया जैसे कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे। जो जो कृतक होते हैं वे वे अनित्य होते हैं। तो ऐसी व्याप्ति बनानेमें विश्वभरके सारे कृतक और सारे अनित्य पदार्थ सामान्यतया ज्ञानमें लेने पड़े हैं ना, तो विश्वभरके सारे कृतक और अनित्य पदार्थ कहाँ दृश्य होरहे हैं ? और, जब वे दृश्य नहीं हो रहे तो उनकी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं बनाई जा सकती। और जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, इस अनुमानमें जो व्याप्ति बनाई जा रही है कि जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। तो सारे धूम और सारी अग्निका सामान्यरूपसे यहाँ बोध किया जा रहा है। लेकिन देखा कहाँ सारे धूमोंको और विश्वभर की अग्निको। तो उसकी भी व्यतिरेक व्याप्ति ही सिद्ध न हो सकेगी। क्योंकि इस अनुमान प्रयोगमें जब व्यतिरेक व्याप्ति लगाई जाती है कि जो जो अनित्य नहीं होता वह कृतक नहीं होता या जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता, तो सारे विश्वकी अनित्य कृतक अग्नि धूम ये कहाँ उपलब्ध हैं ? वे सब अदृश्य हैं और अनुपलम्भके अभावकी सिद्धि करनेमें समर्थ माना नहीं। फिर साध्यके अभावमें साधनका अभाव बताकर व्यतिरेक व्याप्ति जो बताई जाती है वह बन ही न सकेगी। तब तो कोई भी हेतु नहीं बन सकता है। बौद्ध सिद्धान्तमें अदृश्यानुपलम्भसे अभाव सिद्ध नहीं है तब परस्पर न छूने वाले परमाणुओंका विकल्प बुद्धिमें ही प्रतिभास नहीं हो रहा है तो उनके अभावकी असिद्धि हो जायगी, याने असंस्पृष्ट परमाणुओं अभाव सिद्ध नहीं होगा। किसी भी साध्यके लिए कुछ भी हेतु बना किसी भी हेतुकी सिद्धि नहीं हो सकती। तो इस तरह मीमांसकोंका यह सिद्धान्त उनके ही सिद्धान्तका विरोधक हो गया। अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धिका सिद्धान्त माननेमें अनुमानका उच्छेद हो जाता है। देखिये ! मीमांसक मतका अनुसरण करने वाले पुरुष दूरवर्ती पदार्थोंके अभाव की प्रसिद्धि नहीं मानते। वे भी विप्रकर्षी पदार्थोंके अभावकी सिद्धि समझ रहे हैं, अन्यथा वेदमें अकर्ताके अभावकी सिद्धिका प्रसंग हो जायगा, वेदमें सकर्तृपन सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जायगा अर्थात् उसका कर्तृत्व सिद्ध हो जायगा और सर्वज्ञ आदिकके अभावका साधन करने वाले वचनोंका विरोध हो जायगा सो वे मीमांसक यों अदृश्यानुपलम्भ होनेपर कर्ताके अभावकी सिद्धिको मानते हुए अब कहाँ मीमांसक रहे ? यह इनका निजी प्रतिपादन नहीं है। अनुमानका उच्छेद हो जाना इसमें दुर्निवार है अर्थात् अनुमान नष्ट हो जायगा। उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं किया जा सकता, क्यों कि साध्य और साधनमें व्याप्ति ही सिद्ध नहीं होती।

तर्कनामक प्रमाण न माननेपर अनुमानके उच्छेदका प्रसंग - देखिये ! कोई भी प्रमाणवादी तर्क नामक प्रमाणको नहीं मान रहे हैं. एक जैन शासनमें ही तर्क नामके प्रमाणकी व्यवस्था बतायी गई है, जो एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते वे तो अनुमान तर्क आदिक अन्य कुछ मानते हो नहीं। जो प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण मानते उन्होंने भी तर्क माना नहीं। जो ६ प्रमाण तक भी मानते हैं ऐसे मीमांसक जनोंने भी तर्क नामका कोई प्रमाण नहीं माना। और, जब तर्क प्रमाण नहीं रहता तो व्याप्ति सिद्ध न होनेसे अनुमान भी नहीं बनाया जा सकता। और, जहाँ अनुमान ही न बन सका वहाँ कुछ सिद्ध ही नहीं किया जा सकता। जो लोग अनुमान को नहीं मानते, केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं, या प्रत्यक्षको भी नहीं मानते, केवल शून्यवाद ही मानते उनको भी अपना मंतव्य सिद्ध करनेके लिए प्रमाण देना ही पड़ेगा, और फिर जो प्रमाण देंगे उससे ही अनुमानकी सिद्धि बनती है। तो अनुमान बिना कोई अपने सिद्धान्तको सिद्ध भी नहीं कर सकता और तर्क बिना अनुमानकी सिद्धि नहीं होती। अतः तर्क नामका प्रमाण मानना तो अति आवश्यक है, लेकिन अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी प्रसिद्धि कहने वाला पुरुष व्याप्तिको मान ही नहीं रहा। तब फिर अनुमानका उच्छेद दुर्निवार हो गया।

परोपगममात्रसे सिद्ध तर्कसे व्याप्ति व्यवस्था बनाकर अनुमान सिद्धि करनेमें आपत्ति यहाँ शंकाकार कहता है कि हम लोग तर्कनामक प्रमाणको नहीं मानते तो न सही लेकिन दूसरे लोग तो मानते हैं। जैन शासनने तो माना है, उनके माने गए तर्क प्रमाणसे व्याप्तिकी सिद्धि कर लेंगे तब अनुमानका उच्छेद न हो सकेगा। इस शंकाके समाधानमें कहते है कि यह बात संगत नहीं है, क्योंकि यहाँ व्याप्तिकी सिद्धि मानते हैं परोपगमसे, तो वह परोपगम भी कैसे सिद्ध है ? उसको भी ये कहेंगे कि परोपगमसे सिद्ध होगा। तो इस तरह अनवस्था दोष आ जायगा। व्याप्तिको सिद्ध करनेके लिए यदि परोपगमका माध्यम लेते हो तो उस पद्धतिमें अनवस्था दोष आयगा। यदि कहो कि परोपगम अनुमानसे सिद्ध हो जायगा तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष आ जायगा। किस प्रकार ? कि जब अनुमान प्रसिद्ध बने तब तो उससे परोपगमकी सिद्धि होगी और जब परोपगमकी सिद्धि बने तो उससे व्याप्तिकी सिद्धि होगी, तब अनुमान की सिद्धि बनेगी। तो जब व्याप्ति सिद्ध न हो सकी तो कोई अनुमान भी न बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकेगा इस कारणसे यह प्रतिपादन श्रेयस्कर नहीं है कि सर्वात्मक रूपसे चेतना आदि गुणोंकी निवृत्ति पृथ्वी आदिकमें सिद्ध नहीं होती।

रागादि हानिका अतिशायन देखा जानेसे किसी आत्मामें रागादि परिक्षयके निर्णयके कथनकी अकलङ्कता देखो भैया ! पृथ्वी आदिकमें व्यापार आकारनिवृत्ति सर्वात्मकरूपसे चैतन्य आदिक गुणोंकी निवृत्ति सिद्ध होती ही है। जैसे कभी आपने किसी चूहा आदिक मृत जीवको देखा तो वहाँ हर एक कोई यह समझ जाता है कि अब इस शरीरमें जीव न रहा तो इस तरह मृत शरीरमें चैतन्य आदिक गुणकी व्यावृत्ति प्रसिद्ध हो गई तब बुद्धिहानिसे हेतुका व्यभिचार देना ठीक न रहा, क्योंकि बुद्धिहानि भी अब सपक्ष बन गयी। इस प्रसंगका मूल कथन यह है कि जब यह कहा गया कि जिसकी हानिमें तारतमता देखी जाती है उसकी कहीं सम्पूर्णतया हानि भी सिद्ध होती है। रागादिक दोषोंकी हानि अनेक जीवोंमें तारतमरूपसे देखी जाती है तो उससे सिद्ध होता है कि किसी पुरुषमें रागादिककी हानि पूर्णतया भी है। इस बातपर शंकाकारने हेतुमें यह व्यभिचार दोष दिया था कि बताओ बुद्धिकी हानिमें भी तो तारतमता देखी जाती है। किसीमें बुद्धि कम है, किसीमें उससे भी अधिक कम है, तो इस कमीके देखनेसे फिर यह भी कहना पड़ेगा कि किसीमें बुद्धि बिल्कुल नहीं है। तो इसके उत्तर दो प्रकारसे दिए गए हैं एक तो यह कि विकारकी हानिके सम्बन्धमें ही यह अनुमान बनाया गया। जो उपाधिके सन्निधानमें विकाररूप भाव है उसकी हानि होनेपर हानिकी तारतमता देखी जानेपर सिद्ध होता है कि किसी जगह ये विकार बिल्कुल भी नहीं हैं। दूसरा उत्तर यह दिया गया है कि जो मृत शरीर हैं उनमें बुद्धिकी हानि सम्पूर्णरूपसे है, इसलिये यह सपक्ष बन जाता है हेतुमें फिर दोष नहीं आता। और, इस तरह यह व्याप्ति बन गई कि जिसकी हानि अतिशय वाली देखी जाती है अर्थात् अधिकाधिक रूपसे देखी जाती है, उसकी कहींपर सर्वरूप से व्यावृत्ति हो जाती है। जैसे बुद्धि आदिक गुण निर्जीव पत्थर आदिके बिल्कुल भी नहीं रहे, सो सर्वरूपसे बुद्धि आदिक गुणका अभाव हो गया तो इसी प्रकार रागादिक दोषकी हानि अतिशयवाली देखी गई है। कहीं दोषकी हानि जितनी है उससे अधिक कहीं औरमें पाई जाती है। किसीमें और अधिक हानि है। तो यों होते-होते कोई पुरुष ऐसा भी है कि जहाँ दोष आदिककी हानि पूर्णरूपसे है तब उस अकलंक वचनकी व प्रभुकी सिद्धि कैसे न बनेगी ? याने इस कारिकाका कथन निर्दोष है।

रागादि हानि होते होते कहीं रागादिके पूर्ण क्षयकी साध्यता—मुख्य रूपसे तो यहां अनुमानमें यह समझना चाहिए कि यहाँ साध्य बनाया गया है रागादि दोषोंका प्रध्वंसाभाव। रागादि दोष हुए हैं, फिर उनका प्रध्वंस हुआ, इस तरहसे अभाव हुआ, वह यहाँ साध्य है। जो पुद्गल जीवरहित पदार्थ हैं उनमें रागादिककी निवृत्ति होनेको साध्य नहीं कहा जा रहा। सिद्ध तो करना है जीवमें। जीवमें रागा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिक दोष होते हैं तो रागादिक दोष जहाँ कभी हो ही नहीं वहाँ प्रध्वंस नहीं होता, ऐसे रागादिक रहित आत्माको आप्त सिद्ध किया जा रहा है। तब यह विधान पूर्णतया युक्तिसंगत हुआ कि दोष और आवरणकी हानि किसी परम पुरुषमें निःशेषरूप से होती है, क्योंकि यह हानि अतिशय वाली देखी गई है। गुणस्थानके अनुसार जब तक सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता जब तक तो दोष और आवरणकी हानिके सम्बन्धमें कुछ कहा ही नहीं जाता। सम्यग्दर्शन होनेके बाद जैसे चारित्रगुणके स्थान बढ़ते जाते है उसी प्रकार रागादिक दोषकी हानि भी बढ़ती जाती है। जैसे चतुर्थ गुणस्थानसे पंचम गुणस्थानमें रागादिक हानि विशेष है। चतुर्थ गुणस्थानमें अविरत सम्यग्दृष्टि था अब पंचम गुणस्थानमें अणुव्रती सम्यग्दृष्टि हुआ। एक देश संयम होनेसे रागादिक कम हो गए. फिर छठे सातवें गुणस्थानमें महाव्रत हो जाता है। वहाँ प्रत्याख्यानावरण कषायजनित राग भी नहीं रहता। श्रेणियोंमें और भी राग कम हो जाता और यों होते-होते १२वें गुणस्थानमें रागका मूल भी नहीं रहता। तो रागकी निःशेष हानि वहाँ हुई और ज्ञानके आवरण करने वाले ज्ञानावरण कर्मकी निःशेष हानि १२ वें गुणस्थानके अन्तमें हुई। १३ वें गुणस्थानमें सकल परमात्मा रागादिक दोषोंसे रहित ज्ञानगुणसे पूर्ण सम्पन्न हो जाता है। उन्हीं सकल परमात्माको आप्त कहते हैं। इनके प्रणीत वचनोंमें, शासनमें परस्पर कहीं विरोध नहीं पाया जाता है। इस कारण ये अरहंत परमात्मा ही आप्त हैं। उसकी सिद्धिके लिए यहाँ सामान्यरूपसे आप्तपने की सिद्धि की जा रही है कि कोई होता है परम पुरुष ऐसा कि जिसके दोष और आवरणकी पूर्णरूपसे हानि होती है।

आवरणहानिकी कर्मत्वपर्याय व्यावृत्तिलक्षणरूपता—अब यहाँ कोई तटस्थ पुरुष शंका करता है कि यदि प्रध्वंसाभावका नाम हानि है अर्थात् कुछ होकर अन्य कुछ अन्यका नाम हानि कहते हो तो ऐसी हानि पौद्गलिक ज्ञानावरण कर्म द्रव्यके सम्भव ही नहीं है, क्योंकि द्रव्य नित्य हुआ करता है और उस कर्म द्रव्यकी पर्यायकी हानि भी हो जाय तो भी किसी कारणसे फिर कर्म पर्यायकी उत्पत्ति हो जाती है, क्योंकि वह एक पौद्गलिक द्रव्य है ना। अभी कर्मपर्यायमें थे अब नहीं रहे ऐसी पर्याय मिट जाय तो भी कुछ कालके बाद उसमें कर्मपर्याय आ सकती तब समस्त रूपसे हानि तो नहीं हुई यदि समस्त रूपसे कर्म पर्यायकी हानि हो जाय तो कर्मद्रव्यकी भी हानि होनेका प्रसंग है। समस्त रूपोंमें कर्मपर्याय त्रिकाल न रहे तो कर्मद्रव्य भी फिर कुछ न रहेगा क्योंकि द्रव्य पर्यायोंका अविनाभावी है। जब उसमें कोई पर्याये न रहीं तो द्रव्य ही क्या रहा ? और, इस तरह जैसे कर्मद्रव्यकी बात कही जा रही है वहाँ यदि निरन्वय विनाश मान लेते हैं तो निरन्वय विनाश फिर आत्माका भी मान लिया जायगा। आत्मामें भी पर्यायें होती हैं और उन पर्यायोंका हो जाय विनाश तो आत्मा द्रव्य ही क्या रहा ? इस प्रकार शंका करने वालेके प्रति समाधान करते हैं कि शंकाकारने अभी सिद्धान्तका ठीक परिज्ञान नहीं किया है क्योंकि क्षय, प्रध्वंसाभाव, हानि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का अर्थ यहां व्यावृत्तिरूप किया है। जैसे कि मणिसे, रत्नसे मल आदिककी निवृत्ति हो जाय तो यह कहलाता है रत्नके मलकी हानि, क्योंकि जो पदार्थ सत् है उसका अत्यन्त विनाश कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार आत्मामें कर्म बँधे हुए थे, उन कर्मोंकी निवृत्ति हो गई तो इसके मायने यह हुआ कि आत्माकी भी शुद्धि हो गई। तो आत्मामेंसे कर्मोंके व्यावृत्त हो जानेका नाम यहाँ आवरणका क्षय है। यहांपर प्रध्वंसाभावरूप क्षयको हानि कहा गया है और वह हानि व्यावृत्तिरूप ही है। आत्मा में आवरणकी हानि हो गई इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आत्मामेंसे आवरण निकल गए। अब वे कर्मद्रव्य हैं निकलकर कहीं भी पुनः कर्मरूप पर्यायको प्राप्त हो जायें, हाँ, लेकिन इस आत्मामें कर्मरूप पर्यायको लाकर बाँध नहीं सकते। तो यह प्रध्वंसाभावरूप हानि व्यावृत्तिरूप ही है। जैसे स्वर्ण पाषाणसे मलकिट्ट आदिककी निवृत्ति हो जाय तो यह कहलायगा स्वर्णकी शुद्धि, पर किट्ट आदिकका अत्यन्त विनाश नहीं होता। उसे निकाल कर फेंक दिया। अब जिन अणुस्कंधोंसे उसका निर्माण है वे तो रहेगा ही उनका अत्यन्त अभाव नहीं बनता।

वस्तुके द्रव्यत्वरूपसे ध्रौव्य होनेपर पर्यायरूपसे प्रध्वंसके कथनकी युक्तता—यदि अत्यन्त विनाशका नाम प्रध्वंसभाव कहोगे तो यह बतलावो कि वह अत्यन्त विनाश द्रव्यका होता है या पर्यायका। द्रव्यका तो कह नहीं सकते क्योंकि द्रव्य शाश्वत नित्य है पर्यायका भी अत्यन्त विनाश नहीं कह सकते क्योंकि पदार्थ द्रव्यरूपसे ध्रौव्य रहता ही है, इस विषयमें इस तरह अनुमान प्रयोग किया गया है कि विवादापन्न मणि आदिकमें मल आदिक पर्यायार्थिक दृष्टिसे विनश्वर हैं तो भी द्रव्यार्थिक दृष्टिसे वे ध्रुव हैं, अन्यथा उनका सत्त्व नहीं रह सकता है। यदि ध्रौव्य न माना जाय तो फिर सत्ता ही क्या रही ? फिर किसमें पर्यायकी बात कही जाय? पर्यायका उत्पाद होना, व्यय होना यह तो किसी आधारमें ही कहा जायगा। और, वह जो आधार है वह ध्रुव है और द्रव्यार्थिक नयसे परिज्ञात होता है। इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि अन्यथा सत्त्वानुत्पत्ति है इस हेतुका शब्दके साथ व्यभिचार नहीं बता सकते। यदि शंकाकार यह मनमें शंका रखे कि देखो शब्दमें पर्याय नष्ट हो जाती है और फिर उसका द्रव्य ही नहीं रहता है सो ऐसी बात नहीं है। शब्द पर्यायके नष्ट होनेपर भी शब्दवर्गणाको द्रव्यरूपसे ध्रौव्य माना ही गया है। वे शब्द वर्गणायें इस समयमें शब्दरूप व्यक्त नहीं हैं लेकिन वे अणुस्कंध जिनका परिणमन शब्द पर्याय हुई है वे बराबर स्कंध मौजूद हैं इस कारण अन्यथा सत्त्व नहीं हो सकता, इस हेतुमें व्यभिचार नहीं आता। शंकाकार कहता है कि बिजली और दीपक आदिकके साथ इस हेतुका अनैकान्तिकता स्पष्ट ही है। बिजली चमकी कि चमकनेके बाद बिजलीका नाम निशान भी नहीं रहता। दीपक बुझ जाता है तो उसके बुझनेके बाद दीपकका नाम निशान भी नहीं रहता, तब तो उक्त अनुमानमें दिए गए हेतुमें अनैकान्तिक दोष आता ही है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। बिजली दीपक आदिकके स्कंध भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य होनेके कारण ध्रुव हैं। जिन पौद्गलिक स्कंधोंका इस समय बिजलीरूप परिणमन हुआ, बिजली रूप परिणमन मिट जानेके बाद उनका अन्यरूप परिणमन है। अंधकाररूप परिणमन है, पर जिनमें विद्युत् परिणमन हुआ है वे स्कंध कहीं नष्ट नहीं हो गए। इसी प्रकार जिन अणुस्कंधोंका दीपकरूपमें परिणमन हुआ है, दीपकके बुझ जानेपर उन स्कंधोंका विनाश नहीं होता। वह अंधकार पर्यायको लिए हुए स्कंध फिर भी मौजूद हैं और यह सम्भव है कि उन स्कधोंका फिरसे दीपकरूप परिणमन हो सके। विद्युतरूप परिणमन हो सकेगा। तो पदार्थ किसी पर्यायरूपसे नष्ट होते हैं फिर भी सर्वथा नष्ट नहीं होते। यदि पदार्थोंके क्षणिकपनेका एकान्त मान लिया जाय कि प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षणमें नष्ट होते, दूसरे क्षणमें उस पदार्थका कुछ नहीं रहता तो इस एकान्तके अर्थ क्रियाका सर्वथा विरोध है। फिर उस पदार्थमें अर्थक्रियाका परिणमन नहीं हो सकता।

कार्माणद्रव्यमें कर्मत्वपर्यायके अभाव होनेमें आवरणहानिका व्यवहार —जब कि वस्तु द्रव्यरूपसे ध्रुव है व पर्यायरूपसे अध्रुव है तब यह सिद्ध हुआ मान लेना चाहिए कि जिस प्रकार मणिस मल आदिकक निवृत्ति होनेका नाम हानि है स्वर्ण पाषाणसे किट्टकालिमा नष्ट (अलग) हो जानेका नाम उन मलोंकी हानि है और यही मणि, स्वर्णकी शुद्धि कहलाती है इसी प्रकार जीवमें कर्मकी निवृत्ति होनेका नाम हानि है। जीवमें जो ज्ञानावरण आदिक कर्म बँधे हुए थे उन कर्मोंकी निवृत्ति होनेका नाम हानि है और ऐसे कर्मोंकी हानि होनेपर जीवकी आत्यंतिकी शुद्धि कहलाती है। समस्तरूपसे कर्मत्व पर्यायके विनाश होनेपर भी द्रव्यकर्मका विनाश नहीं होता। जैसे योगीके कर्मपर्याय नष्ट होते हैं तो हुआ क्या वहाँ कि जो कार्माण वर्गणा स्कंध कर्मरूप, पर्यायरूपसे उस योगीमें बँधे हुए थे वे कार्माणवर्गणायें अब अकर्म पर्यायरूपसे परिणमन गए। वर्गणायें वही रही पर पहिले उनमें कर्मत्वका परिणमन था अब अर्मत्व परिणमन न रहा। जहाँ भी यह वर्णन आता है कि कर्मका क्षय किया गया तो उसका अर्थ यह नहीं है कि कर्म द्रव्यका अत्यन्त विनाश कर दिया गया, किन्तु उस कर्म द्रव्यमें अब कर्मत्व पर्याय न रही, कर्मत्व पर्यायकी निवृत्त होनेका नाम कर्मका क्षय कहलाता है। जैसे कि स्वर्णमें जो मलद्रव्य पड़ा हुआ है जिससे कि स्वर्ण मलिन कहलाता है उस मलद्रव्यकी मलात्मक पर्याय जब दूर हो जाती है उस स्वर्णमें जो मलका संयोग था वह दूर हो जाता है तो हुआ क्या वहाँ ? निर्मल पर्याय से मुक्त होनेरूपसे स्वर्ण परिणमन गया। द्रव्यका अत्यन्ताभाव नहीं किया गया। इस कथनसे यह भी निर्णय आया कि तुच्छ प्रध्वंसाभावका तो निराकरण ही है। प्रध्वंसाभाव क्या वस्तु है ? उत्तर पर्यायकी उत्पत्ति होनेका ही नाम पूर्व पर्यायका प्रध्वंस कहलाता है। प्रत्येक पदार्थमें यह बात सतत् होती ही रहती है कि नवीन समयमें नवीन पर्यायरूपसे वह द्रव्य बना तो पूर्व आकारमें क्षय हो जाता है। इस बातका समर्थन इसी आप्तमीमांसाग्रन्थमें आगे "कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमात्लक्षणात्पृथक्, न तौ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जात्याद्यवस्थानादनपेक्षा: खपुष्पवत्" इस कारिकामें किया जायगा।

आत्माकी केवलता व दोषविकलताकी सिद्धिका निर्णय—उक्त कथनसे यह निश्चय बनाना चाहिए कि मणिकी केवलता रहनेका नाम ही मल आदिककी विकलता कहलाती है। मणिके मल पड़ा हुआ था, उस समय मणि केवल न था। जब मणिसे मल निकाल लिया गया तो वहाँ चाहे यह कहो कि मलकी विकलता हो गयी या यह कहो कि मणिकी केवलता प्रकट हो गई। दोनोंका भाव एक है, इसी प्रकार जब आत्मासे कर्मकी कर्म पर्यायसे अविष्टता हट जाती है कार्माण द्रव्यका सम्बंध भी हट जाता है तो उस समय चाहे यों कह लीजिये कि कर्मकी विकलता हो गई। अब उस आत्मामें कर्म नहीं रहे चाहे यह कह लीजिये कि आत्माकी केवलता प्रकट हो गई। कर्मोंकी विकलताका ही नाम आत्माकी केवलता कहलाती है इस कारण यह प्रसंग दोष नहीं दिया जा सकता कि समस्तरूपसे पर्यायरूपकी हानि होने पर कर्मद्रव्यका ही विनाश हो जायगा। जैसे कर्मकी विकलता होनेपर भी आत्माकी केवलता रहती है उसी प्रकार बुद्धिकी विकलता होनेपर भी आत्माकी केवलता रही आयें। वह भी प्रसंग दोष नहीं दिया जा सकता। कारण उसका स्पष्ट है कि द्रव्यार्थिक दृष्टिसे बुद्धिका आत्मामें भी विनाश नहीं होता अतएव सर्वात्मकरूपमें बुद्धिके क्षय होनेका प्रसंग नहीं आता। तो जब बुद्धिका सर्वात्मकरूपसे क्षय न बना तो पर्यायार्थिक दृष्टिका क्षय होनेपर भी सिद्धान्तका विरोध नहीं होता।

आत्माके ज्ञानगुणकी सर्वथा निवृत्तिकी एवं आत्माका अज्ञानरूपसे रहनेकी असंभवता—अब यहाँ क्षणिकवादी बौद्ध शंका करते हैं कि जैसे कर्मस्वभाव पर्यायकी निवृत्ति होनेपर भी कर्म द्रव्यका अकर्म पर्यायरूपसे अवस्थान मान लिया गया उसी प्रकार बुद्धि पर्यायरूपसे निवृत्ति होनेपर भी आत्माका अबुद्धि पर्यायरूपसे अवस्थान मान लेना चाहिए और तब सिद्धान्तका स्पष्ट विरोध है। शंकाकारका यहाँ यह मतव्य है कि जैसे कर्म द्रव्यसे कर्मपर्याय निकल जाती है, कर्म पर्याय निकलने पर वह द्रव्य अकर्मपर्याय रूपसे रह जाता है तो ऐसे ही बुद्धि पर्यायरूपसे निवृत्ति हो जाय आत्मा तो आत्माका फिर अबुद्धिपर्याय रूपसे रहना बन जायगा अर्थात् आत्मा बुद्धिहीन, ज्ञान हीन हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह अतिप्रसंग दोष यहाँ नहीं होता, क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तमें विषमता है दृष्टान्त है कर्मद्रव्य, वह है पुद्गल द्रव्य तो कर्मद्रव्य आत्मामें परतंत्रताको करते हुएमें उसका कर्मत्व परिणाम कहलाता है। और जब परतंत्रता नहीं कर रहा तब उस कर्मद्रव्यका अकर्म पर्यायरूपसे अवस्थान कहलाता है। तो कर्मका तो सामान्य लक्षण रूप रस गंध स्पर्शमय होता है, पौद्गलिकताके नाते उस कार्माण स्कंधके रूप, रस, गंध स्पर्शकी बात लक्षमें बनती है, सो किसी भी समय रूप, रस, गंध, स्पर्शका विनाश नहीं होता। कर्मत्व तो एक आनुषंगिक परिणमन है। कर्मरूप परिणमन हो तब भी वहाँ रूपादिक है अकर्मरूप परिणमन हो तब भी वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूपादि है। पुद्गल द्रव्यका कर्मत्व लक्षण नही किया गया। पुद्गलका तो रूपादिमान
होना लक्षण बताया है। इस कारण इस दृष्टान्तसे दृष्टान्तमें कोई विरोधकी बात नहीं
कही जा सकती। अब यहाँ जीव द्रव्यमें भी निरखिये कि बुद्धिद्रव्य जीव है अर्थात्
ज्ञानमात्र जीवकी प र्याय है। पर उसका सामान्य लक्षण उपयोग कहा गया, ज्ञान कहा
गया। तो बुद्धिका अभाव बिल्कुल हो जाय और बुद्धिरहित ज व रहे तो इसका अर्थ
यह हुआ कि लक्षण मिटा तो लक्ष्य भी मिट गया। लक्षणके अभावमें लक्ष्य कभी नहीं
ठहर सकता। आत्माका स्वरूप ही ज्ञान है। तो लक्षणके अभावमें लक्ष्य नहीं ठहर
सकता, तब ता लक्षणमें लक्ष्यके प्रलक्षण होनेकी प्रसिद्धि होनेसे यह बताया जाय कि जीव
का अबुद्धि पर्याय अ ादिकरूपसे अवस्थान हो जायगा सो प्रसंग नही आता याने जीवके
औ नि:शेषरूपसे बुद्धिका विनाश हो जायगा यह नहीं कहा जा सकता।

अज्ञानादि दोषोंकी सर्वथा निवृत्ति संभव होनेके सम्बन्धमें शंका समा-

धान—यहाँ शंकाकार कहता है कि सत् पदार्थका अत्यन्त विनाश नहीं होता, ऐसा
अभी स्वीकार किया गया है तो जब असत्का अत्यन्त विनाश नहीं होता तब अज्ञान
आदिक दोषोंकी पर्यायार्थिक दृष्टिसे हानि नि:शेषरूपसे सिद्ध न हो सकेगी, आवरणकी
तरह। अर्थात् जो सत् है उसका तो विनाश माना नहीं गया। तो अज्ञान आदिक दोष
पर्याय दृष्टिसे नष्ट हो जायें तो भी उसमें अव्यक्तरूपसे अज्ञान आदिकपना रहेगा ही
और उसका सत्त्व रहेगा और इस प्रकार दो सामान्यका आत्मामें रहना बन गया है
इस कारण आत्माके निर्दोषपनेकी सिद्धि नहीं हो सकती है, भले ही व्यक्तरूपसे दोष
न रहें लेकिन अव्यक्तरूपसे द्रव्यरूपसे उसमें दोष रहेंगे तो आत्मा कभी दोषोंसे रहित
सिद्ध हो ही नहीं सकता। दोषोंका सत्त्व मानने वाले मीमांसकोंके प्रति अब समाधान
दिया जाता है कि इस प्रकारका कहना तत्त्वज्ञानके अभावसे बना है क्योंकि आत्मामें
जो आगंतुक मल है वही तो प्रतिपक्ष है और उसीका विनाश होता है। अपने विनाश
का कारण जब बढ़ता है तब तो परिक्षय हो ही जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि
आत्माका परिणमन दो प्रकारसे होता है एक स्वाभाविक परिणमन, दूसरा आगंतुक
परिणमन। जो परिणमन किसी परद्रव्यके निमित्त बिना अपने आप अपने ही सत्त्व
से होता हो, वह तो है स्वाभाविक परिणमन। जैसे अनन्तज्ञान, अनन्त आनन्द आदिक
ये परिणमन स्वाभाविक हैं क्योंकि ये आत्माके स्वरूप हैं, स्वभाव ही आत्मामें ज्ञाना-
नन्दका है और उस ज्ञानानन्दका विकास हुआ है तो यह स्वाभाविक परिणमन है,
किन्तु आत्मामें जो अज्ञान रागद्वेषादिक परिणमन होते हैं वे आगतुक परिणमन हैं,
क्योंकि ये परिणमन होते हैं वे आगंतुक परिणमन हैं, क्योंकि ये परिणमन कर्मोदयका
निमित्त पाकर हुए हैं। तो आत्माके प्रतिपक्षी अज्ञान रागद्वेषादिक मल हुए और जो
आत्माका प्रतिपक्षी है, आगंतुक है, उसके मुकाबलेमें अन्य कुछ आया हुआ है उसका
क्षय होना प्रसिद्ध है, पर जो आत्मामें स्वभावरूप परिणमन है उसका क्षय नहीं किया
जा सकता। इसका अनुमान प्रयोग है कि जो जहाँ आगंतुक है वह वहाँ पर अपनी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपनी हानिके कारणके बढ़नेसे नष्ट हो जाया करता है। जैसे स्वर्ण ताम्र आदिकके मिश्रण होने वाले जो कालिमा आदिक दोष हैं वे आगतुक हैं। आगंतुक हैं तब वे अपनी हानिके निमित्त बढ़नेसे अर्थात् मल शोधनेकी विधिसे अग्निमे तपाते हैं तो अग्निमें तपानेकी वृद्धि करने से उस मलका अत्यन्त विनाश हो जाता है इसी प्रकार अज्ञान आदिक मल आत्मामें आगतुक (आये हुए) हैं, अतएव उन आगतुक मलोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। इस अनुमानमें जो यह हेतु दिया गया है वह स्वभाव नाम का हेतु है। यह हेतु असिद्ध नहीं है। कैसे असिद्ध नहीं है कि यह बात बिल्कुल निर्णीत है कि जो बात जहाँ कादाचित्क पायी जाय वहाँ उसे आगंतुक समझना चाहिए। जैसे स्फटिक पाषाणमें लालिमा आदिक आकार आ जायें तो वे किसी उपाधिके सम्बन्धसे ही तो आये हैं अतः उस उपाधिके विनाश होनेपर स्फटिक पाषाणमें वे कालिमा आदिक नहीं रह सकती। सो सर्वथा व्यावृत्ति आगंतुक मलकी हुआ करती है, स्वभावकी नहीं हुआ करती।

आत्मामें आगत आगन्तुक मलोंकी नि शेष हानि संभव होनेका सयुक्तिक वर्णन—इस कारिकामें मूल बात यह बतायी गई है कि दोष और आवरणकी हानि कहीं समस्तरूपसे हो जाती है क्योंकि इसकी हानिका अतिशय देखा जाता है। कहीं रागादिक कम हैं कहीं और कम हैं यों रागादिक कहीं बिल्कुल न रहें सिद्ध होता है। तो इस तरह कोई यह कहे कि ज्ञानकी हानि भी किसी पुरुषमें जितनी देखी जाती है उससे अधिक ज्ञान हानि अन्य जीवमें पायी जाती है उससे अधिक ज्ञान हानि अन्य जीवमें है। तो कोई जीव ऐसा होगा कि जिसमें ज्ञानकी हानि निःशेषरूपसे हो जायगी। यह बात यों नहीं कही जा सकती कि ज्ञानकी हानि भी देखी जा रही है, फिर भी ज्ञान आत्माका स्वरूप है। आत्माके प्रतिपक्षी आवरण आदिककी अधिकता होनेपर ज्ञानकी कमी हो गई लेकिन कमी हो जावे भले ही पर आत्म का स्वरूप है, इस कारण इसका किसी आत्मामें सर्वथा अभाव नहीं किया जा सकता है लेकिन रागादिक मल आत्माके स्वभावभूत नहीं हैं। वे आगंतुक मल हैं। माया, लोभ प्रकृतिका उदय होनेपर रागद्वेष बनते हैं और क्रोध, मान प्रकृतिका उदय होनेपर द्वेष बनता है। तो ये रागद्वेषादिक मल आगंतुक हैं। तो आगतुकोंमें तो यह नियम है कि आगंतुक मल अपनी हानिके कारणोंके बढ़नेपर कहीं उसकी पूरेरूपसे हानि हो जाती है लेकिन स्वभावभूत वस्तुमें यह नियम नहीं किया जा सकता कि ज्ञानहानिके कारणोंके बढ़नेपर याने प्रतिपक्ष आवरणके उदय होनेपर भी उसकी कहीं निःशेषरूपसे हानि हो जाय। याने वृद्धि हानिकी तारतमताके कारण ज्ञानका कहीं सर्वथा अभाव हो जाय यह नहीं हो सकता। सर्वथा अभाव होगा तो आगंतुक मलका ही होगा। आत्मामें रागादि दोष आगंतुक और कादाचित्क हैं इस कारण उसका अभाव प्रसिद्ध होगा किन्तु स्वभावका कुछ अंशोंमें आवरण होनेपर भी स्वभावका अभाव न होगा। रागादिक दोषोंकी हानि की तरह ज्ञान आदिकी सर्वथा हानि नहीं कही जा सकती। और, कर्मत्व पर्याय नष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेपर कर्मका अकर्मरूपसे रहनेका उदाहरण देकर अज्ञान आदिक दोषोंके मिटनेपर किसी न किसी रूपमें अज्ञान आदिक दोष रहे आये यह भी नहीं कहा जा सकता।

रागादिदोषोंमें आगन्तुकता व कादाचित्कताकी सिद्धि—यहाँ यह बताया जा रहा है कि आत्मामें जो रागादिक दोष होते हैं वे तो निर्मूल हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, पर जो ज्ञान हानि है वह ज्ञान हानि होते होते किसी आत्मामें ज्ञान पूरे तौरसे नष्ट हो जाय यह नहीं हो सकता। इसका कारण बताया है कि रागादिक दोष तो है आगंतुक और ज्ञान परिणति है स्वाभाविक तो जो दूसरे कारणसे आयी हुई बात है वह तो मिट सकती है और जो अपने स्वभावसे उठी हुई बात है वह कहीं नष्ट नहीं हो सकती। तो ये रागादिक दोष आगंतुक हैं, क्योंकि कर्मके उदयके निमित्त से हुए हैं। इनकी आगतुकता कादाचित्क होनेसे अर्थात् आये और नष्ट हो गए ऐसी अनित्यता होनेसे भली भाँति सिद्ध है। तो आत्म में ये दोष अज्ञान रागादिक ये कादाचित्क हैं। कभी हुए और मिट गए ये आत्माके स्वभावरूप नहीं हैं। कादाचित्कका अर्थ मात्र अध्रुव नहीं, किन्तु निमित्तके होनेपर बढ़ना व निमित्तके कम होनेपर घटना और निमित्तके बिल्कुल न रहनेपर इनका मूल नाश होना ऐसी वृत्ति जहाँ पायी जा सकती है उसे कादाचित्क कहते हैं। तो देखो! ये रागद्वेष कादाचित्क हैं। जब सम्यग् दर्शन आदिक गुणोंका आविर्भाव होता है तो आत्मामें वे दोष नहीं ठहरते, इससे जाना जाता है कि ये अज्ञान आदिक दोष कादाचित्क हैं।

आत्मामें दोषोंके सतत रहनेकी शंका व उसका समाधान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि देखिये! गुणोंके प्रकट होनेसे पहिले दोषका सद्भाव था तो गुणोंके प्रकट होनेकी दशामें भी तिरोहितरूपसे दोषका सद्भाव रहेगा इसलिए ये दोष कादाचित्क नहीं किंतु आत्मामें निरन्तर रहते हैं यहशंका मीमांसकसिद्धान्तकी मीमांसक लोग यह मानते हैं कि आत्मा दोषका पिण्ड है। क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष, इन्हींका समूह तो आत्मा है और जब ये दोष कम होते हैं तो आत्मामें कुछ गुण नजर आते हैं। तो आत्मामें स्वभाव तो दोषका पड़ा है, पर दोष कुछ कम रहे, दोषोंका कहीं अभाव हो तो प्रकट होते हैं। इस तरह मीमांसक सिद्धान्तानुयायी आत्माको दो स्वभावी मानते हैं। इसीके अनुसार यह शंकाकी गई है कि जब आत्मामें गुण प्रकट न हुए तब तो बराबर अनादि कालसे दोष चले आ रहे थे, तो गुण प्रकट होनेकी हालतमें भी वे दोष तिरोहितरूपसे है, कहीं दोष मूलसे नहीं उखड़े हैं। दोषोंको कादाचित्क कहना, कभी होना कभी न होना ऐसी कभी २ सत्ता की बात कहना यह युक्त नहीं है। दोष तो निरन्तर आत्मामें रहते हैं। मीमांसककी इस शंकाका समाधान करते हैं कि दोषोंको आगंतुक न बताकर गुणोंको ही आगंतुक बताना और दोषोंको आत्माका स्वभाव कहना यह बातयों युक्त नहीं है कि जिस युक्ति से तुम यह कह रहे हो उस युक्तिसे तुम्हारे यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि गुण भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सतत हैं। दोषोंके होनेसे पहिले गुणका सद्भाव था तो दोषोंके प्रकट होनेके समय भी
वे गुण तिरोहित रूपसे हैं। ऐसा यहाँ भी कहा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता
कि दोष न रहनेके बाद जब गुणोंका सद्भाव है तो जब तक दोष रहे थे उस कालमें
भी गुणोंका तिरोहित रूपके सद्भाव है यों गुणोंमें भी निरन्तर रहनेकी बात सिद्ध
होती है। और फिर ऐसा माननेपर कि गुणके सद्भावके सम्बन्धमें भी तिरोहित दबे
हुए रूपसे दोष रहा करते हैं, ऐसा कथन स्वीकार करनेपर जो आपके यहाँ हिरण्यगर्भ
आदिक बड़े संत हुए हैं, जो वेदके अर्थज्ञानके बड़े अधिकारी माने गए हैं। तो जब
आत्माका स्वभाव दोषका रहा तो उन हिरण्यगर्भ आदिकने जब वेदका अर्थज्ञान किया
उस समयमें भी वेदक अर्थके अज्ञानका प्रसंग आता है हिरण्यगर्भादिक महंतोंके, क्योंकि
आत्माको तो तुमने दोष स्वभाव वाला माना। तो हिरण्यगर्भादिक भी तो जीव थे।
दोष स्वभाव उनके भी था। तो जिस समयमें उन्होंने वेदका अर्थज्ञान किया उस काल
में वेदके अर्थका अज्ञान भी रहा आया है, यह बात बन जायगी।

आत्माको दोषस्वभाव सिद्ध करनेमें दिये गये आक्षेपके बचाव व
उनके समाधान —यहाँ मीमांसक कहते हैं कि हिरण्यगर्भ आदिक संतोंके वेदके अर्थ
का ज्ञान था, उस समय उन्हें वेदके अर्थका अज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान और
अज्ञानमें परस्पर विरोध है। जहाँ ज्ञान है वहाँ अज्ञान कैसे ठहर सकता ? तो उन
संतोंने जिनको वेदका ज्ञान था उनके वेदका अज्ञान नहीं रह सकता। एक आत्मामें
एक ही समयमें ज्ञान और अज्ञान बना रहे यह बात नहीं बनती। तो उत्तरमें कहते हैं
कि इस ही कारणसे तो समस्त गुण और दोषोंका एक ही आत्मामें एक ही समयमें
ठहरना नहीं बन सकता। जो जीव शुद्ध है, जिसके विशुद्ध ज्ञान प्रकट हुआ है उसके
दोष भी रहा आये यह बात न बनेगी। क्योंकि दोष जब था तब गुण विकास नहीं
जब गुण विकास हुआ तब दोष नहीं, इसलिए गुणके सद्भावके समयमें तिरोभूतरूपसे
भी दोषका सद्भाव नहीं माना जा सकता। अब यहाँ मीमांसक फिर शंका करता है
कि जिस आत्मामें रागद्वेष नहीं रहा उसमें फिर भी तो दोषोंकी उत्पत्ति देखी जाती
है। जैसे कोई पुरुष अपने जीवनमें बड़ा क्षमावान रहा। क्रोध उसे आता ही न था,
लेकिन कुछ बुढ़ापा आनेपर उसका चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया, तो देखिये पहिले तो
दोष न थे अब दोष आ गए। तो इससे सिद्ध होता है कि जब क्षमा रखते थे उस समय
में भी इसके दोषका स्वभाव था। तो पुन: दोषकी प्रकटता देखी जानेसे गुणके समय
में भी दोषकी सत्ता मात्रकी सिद्धि होती है। उत्तरमें कहते है कि इसी तरह फिर गुण
का भी पुन: आविर्भाव होनेसे दोषके समयमें भी सत्तामात्रकी सिद्धि रही। जिस पुरुष
में अब तक गुण प्रकट न हुए थे और अब गुण प्रकट हुए हैं तो उससे यह जाना जाता
है कि इस जीवमें इन ज्ञानादिक गुणोंकी सत्ता पहिलेसे थी। जैसे मीमांसक आत्माको
दोष स्वभाव वाला सिद्ध करते हैं इसी प्रकार यहाँ गुणस्वभाव वाला सिद्ध होनेका
कौन निवारण कर सकता है? यदि मीमांसक यह कहें कि आत्मा दोषस्वभावी है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुणस्वभावी नहीं हो सकता। इसलिए दोनों स्वभाव होनेका एक आत्मामें विरोध है। आत्मा यदि दोष स्वभावी है तो गुणस्वभावी नहीं हो सकता। क्योंकि इनमें विरोध है। इस शंकापर कहते हैं कि विरोध होनेके नातेसे तुम गुणस्वभावका खण्डन क्यों करते हो? दोष स्वभावका खण्डन कर दो। आत्मामें चूंकि दोष स्वभाव होना, गुण स्वभाव होना, ये दोनों स्वभाव एक साथ नहीं रह सकते तो यह कहो कि आत्मा दोष स्वभावी नहीं है, गुण स्वभावी ही है।

मुक्तिकी प्रमाणसिद्धता होनेसे आत्माके गुणस्वभावताकी सिद्धि — अब मीमांसक प्रश्न कहते है कि आत्मा गुण स्वभाव वाला है यह आप किस तरह सिद्ध करेंगे, तो उत्तर तो सीधा यह है मुकाबलेतन कि आत्मा दोष स्वभावी है यह भी सिद्ध आप किस तरह करेंगे? यदि मीमांसक कहें कि यह आत्मा दोष स्वभावी नहीं होता तो यह संसारी न बनता। यह जीव जो संसारमें भटक रहा है, नाना देहोंको धारण कर रहा है, इससे ही यह सिद्ध है कि आत्मामें दोषका स्वभाव पड़ा हुआ है। इस कथनपर अब स्याद्वादी उत्तर देते हैं कि मीमांसकोंने यह माना कि आत्मा दोषस्वभावी है, क्योंकि यदि दोषस्वभावी आत्मा न होता तो इसका संसार न बनता, यह जो संसारमें भटक रहा है, यह भटकना इसी कारण सिद्ध होता है कि आत्मा दोषस्वभावी है। तो इसके उत्तरमें यह पूछा जा रहा है मीमांसकोंसे कि यह बताव कि जीवका संसारपना क्या सभी जीवोंका अनादि अनन्त है? यदि कहो कि हाँ सभ आत्माओंका संसारीपना अनाद्यनन्त है तो यह बात प्रतिवादीके लिए असिद्ध है। मीमांसक जो यह कह रहे हैं कि आत्मा दोषस्वभावी है। यदि दोषस्वभावी न होत तो यह संसारी न बनता। सो यदि संसारी रहना अनादिसे अनन्तकाल तक हो ही स जीवोंका तब तो माना जा सकता है कि आत्मा दोषस्वभाव वाला है, कहा जा सक कि तभी तो अनादिसे संसारी है और अनन्त काल तक संसारी रहेगा लेकिन ऐसा है नहीं, क्योंकि जीवकी मुक्ति प्रमाणसे सिद्ध है। यह आत्मा उपायसे, सम्यक्त्व ज्ञ चारित्रके बलसे कर्मोंसे मुक्त भी हो जाता है, इसका संसारीपना भी मिट जाता है।

सदाके लिये संसारित्व निवृत्ति होना सिद्ध होनेसे आत्माके दोषस्वभावताकी असिद्धि--यदि कोई पूछे - कैसे मिट जाता है संसारीपना? सो सु किसी आत्मामें संसार बिल्कुल निवृत्त हो जाता है। संसरण, देहोंका धारण, कष्की उत्पत्ति, आकुलता, क्षोभका होना, आत्मामें विविध तरग उठना यह ही तो संसार है, सो कोई आत्मा ऐसा भी होता है कि जिस आत्मामें यह संसार बि नहीं रहता, क्योंकि संसारके कारणभूत जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारि उनकी अत्यन्त निवृत्ति अन्यथा न बन सकती थी। जब आत्मामें मिथ्यादर्शन, मिज्ञान, मिथ्याचारित्र सदाके लिए नहीं रहते, अत्यन्त अलग हट जाते हैं तो इससे है कि संसार भी नहीं रहता। भवोंमें परिभ्रमण करना, कषायोंका होना,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण है मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र। आत्माका स्वरूप और भाँति है श्रद्धान कर लेना वह और भाँति है। यही मिथ्या श्रद्धान है। पदार्थोंका स्वरूप और भाँति है और उसकी जानकारी और भाँति है, उसका नाम है मिथ्याज्ञान जीवका शुद्ध काम था स्वरूपमें रमनेका लेकिन यह परपदार्थोंका आश्रय करके रागद्वेष भावोंमें रम रहा है, यह है इसका मिथ्याचारित्र। तो ये तीन जब आत्मासे बिल्कुल हट जाते हैं तब वहाँ संसार कैसे रह सकता है? तो यह सिद्ध है प्रमाणसे कि किसी आत्मामें संसार बिल्कुल नहीं रहता। संसारके कारण हैं मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। सो यह बात याने जो संसारमें रुलनेका, जन्म मरण करनेका कारण है यह दोनोंको मान्य है—वादी और प्रतिवादीको। और यह भी दोनोंको प्रसिद्ध है कि मिथ्या ज्ञानकी वजहसे सम्यग्ज्ञानका अभाव रहता है। जब मिथ्याज्ञान है तो सम्यग्ज्ञान नहीं ठहर सकता, यह भी दोनोंको मान्य है। अब यह देखिये! जब कि संसारका कारणभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र किसी आत्मामें सदाके लिए नहीं रहता, आत्मासे अलग जाता है तब संसार कैसे रहेगा? और, यह बात प्रमाणसे सिद्ध है कि किसी आत्मामें ये मिथ्यादर्शन आदिक सदाके लिए नहीं रहते आत्मासे बिल्कुल हट जाते हैं, क्योंकि उन मिथ्यादर्शन आदिकका विरोधी सम्यग्दर्शन आदिक उत्पन्न हो जाते हैं। उन सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंका परम प्रकर्ष बन जाता है, उत्कृष्टरूपसे ये विकसित हो जाते हैं तो मिथ्यादर्शन आदिक फिर ठहर कैसे सकते हैं। यह व्याप्ति है कि जहाँपर जिसके विरोधीकी प्रबलता होगी वहाँ वह विकल्प हट जायगा। जैसे नेत्र में जब निर्मलता बढ़ जायगी तो तिमिर आदिक जो और रोग हैं वह दूर हो जायगा। यह उदाहरण बिल्कुल अनुरूप है। यह नहीं कह सकते कि इसमें साध्य नहीं है अथवा इसमें साधन नहीं है। किसी पुरुषकी आँखमें तिमिर रोग था, उस तिमिर रोगकी वजहसे वह अंधेरा अंधेरा प्रतीत करता था अब तिमिर रोगकी अत्यन्त निवृत्ति होगयी जैसे जिसको मोतिया होता है उसका आपरेशन होनेपर वह रोग बिल्कुल हट जाता है प्रतीति हुई कि उस तिमिर रोगका विरोधी कोई विशिष्ट अंजन आदिक लगाया गया उसका कारण जुटा। तो उस तिमिर रोगके विरोधी कारणका जहाँ आसन जमा वहाँ फिर वह नहीं ठहर सकता है तो मिथ्यादर्शन आदिक दोषोंके विरोधी हैं सम्यग्दर्शन आदिक। जहाँ सम्यग्दर्शन हैं मिथ्यादर्शन न ठहरेगा, तो इन गुणोंके होनेसे यह सिद्ध होता है कि किसी आत्मामें मिथ्यादर्शन आदिक दोष सदाके लिए नहीं रहते।

सम्यग्दर्शनादिक गुणोंमें मिथ्यादर्शनादिक दोषोंके विरोधित्वकी सिद्धि

यदि यहाँ मीमांसक आदि कोई शंकाकार पूछें कि यह बतलावो कि सम्यग्दर्शन आदिक गुण मिथ्यादर्शन आदिक दोषोंके विरोधी हैं यह निश्चय तुमने कैसे किया? तो उसके निश्चयकी साधना सुनो! जब यह देखते हैं कि सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंकी वृद्धि होनेसे मिथ्यादर्शन आदिककी हानि है तो उससे यह सिद्ध है कि मिथ्यादर्शन आदिकका विरोधी सम्यग्दर्शन है। जब हम यह देखते हैं कि प्रकाशके होनेपर अंधकार हट जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, ज्यों ज्यों प्रकाश तेज होता है त्यों त्यों अंधकार भी उसी तेजीसे हटता जाता है। अंधकारका विरोधी है प्रकाश। प्रकाश हो गया तो वहाँ अंधकार नहीं ठहरता। जो चीज बढ़ती हुई जिसको घटा दे वह उसका विरोधी कहलाता है। जैसे प्रकाश बढ़ता हुआ अंधकारका विरोधी है। और भी सुनो—जैसे उष्ण स्पर्श बढ़ते हुए शीतस्पर्श को घटाता है तो उष्णस्पर्श शीतका विरोधी है। इसी तरह जब सम्यग्दर्शन आदिक गुण बढ़ते हैं तो मिथ्यादर्शन आदिक हट जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन आदिक मिथ्यादर्शन आदिकके विरोधी हैं।

सम्यग्दर्शनादिक गुणोंके परम विकासकी सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सम्यग्दर्शन आदिकका किसी आत्मामें उत्कृष्ट विकास है यह बात कैसे सिद्ध करोगे? तो उत्तरमें कहते हैं कि किसी आत्मामें सम्यग्दर्शन आदिक पूर्णरूपसे विकसित हैं यह बात सिद्ध होती है इस हेतुसे कि वे सम्यग्दर्शन आदिक तारतमरूपसे बढ़ते हुए देखे जाते हैं। किसीमें ज्ञान जितना है उससे बढ़ा हुआ ज्ञान दूसरेको है, उससे बढ़ा हुआ ज्ञान किसी अन्यमें है। तो जहाँ स्वभावका विकास बढ़ता हुआ नजर आता है तो वहाँ यह मानना होगा कि कोई आत्मा ऐसा अवश्य है कि जिसमें स्वभाव का पूर्ण विकास हुआ है। जो चीज बढ़ती हुई होती है वह किसी न किसी जगहसे उत्कृष्ट विकास वाला हुआ करती है, जैसे यहाँ परिमाण बढ़ते हुए नजर आ रहे घड़ी की सूई छोटी है घड़ी उससे बड़ी है यह महल उससे बड़ा है तो जब एकसे एक बढ़कर परिमाण वाले पदार्थ नजर आते हैं तो यह सिद्ध होता है कि कोई वस्तु ऐसी भी है जो अत्यन्त विशाल परिमाण वाली है। वह क्या है? आकाश। जब एकसे एक बढ़कर बड़े बड़े परिमाण पदार्थ दृष्टगत हो रहे तो उससे सिद्ध है कि कि कोई है महा-परिमाण वाला। ऐसा अनुमान तो मीमांसकोंने स्वयं ही किया है। अब इस प्रकरणमें देखिये कि सम्यग्दर्शन आदिक ये बढ़ते हुए रहते हैं इस कारणसे यह सिद्ध है कि किसी आत्मामें सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंका उत्कृष्ट विकास अवश्य है।

सम्यग्दर्शनादि गुणके परमप्रकर्ष साध्यके साधक प्रकृष्यमाणत्व हेतुकी अव्यभिचारिताकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि जो बढ़ती हुई बात है उसका कहीं परिपूर्ण बढ़ाव अवश्य है। इस हेतुमें परत्व और अपरत्वके साथ व्यभिचार आता है। याने दूरी और निकटता छोटे और बड़े होना, लुहरा और जेठा होना आदि परत्व और अपरत्व कहलाता है। तो देखिये! परत्व और अपरत्व बढ़ते हुए तो नजर आते हैं लेकिन ऐसा कोई स्थल नहीं है जहाँ परत्वका परम विकास हो या अपरत्वका परम विकास हो, तो हेतुके होनेपर भी साध्यके न होनेसे इस हेतुमें व्यभिचार आता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रकृष्यमाणत्व हेतुका परत्व व अपरत्वके साथ व्यभिचार नहीं बताया जा सकता क्योंकि लोकको सपरिमाण कहने वालोंके सिद्धान्तमें परत्व व अपरत्वका भी परम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकर्ष सिद्ध है । लोक अपर्यन्त है याने अन्तरहित है यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि
इसका विशिष्ट सन्निवेश याने आकार पाया जाता है । जैसे पर्वतका कोई विशिष्ट
सन्निवेश है, आकार है तो पर्वत सपर्यन्त भी है । जो अपर्य है अनन्त है वह विशिष्ट
सन्निवेश वाला नहीं होता जैसे कि आकाश । अपर्यन्त है और विशिष्ट सन्निवेशसे रहित
है और यह लोक विशिष्ट सन्निवेश वाला है इस कारण यह लोक सर्व ओरसे सपर्यन्त
है । तो लोकमें परत्वकी प्रकर्षता सिद्ध है तथा परमाणुमें अपरत्वकी प्रकर्षता सिद्ध
है । अतः सम्यग्दर्शनादि गुणोंका परमप्रकर्ष सिद्ध करनेके लिये दिये गये प्रकृष्यमाणत्व
हेतुका परत्व अपरत्वके साथ व्यभिचार नहीं कहा जा सकता । सो प्रकृष्यमाणत्व हेतु
से सम्यग्दर्शनादिक गुणोंका परमप्रकर्ष सिद्ध हो ही जाता है ।

प्रकृष्यमाणत्व हेतुकी निर्दोषता यहाँ शंकाकार कहता है कि प्रकृष्यमा-
णत्व हेतुका संसारके साथ अनैकांतिक दोष हो जायगा क्योंकि संसारका परम प्रकर्ष
न होनेपर भी संसारमें प्रकृष्यमाणत्व हेतु देखा जा रहा है । समाधानमें कहते हैं कि
प्रकृष्यमाणत्व हेतुका संसारके साथ भी अनैकांत दोष नहीं आता क्योंकि अभव्य जीवों
में संसार का परम प्रकर्ष सिद्ध है, अर्थात् जिसका संसार सदाके लिए हो उस ही के
तो संसारका परम प्रकर्ष कहा जायगा । तो अभव्य जीव हैं ऐसे जिनको कभी मुक्ति न
होगी । तो उनमें संसारकी परम प्रकर्षता सिद्ध है । और प्रकृष्यमाणत्व तो दोनोंको
मान्य ही है, और साध्य भी अभव्य जीवमें सिद्ध हो गया तब हेतुका संसारके साथ
अनैकांतिक दोष नहीं होता । कोई यहाँ ऐसी शंका करे कि तब फिर हेतुका मिथ्या-
दर्शन आदिकके साथ व्यभिचार हो जायगा, सो मिथ्यादर्शन आदिकके साथ भी व्यभि-
चार नहीं होता, ऐसा एकान्त नहीं है कि मिथ्यादर्शन आदिक प्रकृष्यमाण तो देखे जा
रहे हैं, परन्तु किसी जीवमें मिथ्यादर्शन आदिकका परम प्रकर्ष न होता हो । अनैका-
न्तिक दोष तो तब बढ़ेंगे कि मिथ्यादर्शन आदिक प्रकृष्यमाण तो हों, पर उनका परम
प्रकर्ष न हो तब ही तो अनैकान्तिक दोष कहा जायगा था, लेकिन मिथ्यादर्शन आदिक
की परम प्रकर्षता अभव्य जीवोंमें पायी जाती है अर्थात् अभव्य जीवोंमें सदा काल मिथ्या-
दर्शन मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र रहेंगे । इस कारण प्रकृष्यमाणत्व हेतुको परम प्रकर्ष
साध्य सिद्ध करनेमें दूषित नहीं कहा जा सकता । यह सब तो हुआ अनैकांतिक दोषके
निवारणका प्रसंग । अब यहाँ देखिये कि प्रकृष्यमाणत्व हेतुमें विरुद्ध हेत्वाभासपना भी
नहीं है विरुद्ध हेतु उसे कहते हैं कि जो हेतु साध्यका विरोधी हो याने साध्यसे विपरीत
अन्य बातको सिद्ध करे, लेकिन प्रकृष्यमाणत्व हेतु परम प्रकर्षरहित किसी वस्तुमें नहीं
पाया जाता अर्थात् जो चीज बढ़ती तो रहे पर खूब सीमा तक न बढ़ सके ऐसा कुछ भी
नहीं है ।

**सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी परमप्रकर्षता सिद्ध हो जानेसे आत्माके गुण-
स्वभावताकी प्रसिद्धि**—उक्त प्रकारसे प्रष्यमाणत्व हेतुकी निर्दोषता सिद्ध हो जानेके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन आदिक जब बढ़ते हुए प्रवर्तते हैं तो यह निश्चय है कि कहीं मिथ्यादर्शन आदिकका बिल्कुल ही विनाश हो जाता है क्योंकि सम्यग्दर्शन आदिक गुण मिथ्यादर्शन आदिक दोषके विरोधी हैं, तो यहाँ प्रकृष्यमाणत्व हेतुसे सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंकी परम प्रकर्षता सिद्ध हो जाती है। और जब सम्यग्दर्शन आदिक गुण ऊँचे विकासमें पहुचते हैं तबयह बात सिद्ध हो लेती है कि किसी आत्मामें मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रकी अत्यन्त निवृत्ति होती ही है। जब कहीं रत्नत्रयका पूर्ण विकास होता है यह सिद्ध हो तो यह बात अपने आप सिद्ध होती है कि कहीं मिथ्यादर्शन आदिक दोषोंका पूर्णतया विनाश हो जाता है। और जब यह सिद्ध हो गया कि किसी आत्मामें मिथ्यादर्शन आदिकका अयन्त अभाव हुआ है तो उससे यह सिद्ध हुआ ना कि आत्मा ज्ञानादिक गुणोंके स्वभावरूप है। आत्मा दोषस्वभावी नहीं है, क्योंकि एक आत्मामें एक ही समयमें गुणस्वभाव और दोषस्वभावता होनेका विरोध माना गया है।

जीवत्वान्यथानुपपत्तिसे अभव्य जीवके स्वरूपमें भी गुणस्वभावताकी सिद्धि—अब यहाँ कोई शंकाकार कहता कि सामान्यतया आत्माको गुणस्वभावी भले ही सिद्ध करलें, किंतु अभव्य जीवोंमें तो गुणस्वभावता सिद्ध नहीं होती। अभव्य जीव अनन्त काल तक कभी भी मुक्त न हो सकेंगे उनके दोष न छूट सकेंगे। उनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, गुणका अंकुर भी न बन सकेगा तो ऐसे अभव्य जीवोंमें गुणस्वभावता सिद्ध नहीं है, इसके उत्तरमें कहते हैं कि जब यह सिद्ध हो गया कि मुक्तिके पात्र किसी आत्मामें गुणस्वभावता निर्बाध है तो किसी भी आत्मामें गुणस्वभावताकी प्रसिद्धि होनेपर सभी जीवोंमें गुणस्वभावताकी सिद्धि होती है। अभव्य जीवमें भी गुणस्वभावता बराबर है। यदि अभव्य जीवोंमें गुणस्वभावता न होती तो उनमें जीवत्वकी उपपत्ति ही न बन सकती थीं अर्थात् न हो कोई जीव गुणस्वभावी तो वह जीव ही नहीं है। इस प्रसंगको यों भी समझा जा सकता है कि ज्ञानावरण आदिक अष्टकर्म इन अभव्य जीवोंके साथ भी लगे हुए हैं तभी तो अन्य जीवोंकी भाँति जैसे कि अनेक भव्य जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहे हैं कम ज्ञानी बहुत ज्ञानी बन रहे हैं इसी प्रकार अभव्य जीव भी तो भ्रमण करके नाना परिणमन करते हैं। इससे सिद्ध है कि अभव्य जीवोंके साथ भी ज्ञानावरण आदिक कर्म लगे हुए हैं। ज्ञानावरण आदिकके भेदमें एक केवल ज्ञानावरण भी है वह भी अभव्यके साथ लगा है। केवल ज्ञानावरणका अर्थ है कि ऐसी प्रकृति जो केवल ज्ञानका आवरण करे। यदि अभव्य जीवमें केवल ज्ञानस्वभावता न होती तो उसके आवरणका प्रसंग ही क्या? तो अभव्य जीवमें भी गुणस्वभावता है।

निकट भव्य दूरान्दूरभव्य व अभव्य सभी जीवोंमें गुणस्वभावता—इस प्रसंगमें जीवोंको तीन श्रेणियोंमें रखिये–निकट भव्य जीव, दूरानदूरभव्य जीव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अभव्य जीव। अभव्य जीवके रत्नत्रय प्रकट होनेकी शक्ति नहीं है अर्थात् रत्नत्रय धर्म व्यक्त होनेकी शक्ति नहीं है। दूरानदूर भव्यमें ऐसा कभी योग ही न मिलेगा कि रत्नत्रय धर्म उनमें व्यक्त हो सके। ऐसे भव्य जीवोंमें रत्नत्रय व्यक्त होनेकी शक्ति है और योग मिलनेपर उनकी मुक्ति हो सकती है पर योग ही न मिलेगा इसके लिए तीन दृष्टान्त निहारिये—अभव्य जीवके लिए दृष्टान्त तो है बन्ध्यास्त्री दूरानदूरभव्यके लिए है सुशील विधवा और निकट भव्य जीवके लिए दृष्टान्त हैं साधारण महिलायें। जैसे बंध्यास्त्रीमें पुत्र व्यक्त करनेकी शक्ति नहीं है। स्त्री होनेके नाते तो शक्ति मानी जायगी, पर उसके व्यक्त होनेकी शक्ति नहीं है। यों अभव्य जीव होनेके नाते केवल ज्ञानका स्वभाव शक्ति तो मानी जायगी, परन्तु ऐसे ज्ञानस्वभावके व्यक्त होनेकी शक्ति नहीं है। दूरानदूर भव्य सुशील विधवाकी तरह है। जैसे सुशील विधवामें पुत्र प्रसव की व्यक्तिकी शक्ति है लेकिन कभी पुत्र होगा ही नहीं, सुशील होनेके कारण योग मिलेगा ही नहीं। इसी प्रकार दूरानदूर भव्यमें केवल ज्ञान व्यक्त होनेकी शक्ति तो है पर कभी ऐसा योग मिलेगा ही नहीं। तो इन दृष्टान्तोंसे यह बात परखना है कि अभव्य जीवमें भी केवल ज्ञानका स्वभाव है। गुण स्वभावता सब जीवोंमें होती है। इस प्रकार जब सब आत्माओंमें ज्ञानादिक गुण स्वभावपना सिद्ध हो गया तो दोष स्वभावपना असिद्ध हो गया। आत्मा गुण स्वभावी है दोष स्वभावी नहीं है।

आत्माके गुणस्वभावताकी सिद्धि, दोषस्वभावताकी असिद्धि दोषोंके आगन्तुकत्व व कादाचित्कत्वकी सिद्धि होनेसे किसी परम पुरुषमें विश्वज्ञता की सिद्धि—उक्त प्रकारसे जब दोष स्वभावीपन आत्मामें असिद्ध है तो इससे यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि दोष कादाचित्क होते हैं अर्थात् निमित्त बढ़नेके कारण दोष बढ़ जाते हैं, निमित्त घटनेके कारण दोष घट जाते हैं। दोषमें कादाचित्कपना है और जब यह सिद्ध हो गया कि आत्मामें रागादिक दोष कादाचित्क हैं तो यह भी स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो जाता है कि रागादिक दोष आगंतुक हैं, स्वाभाविक नहीं हैं। जीवमें जीवके स्वभावके कारण जीवके सत्त्वसे ही रागादिक दोष आये हों ऐसी बात नहीं है। तब यह सिद्ध हो जाता है कि जो आगंतुक मल हैं वे ही पूर्णतया नष्ट होते हैं। ज्ञानादिक गुण निःशेषरूपसे कहीं भी नष्ट नहीं हो सकते, आगंतुक मल ही निःशेषरूपसे नष्ट हो सकते हैं। तो इसका कारण यह है कि रागादिक दोष अपने निमित्तके बढ़नेसे उत्पन्न हुए हैं। तो जब रागादिक दोषके ह्रासके कारण बढ़ते हैं तो रागादिक दोष नष्ट हो जाते हैं। रागादिक दोषों के बढ़ने के निमित्त हैं मिथ्यादर्शन आदिक और रागादिक दोषों के ह्रासके निमित्त हैं सम्यग्दर्शन आदिक। जब सम्यग्दर्शन आदिक गुण बढ़ते हैं तो आत्मामेंसे रागादिक दोष पूर्णरूपसे निकल जाया करते हैं। यह बात स्पष्टतया प्रसिद्ध होती है, उसका कारण है कि दोषोंके हटानेके निमित्त हैं सम्यग्दर्शन आदिक। जब वे आत्मावलम्बनके प्रसादसे विशिष्टरूपसे बढ़ते हैं तो निमित्तसे दोष नष्ट हो जाते हैं। इस सब उक्त कथनका यह निष्कर्ष लेना है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आवरण अर्थात् ज्ञानावरण आदिक द्रव्य कर्म और दोष अर्थात भावकर्म इन दोनोंकी किसी महान आत्मासे अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। तो इस प्रकार समझिये कि कोई आत्मा कर्म रूपी पहाड़का भेदन करने वाला है। और जो कर्म पहाड़का भेदन करदे जिसमें सम्यग्दर्शन आदिक गुण परम उत्कृष्ट बन जायें, मिथ्यादर्शन आदिक दोष पूर्णतया निकल जायें, ऐसा ही वीतराग सर्वज्ञ मोक्षमार्गका प्रणेता हो सकता है और वही यहाँ स्तुति करने योग्य है, और वही समस्त तत्त्वोंका जानकार है। यह देवागम स्तोत्र गन्धहस्तिमहाभाष्य स्वामी समन्तभद्राचार्य द्वारा तत्त्वार्थसूत्र महाग्रन्थकी टीका रूपमें लिखा गया है जिसके मंगलाचरणकी सिद्धिके लिए आप्तमीमांसा की गई है उस मंगलाचरणमें तीन विशेषण हैं मोक्षमार्गका नेता, कर्म पहाड़का भेदने वाला, समस्त तत्त्वोंका जानने वाला। तो यहाँ प्रयोजन है मोक्षमार्गका नेता सिद्ध करनेका। जो मोक्षमार्गका नायक है उसके ही वचन प्रमाणभूत होंगे। और उसके बताये हुए शासन का अनुसरण करके जीव मुक्ति पायेंगे। तब मोक्षमार्गका प्रणेता कौन हो सकता है, उसके लिए कारणभूत हैं दो विशेषण जो कर्मोंका नाश करदे और समस्त तत्त्वोंका जाननहार हो, अर्थात् वीतराग सर्वज्ञदेव ही आप्त हो सकता है।

मीमांसकों द्वारा आत्माकी असर्वज्ञता व दोषस्वभावता सिद्ध करनेका पुनः प्रयास — अब यहाँ मीमांसक शंका करता है कि भले ही किसी आत्मामेंसे सारे उपद्रव टल गए हों, वह आत्मा निर्दोष भी हो गया हो तब भी वह दूरवर्ती विप्रकृष्ट पदार्थोंका कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा? विप्रकृष्ट पदार्थ होते हैं तीन प्रकारके—जो देशमें दूरवर्ती हो अर्थात् किसी अन्य देशके पदार्थ हो जो कालसे दूरवर्ती हो अर्थात् बहुत भूत और भविष्यकी बात हो तथा जो स्वभावसे दूरवर्ती हो, अत्यन्त सूक्ष्म हो ऐसे दूरवर्ती, अन्तरित, सूक्ष्म पदार्थोंका कोई आत्मा कितना भी निर्मल हो जाय पर, प्रत्यक्ष नहीं कर सकता है। जैसे कि नेत्रोंकी कितनी भी निर्दोषता हो, कोई रोग न रहे नेत्रमें जिसमें तिमिर आदिक रोग अथवा मोतिया बिन्दु आदिक रोग सब कलंक पटल भी दूर हो गए तो भी नेत्र दूर देशके, दूर कालके और परमाणु जैसे सूक्ष्म पदार्थोंको दृष्टि नहीं रख सकते। तो जैसे नेत्र दूरवर्ती पदार्थोंका प्रत्यक्ष करते हुए प्रतीत नहीं होता है इसी प्रकार ज्ञान कितना भी निर्दोष हो जाय फिर भी वह समस्त अर्थोंका प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। यह शंका मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार है। उनका कहना है कि नेत्र कितने ही निर्मल हो जायें मगर नेत्रोंमें जितनी योग्यता है उस माफिक ही तो योग्य पदार्थोंका नेत्र प्रत्यक्ष कर सकेंगे। अथवा और दृष्टान्त लीजिये ऐसा सूर्य जिसपर न कोई राहुकेतुका उपद्रव हो, न मेघपटल आदिक आड़े आये हों, बिल्कुल स्वच्छ आकाश, पर, वस्तुके आवरणसे रहित होनेपर भी सूर्य सारे विश्वको तो प्रकाशित नहीं कर सकता, अपने योग्य और वर्तमान अर्थोंको ही प्रकाशित कर सकेगा। अथवा उदय होनेपर क्या दूरवर्ती देश और जितने भी क्षेत्र हैं, क्या सब क्षेत्रों में वह सूर्य पदार्थोंको प्रकाशित कर सकता है? नहीं। और भूत भविष्यके पदार्थोंको

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या आजका सूर्य प्रकाशित कर सकता है ? नहीं । इसी प्रकार किसीका ज्ञान कितना निर्मल हो गया हो फिर भी वह दूर देशके, दूर कालके और अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंको प्रकाशित नहीं कर सकता है । जीवमें रागादिक भावोंका उपद्रव कुछ भी न रहा हो, ज्ञानावरण आदिक द्रव्यकर्मरूप कलंक भी सब दूर हो गए हों फिर भी ज्ञान अपने योग्य पदार्थोंको ही जानेगा, भूत भविष्यके, दूर देशके और अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओंकी बातको प्रत्यक्ष नहीं कर सकता है । कोई मुक्त आत्मा भी हो गया, लेकिन मुक्त आत्मा होनेपर वह केवल कुछ पदार्थोंके जाननेमें ही प्रमाणभूत रहेगा । वेदवाक्योंमें जो लिखा है और धर्मकी जो प्रमाणता वेदवाक्योंसे आती है उस धर्म आदिकके विषयमें मुक्त आत्मा प्रमाण न होगा । तो कितना भी सूक्ष्म ज्ञान करने वाला आत्मा बन जाय तो भी देखिये ! सबको तो न जान सका । धर्मादिकमें तो वेदवाक्य ही की प्रमाणता है । तो धर्मादिकपर मुक्ति जीवोंका अधिकार तो न रहा । इससे सिद्ध है कि समस्त उपद्रव टल जानेपर भी, कर्म कलंक दूर हो जानेपर भी मुक्त आत्मा समस्त भावोंको, पदार्थोंको जाननेमें समर्थ नहीं हो सकता । इस प्रकार जब सबको जाननेका सामर्थ्य न रहा तो सबको जाननेका स्वभाव न रहा । तो यों इसमें फिर दोष स्वभाव सिद्ध हो ही जायगा ।

आत्माके असर्वज्ञत्वकी आशंकाका पञ्चम कारिका द्वारा समाधान— यहाँ मीमांसकसिद्धान्तानुयायी यह शंका रख रहे हैं कि कोई आत्मा कितना ही निर्मल हो जाय, उसके आवरण भी सारे हट जायें तो भी वह सारे विश्वको, परोक्षभूत अर्थको न जान सकेगा । मुक्त आत्मा भी हो गया लेकिन धर्म पुण्य पाप तत्त्वके बारेमें वेद का ही अधिकार है । पुण्य पाप धर्मादिको मुक्त आत्मा नहीं जान सकता सो पुण्य पाप के सम्बन्धमें मुक्त आत्मा प्रमाणभूत नहीं है । वे तो आनन्द स्वभाव वाले हैं । सो मुक्त आत्मा हो जानेका अर्थ इतना है कि वे अपने आनन्दमें डूबे रहें । पर निर्मल होनेसे कर्म कलंक दूर होनेसे मुक्त आत्माओंमें यह कला न आयगी कि वे पुण्य पाप धर्मादिक परोक्ष अर्थके भी ज्ञाता बन जायें । हाँ यह बात अवश्य है कि मुक्त आत्माओंमें आनन्द पूरा प्रकट है और आनन्द स्वभावका वहां प्रतिषेध नहीं है । श्रुतिवाक्यमें भी यह उपदेश किया है कि मुक्त आत्माके बारेमें केवल पुण्य पापकी जानकारीका निषेध है । मुक्त आत्मा जो कर्मोंसे छूट गए, जिन्हें कोई सिद्ध भगवान कहते हैं, कोई मुक्त कहते हैं, तो वे पुण्य पापकी बातको नहीं जान सकते और धर्मकी बात छोड़कर दुनियाकी सारी बातें जानें, उनका हम निषेध नहीं करते । इस प्रकार मीमांसक सिद्धान्तके अनुयायी लोग सर्वज्ञके विषयमें शंका रख रहे हैं । तो इस प्रकार शंकाशील व्यक्तियोंको यह बतानेके लिए कि वास्तवमें कोई आत्मा सर्वज्ञ ही हो जाता है । उससे फिर कोई पदार्थ जाननेसे बचे नहीं रहते, इसी बातको स्वामी समंतभद्र आचार्य कहते हैं ।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा ।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥ ५ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी परमपुरुषमें समस्त पदार्थोंकी प्रत्यक्ष विषयताकी सिद्धि— सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थमें किसी न किसीके प्रत्यक्षभूत हैं, क्योंकि अनुमेय होनेसे जो जो चीज अनुमानमें आती है वह चीज किसीके द्वारा प्रत्यक्षमें भी होती है। जैसे किसी कमरेमेंसे (रसोई घरसे) ऊपर धुवां निकल रहा है तो उस धुवांको देखकर लोग यह अनुमान करते हैं कि यहाँ आग जल रही है क्योंकि धुआं उठनेसे। तो दूरमें रहने वाले पुरुषने तो उसका अनुमान किया लेकिन जिस अग्निका किसीने अनुमान किया उस अग्निको कोई प्रत्यक्ष भी जान रहा है। जो रसोई घरमें बैठे हुए पुरुष हैं वे उसे प्रत्यक्ष भी जानते हैं। तो इसी प्रकार जब सूक्ष्म पदार्थ याने परमाणु, अन्तरित पदार्थ राम रावण आदिक महा पुरुष जो भूतकालमें हो गए, और दूरवर्ती पदार्थ हिमवान पर्वत, विदेह क्षेत्र स्वर्ग नरक आदिक पदार्थ ये किसी न किसी आत्माके द्वारा प्रत्यक्षमें आये हुए हैं. इन्हें कोई साक्षु जानता है क्योंकि ये अनुमेय हो रहे हैं। अनुमानमें आते हैं और आगम प्रमाणमें भी प्रसिद्ध हैं। इस तरह इस प्रयोग द्वारा यह भी सिद्ध हो जाता है कि कोई आत्मा अवश्य ही सर्वज्ञ है। परोक्षभूत पदार्थ तीन प्रकारके होते हैं जो आँखों नहीं दिख रहे, जो इन्द्रिय द्वारा ज्ञानमें नहीं आ रहे ऐसे पदार्थ तीन तरह के हैं– एक तो होते हैं सूक्ष्म अर्थात् स्वभाव विप्रकर्षी। जो स्वभावमें अपने स्वरूपमें बहुत गहरे है वे परमाणु आदिक जो कुछ पदार्थ होते हैं दूसरे विप्रकर्षी है अंतरित। याने कालविप्रकर्षी। जो बहुत लम्बे भूत समयमें हुए हैं, जैसे राम रावण आदिक पुरुष तथा जो भविष्यकालमें होंगे वे भी अन्तरित हैं। जो पदार्थ होते हैं दूरवर्ती याने देशमें बहुत लम्बे जाकर जो पदार्थ रहते हैं जैसे हिमवान पर्वत, मेरुपर्वत, विदेह क्षेत्रादिक ये कहलाते हैं दूरवर्ती विप्रकृष्ट, ऐसे ये तीन प्रकारके परोक्षभूत पदार्थ किसी आत्माके ज्ञानमें प्रत्यक्षभूत हुए हैं क्योंकि वे अनुमेय हैं, जैसे अग्नि आदिक अनुमेय पदार्थ जिनका अनुमान बना है और साधन द्वारा जिसका साध्य सिद्ध करना है ऐसा पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है। इस प्रयोग द्वारा सर्वज्ञके सद्भावकी सिद्धि भली प्रकार हो जाती है।

सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंके स्वरूपके सम्बन्धमें दो विकल्प उठाकर मीमांसकों द्वारा प्रथम विकल्पमें सिद्धसाध्यताका कथन— अब यहाँ मीमांसक शंका करते हैं कि यह बतलावो कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ जैसा कि यहाँके लोगोंको प्रत्यक्षभूत नजर आता है। छोटा कंकड़ पतला धागा आदिक सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थ जैसे कि यहाँ किसीको प्रत्यक्ष हुए देखे गए हैं, क्या इस ही तरहके सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका अनुमेयपना बताकर किसीके प्रत्यक्षभूत है, यह सिद्ध कर रहे हो या सूक्ष्म आदिक पदार्थ यहाँ किसीको प्रत्यक्ष है उससे विलक्षण याने जो यहाँ किसीको भी नजर ही नहीं आ सकता ऐसा सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेयत्व हेतु देकर किसी न किसीके प्रत्यक्षभूत है, यह सिद्ध कर रहे हो? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि कहो कि जैसे सूक्ष्म पदार्थ यहाँ समझमें आते हैं इसी तरहके सूक्ष्म पदार्थोंके सम्बन्धमें अनुमेयत्व हेतु देकर सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया जा रहा है कि ये सूक्ष्मादिक पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत है। इस तरह यदि प्रथम विकल्पकी बात लेते हो तब तो सिद्ध साध्यता है, हम भी मानते हैं कि ऐसे सूक्ष्म पदार्थ जैसे कि केशके हजार टुकड़े कर दिया तो भी वे किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। कुछ भी मानते हैं ऐसे अन्तरित पदार्थ जैसे हमारे बाबा, हमारे बाबा के बाबा, उनकी भी हम सिद्धि मानते हैं कि किसी न किसीके द्वारा वे प्रत्यक्षमें ज्ञात हुए हैं, और दूरवर्ती पदार्थ जैसे हिमालय अमेरिका आदिक देश ये भी किसी न किसी के प्रत्यक्ष हैं। तो जैसे सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ यहाँ हम आप लोग प्रत्यक्षमें ज्ञात हुए नजर आते हैं, इस तरहके ही सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको किसीके प्रत्यक्षभूत सिद्ध किया जा रहा है। तब तो हमें कोई आपत्ति नहीं। यह तो सिद्ध बात है।

सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंके स्वरूपमें उठाये गये दो विकल्पोंमें द्वितीय विकल्प माननेपर हेतुके अप्रयोजकत्वका मीमाँसकों द्वारा कथन— यदि दूसरा विकल्प लेते हो कि जैसे सूक्ष्म आदिक पदार्थ हम लोगोंको यहाँ प्रत्यक्ष हुए देखे गए हैं उनसे भिन्न प्रकारके सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं यह सिद्ध करना चाह रहे। तो इस विकल्पमें तो अनुमेयत्व हेतु अप्रयोजक हो गया याने हेतु अपने साध्यको सिद्ध करनेमें असमर्थ है। जैसे कि हम लोगोंके खिलाफ प्रतिवादियोंने यह बात रखी थी कि ये पृथ्वी पर्वत आदिक किसी बुद्धिमानके कारणसे बने हुए हैं, क्योंकि इन सबकी कोई विशिष्ट रचना है, इसमें आकार हैं जो जो आकारवान पदार्थ होते हैं वे किसी न किसीके द्वारा रचे गए होते हैं, जैसे घड़ा कपड़ा आदिक पदार्थ। तो यहाँ पर्वत जमीन आदिकमें भी चूँकि आकार पाये जा रहे हैं इस कारण ये भी किसी बुद्धिमानके द्वारा याने ईश्वरके द्वारा रचे गए हैं। ऐसा जब हम मीमांसकोंने अनुमान बनाया था तो उस सम्बन्धमें प्रतिवादियोंने यह कहकर खण्डन किया कि जैसे आकार वाले पदार्थ यहाँ कुम्हार जुलाहा आदिकके द्वारा बनाये गए नजर आते हैं क्या ऐसे ही आकार वालेकी बात कर रहे हो ? या भिन्न प्रकारकी बात कह रहे हो? भिन्न प्रकारकी बात कहते हो तो अप्रयोजक हेतु हो गया। ऐसा वहाँ उलाहना दिया था, वही उलाहना यहाँ है : अनुमेय होनेपर भी जाने तो जायेंगे ऐसे ही पदार्थ जैसे कि यहाँ हम आप लोगोंको प्रत्यक्ष हो रहे हैं इनसे विलक्षण सूक्ष्मादिक पदार्थ कैसे जाने जायेंगे ? तो वहाँ सन्देह होनेपर हेतु साध्य सिद्ध करनेमें असमर्थ रहता है।

सर्वज्ञसाधक प्रकृत अनुमानमें धर्मीकी अप्रसिद्धताका मीमांसकों द्वारा कथन—दूसरा दोष सर्वज्ञसाधक अनुमानमें यह है कि यहाँ धर्मीकी ही सिद्धि नहीं है। अनुमानमें धर्मी बनाया गया है सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको कि ये पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत होते हैं। सो पहिले इन पदार्थोंकी सत्ता ही सिद्ध नहीं है, तो जब पक्ष ही सिद्ध नहीं तो उसके बारेमें कुछ साध्य सिद्ध करना यह तो अयुक्त बात है। परमाणु आदिक एक प्रदेशी सूक्ष्म पदार्थ कहाँ सिद्ध हैं ? यहाँ तो सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ स्कंध ही नजर आ रहे हैं। इसी प्रकार दूरवर्ती पुरुष राम रावण आदिक कहाँ प्रसिद्ध है? यों तो बहुतसे उपन्यास भी बना लिए जाते हैं तो क्या वे प्रसिद्ध हो गए? कोई शिक्षा ग्रहण करानेके लिए कथा बनायी जा सकती है। तो वह भी अप्रसिद्ध है। दूरवर्ती पदार्थ स्वर्ग नरक आदिक पहिले प्रसिद्ध ही कहाँ हैं? जब वे प्रसिद्ध हो लें तब उनके बारेमें यह कहना कि ये किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं तब तो बात बने। किन्तु जब यह अप्रसिद्ध ही है तो इसमें यह साध्य सिद्ध करना कि प्रयोजनभूत सारे पदार्थ किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं। यह बात कैसे सिद्ध की जा सकती है? मीमांसकों को उक्त शंकापर उत्तर देते हैं कि ऐसी शंका करना अयुक्त है, क्योंकि विवादापन्न अर्थात् जिसके बारेमें अभी विवाद उठ रहा है ऐसे सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंमें यह बात अप्रसिद्ध है कि यह किसीके प्रत्यक्ष है। तो अप्रसिद्धको ही तो सिद्ध करनेकी आवश्यकता होती है क्योंकि असिद्ध ही साध्य बनता है। सिद्ध हो तो उसको साध्य बनानेकी आवश्यकता ही क्या? पहिले यह बात बने कि जो परमाणु स्वर्ग, नरक हम लोगोंके प्रत्यक्ष हो जायें और फिर उनमें अनुमान बनायें कि ये सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ किसीके द्वारा प्रत्यक्ष अवश्य हैं तो ऐसा अनुमान बनानेकी आवश्यकता ही कहाँ है? कोई पुरुष हाथपर अग्नि धरे हुए जल रहा हो और वहाँ यह अनुमान बनायें कि अग्नि गर्म होती है हेतु कुछ दें तो अनुमानकी वहाँ आवश्यकता क्या? वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी तरह सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको पहिले प्रत्यक्षभूत बनाकर फिर साध्य सिद्ध करना चाहते हो कि किसीके यह प्रत्यक्ष है सो पहिले तो तुम होने प्रत्यक्ष कर लिया। जब स्पष्ट प्रत्यक्षरूप हो गए तब उनमें किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है ऐसा साध्य बनानेकी आवश्यकता ही क्या है? देखो धर्म पुण्य पाप आदिक परोक्षभूत पदार्थोंके सम्बन्धमें जब विवाद उठा है कि ये किसीके प्रत्यक्ष हैं या नहीं तो मीमांसक कहते हैं कि ये किसीके प्रत्यक्ष नहीं हो सकते। और, सर्वज्ञवादी कह रहे हैं कि पुण्य पाप आदिक पदार्थ भी किसीके प्रत्यक्ष हैं। तो जिनके सम्बन्धमें वादी और प्रतिवादीको विवाद है, कोई सिद्ध मानता है कोई नहीं मानता, तो विवादापन्नको ही तो यह कहा कि प्रत्यक्ष है। यह सिद्ध किया जाना युक्तिसंगत है। तो जब विवादापन्नको साध्य बनानेकी विधि है जिस बातमें विवाद उठ रहा हो उस ही का तो साध्य बनाते हो तो जब विवादापन्न पदार्थको साध्य बनानेकी पद्धति है तो धर्मी अप्रसिद्ध कहाँ रहा? उसे साध्य रूपमें लाया तो आ रहा। सर्वथा अप्रसिद्धको मान्यता दोगे। तो जो असर्वज्ञवादी हैं मीमांसक सिद्धान्तानुयायी वे भी बतायें कि धर्म पुण्य पाप सिद्ध हो रहे हैं तो ऐसे ही सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ, सिद्ध धर्मीके बारेमें साध्य बनाया जा रहा है कि ये किसीके प्रत्यक्षभूत हैं।

सन्निवेशविशिष्टत्वकी विभिन्नता होनेकी भांति अनुमेयत्वमें विभिन्नता न होनेसे अनुमेयत्व हेतुके अप्रयोजकत्वका अभाव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि इस तरह पर्वत आदिक जो कि बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं इस रूपसे विवादापन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं, तो उनको साध्य बना लेनेपर कि ये पृथ्वी पर्वत आदिक किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। जब इनका यह साध्य उपस्थित किया तो वहाँ क्यों बताया गया कि इस अनुमानमें जो आकार विशिष्टता हेतु दिया गया वह अप्रयोजक है। वह भी प्रयोजक बन जायगा। जब यहाँ अनुमेयत्व होनेसे इस हेतुके द्वारा सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको किसीके ये प्रत्यक्ष हैं यह सिद्ध किया जा रहा तो इसी तरह पर्वत जमीन आदिक भी आकार विशेषसे विशिष्ट है इस कारण ये सब किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गए हैं, इसकी सिद्धि क्यों नहीं मान लेते ? उत्तरमें कहते हैं कि सन्निवेश विशिष्टत्व हेतुमें स्वभाव भेद पड़ा हुआ है इस कारण अनुमेयत्व हेतुकी समानता देकर इसे प्रयोजक नहीं कह सकते। वह किस तरहसे कि देखो ! जिस प्रकारका नये मकान आदिकमें आकार विशेष पाया जाता है और इस नये मकान आदिकके बारेमें यह न मालूम होकर भी कि किस कारीगरने बनाया उसके बनाने वालेका दर्शन और पता न होनेपर भी यह किसीके द्वारा बनाया गया है यह बात तो लोग जानते ही हैं। तो वैसा ही आकार जिस टूटे फूटे मकानमें पाया जाता है तो वहाँ इस बातका अनुमान बन जाता है कि किसी बुद्धिमानके द्वारा कारीगरके द्वारा यह बनाया गया है। जैसे नये मकान कारीगरोंके द्वारा बनाये जाते हैं तो वह पुराना टूटा मकान भी कारीगरोंके द्वारा ही बनाया गया है। यह अनुमान वहाँ तो बन जाता है लेकिन इन मकानादिकोंसे भिन्न जैसा कि कारिगरोंने रचा है. रचते हैं ऐसे आकारसे बिल्कुल भिन्न पर्वत मकान आदिकमें जो आकार प्रतीत होता है उन आकारोंसे यह ज्ञान न बन सकेगा कि इसे भी किसी बुद्धिमानने बनाया है, और ऐसा तो स्वयं मीमांसकोंने किसी प्रसंगमें कहा भी है, पर इस प्रसंगमें दिया गया अनुमेयत्व हेतु इस तरहका नहीं है। जैसे ये नये मकान, पुराने मकानके सन्निवेश व पर्वत आदिके सन्निवेश विभिन्नताको लिए हैं, इस तरह अग्निकी अनुमेयता, सर्वज्ञकी अनुमेयता आदि अनुमेयत्व विभिन्न नहीं, अनुमेयपनेमें स्वभावभेद नहीं पड़ा।

सन्निवेश विशिष्टत्व हेतुकी अप्रयोजकता व अनुमेयत्व हेतुकी प्रयोजकताका विवरण— जिस प्रकार सन्निवेश विशिष्ट हेतुमें स्वभाव भेद पाया जाता है कि नये मकान पुराने मकान इनमें आकारकी सदृशता है और नये मकना चूँकि बुद्धिमानके द्वारा किए गए हैं उससे सिद्ध है कि ये जीर्ण मकान भी बुद्धिमानके द्वारा किए गए हैं लेकिन इनसे विलक्षण आकार है पर्वत नदी आदिकका जिनके किये जानेका अनुमान नहीं बनता तो वह सन्निवेश विशिष्टपनेमें स्वभावभेद हो गया, उस प्रकारसे यहाँ अनुमेयपनेमें स्वभावभेद नहीं है। चाहे धूम साधनके द्वारा अग्नि साध्यका अनुमान किया जाय, चाहे यहाँ अनुमेयत्व साधनके द्वारा विप्रकर्षी पदार्थोंका किसी परम पुरुषके प्रत्यक्ष विषयताका अनुमान किया जाय, अनुमेयपना दोनोंमें ही समान है। साध्यके अविनाभावका नियम रखने वाला ही साधन होता है। तो ऐसे लक्षण वाले साधनसे जो अनुमान ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें जो कुछ अनुमेयपना है वह अनुमेयपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्त साध्योंमें समान है। चाहे अग्निका अनुमान किया जा रहा हो चाहे पुण्य पाप आदिकका अनुमान किया जा रहा हो च हे विप्रकर्षी पदार्थोंमें किसीके प्रत्यक्षविषयताका अनुमान किया जा रहा हो, इन सब अनुमानोंमें साधन देकर जो अनुमेयता बनती है वह तो सर्वत्र समान है, भिन्न नहीं है। जिससे कि कोई अनुमेयपना तो प्रयोजक बने और कोई अनुमेयपना अप्रयोजक बने याने किसी अनुमानकी सिद्धि माने और किसी की सिद्धि न मानें यह विभाग नहीं बन सकता है।

विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयताका उच्छेद करने वालोंके यहाँ स्वकीय इष्ट अनुमानके भी उच्छेदका प्रसंग—और भी देखिये कि स्वभाव विप्रकर्षी याने परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ काल विप्रकर्षी अर्थात् अतिभूत व भविष्यमें होने वाले महापुरुष और देश विप्रकर्षी याने दूर देशमें रहने वाले क्षेत्र पर्वत आदिक इन सबकी अनुमेयता असिद्ध है, ऐसा कहते हुए कोई दार्शनिक मीमांसक अथवा बौद्ध अपने ही अनुमानका खण्डन कर रहे हैं। विप्रकर्षी पदार्थोंकी किसीके प्रत्यक्ष वषयताका खण्डन करनेका अभिप्राय रखने वाले दार्शनिकोंके यहाँ स्वयंके माने हुए तत्त्वका भी अनुमान नहीं बन सकता है। जैसे क्षणिकवादमें यह अनुमान किया गया है कि सब कुछ क्षणिक है क्योंकि सत्त्व होनेसे। तो यहाँपर यह व्याप्ति बनानी पड़ेगी ना कि जितने जो कुछ भाव हैं, पदार्थ हैं सत् हैं वे सब क्षणिक हैं, भाव होनेसे। इसमें सूक्ष्म पदार्थोंके विप्रकर्षी होनेसे यहाँ व्याप्ति सिद्ध नहीं होती। व्याप्ति सिद्ध यों नहीं होती कि जितने दुनिया भर के सत् पदार्थ हैं वे सभी प्रत्यक्षभूत तो नहीं विप्रकर्षी तो हैं ही। कोई पदार्थ अति अति सूक्ष्म है कोई पदार्थ अति दूर देशमें हैं, कोई पदार्थ अतिभूत भविष्यका है. इनमें अनुमेयपना माना नहीं तो सत्ता कहाँ रही ? फिर इसके साथ क्षणिकपनेकी व्याप्ति असिद्ध है और इसी कारण वे अपने माने हुए प्रकृत सिद्धान्तका उपसंहार नहीं कर सकते। जैसे यह कहना कि जो कुछ भी भाव है वह क्षणिक होता है और भाव है यह सो यह अत्यन्त क्षणिक है। उपसंहार बन ही नहीं सकता, क्योंकि दूरवर्ती तत्त्वों को अनुमेय माना ही नहीं। तब किसी तरह उनका सत्त्व ही सिद्ध नहीं हो सकता। जब सत्त्व सिद्ध ही न हो सकेगा तब उसको साधन देकर क्षणिक साध्यके प्रति व्याप्ति बनाना कैसे युक्त हो सकता ? और भी समझिये जो विप्रकर्षी पदार्थ हैं सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती उनको तो अनुमेय जानते नहीं और जो अविप्रकर्षी पदार्थ हैं याने सामने हैं, स्थूल हैं अभी हैं उनका अनुमान करना व्यर्थ है तब फिर अनुमानका ही उच्छेद हो गया। किसका अनुमान करना ? परोक्षभूत पदार्थका तो अनुमान यों नहीं बन सकता कि परोक्षभूत पदार्थोंके अनुमेयपनेका निराकरण किया है और वर्तमान निकटवर्ती स्थूल पदार्थोंका अनुमान यों अनर्थक है कि वह सामने ही है प्रत्यक्षभूत ही है। उनका अनुमान किसलिए किया जायगा ? तब जो लोग सत्त्वहेतुका अनित्यपनेके साथ व्याप्ति मानते हैं या व्याप्ति मानना चाहते हैं अपने सिद्धान्तके समर्थनके लिए उनके यहाँ यह पूर्णरूपसे सिद्ध हो जायगा कि जो विप्रकर्षी पदार्थ हैं सूक्ष्म दूर देशके बहुत भूत भवि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ध्यके वे सब अनुमेय हैं। तब कोई विरुद्ध बात ही नहीं देखते हैं। मीमांसक लोग भी कृतकत्व हेतुसे अनित्यपना सिद्ध करते हैं। वहाँ भी यही बात है कि साधनकी साध्यके साथ व्याप्ति बनाना वे चाहते हैं तो उनको समस्तरूपसे अनुमेयपना मानना ही पड़ेगा। इस उक्त प्रतिपादनसे यह निर्णय हुआ कि जो सूक्ष्म पदार्थ हैं बहुत भूतकालवर्ती पदार्थ हैं अथवा दूर देशके पदार्थ हैं वे सब किसी न किसी परम पुरुषके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं, क्योंकि अनुमेय होनेसे। और इस प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धि हो ही जाती है।

असर्वज्ञवादियों द्वारा विप्रकर्षीकी अनुमेयता असिद्ध माननेपर भी अनुमानोच्छेदसे अप्रसंगका वर्णन—अब यहाँ सौगत और मीमांसक आदिक असर्वज्ञवादी शंका करते हैं कि बात इस प्रकार है कि कोई पदार्थ तो प्रत्यक्ष होते हैं जैसे घटपट आदिक, ये एक दम स्पष्ट प्रत्यक्ष हैं कोई पदार्थ अनुमेय होते हैं जिसे जाना, साध्य साधनको प्रत्यक्षसे जाना था, उनका अविनाभाव भी अच्छी तरहसे समझ रखा था अब किसी समय वही साधन दिख रहा है तो वहाँ साध्यका ज्ञान कर लिया जाता है तो यों कुछ पदार्थ अनुमेय होते हैं और कुछ पदार्थ आगम मात्रसे गम्य होते हैं जो हमेशा स्वभाव विप्रकर्षी हैं, अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म हैं ऐसे पुण्य पाप आदिक ये केवल आगम मात्रसे गम्य हैं, क्योंकि पुण्य पाप आदिक का कोई भी प्रमाता न प्रत्यक्ष कर सकता है न अनुमान कर सकता है। सभी आत्माओं द्वारा पुण्य पापके सम्बन्धमें किसी भी प्रमाण द्वारा जानकारी नहीं बन सकती सो वह केवल आगम मात्रसे ही गम्य है। इस विषयको श्रुति वाक्यमें स्पष्ट कहा है कि जब पुण्य पापको सभी आत्मा प्रत्यक्ष आदिक किसी प्रमाणसे नहीं जान सकते तब पुण्य पाप केवल आगमगम्य ही हैं यह बात सिद्ध होती है। इस कारण धर्मादिक याने पुण्य पाप आदिक तत्त्वोंका अनुमेयपना बता रहे हैं हम लोग, फिर भी हम अनुमानका उच्छेद नहीं कर रहे हैं। अनुमान तो अनुमेय पदार्थोंसे व्यवस्थितरूपसे बन ही जाता है। हाँ पुण्य पाप तत्त्व ऐसे हैं कि जिनको किसी समय किसीने कोई प्रत्यक्षमें लिया ही नहीं तो वे आगम मात्रसे गम्य हैं उनका जाननहार कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

पुण्य पाप आदि विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयता न माननेपर शंकाकारके अभीष्ट सिद्धान्तका व्याघात—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि यह बात कहना कि पुण्यपाप केवल आगमके गम्य हैं यह बात युक्ति संगत नहीं। पुण्य पाप भी किसी दृष्टिसे अनुमेय हैं। जैसे पुण्य पापके सम्बन्धमें स्वयं मीमांसकोंने कहा है कि वे अनित्य हैं, तो अब पुण्य पाप आदिकमें अनित्य स्वभाव पड़ा है, यह पर्याय दृष्टिसे वर्णन किया जाता है। और, पर्यायपना हेतु देकर पुण्यपापमें अनित्यता सिद्धकी जाती है तो देखो अनुमेय बन गया ना। तब यह कहना कि पुण्य पाप केवल आगममात्रसे ही गम्य होते हैं यह बात अयुक्त है। पुण्य पाप आदिकमें अनुमेयपना असिद्ध है। जितने कोई भी भाव हैं, पर्याय नामक कोई भी तत्त्व हैं वे सब अनेक क्षणस्थायी क्षणिक हैं, अर्थात्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसे क्षणिक तो नहीं कि एक-एक समयमें नष्ट हो जायें किन्तु अनेक क्षणोंमें रहकर क्षणिक हैं क्योंकि पर्याय होनेसे। तो सभी पर्याय नामक भाव क्षणिक हैं पर्याय होनेसे जैसे घट पट वगैरह। तो इसी प्रकार पुण्य पाप भी पर्याय हैं, अतएव वे भी अनित्य हैं। यों भी मीमांसकोंने स्वयं ही किसी प्रमाणसे पर्यायत्वके साथ अनित्यकी व्याप्ति सिद्ध की है और फिर प्रकृतका उपसंहार किया है। तो इससे ही यह सिद्ध है कि पुण्य पाप कथंचित् अनुमेय हैं, एक आगम मात्र गम्य हो सो बात नहीं है, क्योंकि यदि क्षणिकत्व और पर्यायपनेकी व्याप्ति न मानी जाय तो पुण्य पाप आदिकमें यह पर्याय है इसलिए क्षणिक है ऐसा उपसंहार नहीं बन सकता, अपने सिद्धान्तका समर्थन नहीं बन सकता।

विप्रकर्षी पदार्थोंके अनुमेयत्वकी असिद्धि व अविप्रकर्षी पदार्थोंके अनुमानकी निरर्थकता कहने वालोंके यहाँ अविप्रकर्षी सुखादिकोंके अनुमानके अनर्थकत्वकी अपरिहार्यता—विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयता न माननेपर याने जो विप्रकर्षी पदार्थ हैं पुण्य पाप, उनमें तो अनित्यपनेका अनुमान न बन सका और, जो सदैव अविप्रकर्षी हैं वर्तमान हैं, स्थूल है उनमें अनुमान करना व्यर्थ है इस प्रकार कह देने वाले मीमांसक जो निकट हैं, सुख आदिक, उनके अनुमानकी अनर्थकताको कैसे दूर कर सकते हैं ? अब तो यह सिद्धान्त बना रखा था ना कि जो विप्रकर्षी हैं, सूक्ष्म हैं, अतिदूरके हैं वे तो अनुमेय होते नहीं और जो अविप्रकर्षी हैं याने निकट हैं, वर्तमान हैं, स्थूल हैं, उनमें अनुमान करना व्यर्थ है तो यह बताओ कि जो सुख दुःखका अनुभव होता है वह तो निकट ही है ना, क्योंकि मनके द्वारा जान लिया जाता है, उनका मानसिक प्रत्यक्ष होता है, तो ऐसे अतिनिकट सुख आदिकका अनुमान करना भी व्यर्थ बन जायगा यहाँ मीमांसक आक्षेपके समाधान शंका करते हैं कि जो निरन्तर निकट हैं उनका मान करना अनिष्ट है इसलिए दोष नहीं आता। सुख आदिक निरन्तर पास रहते हैं और मानसिक प्रत्यक्षसे जाने जाते हैं, इस कारण उनका अनुमान करना व्यर्थ है। तब इससे सारे अनुमानोंकी अनर्थकताके दोषकी बात न आयगी। तो उत्तर पूछते हैं कि तब फिर यह बताओ कि यह अनुमान प्रमाण फिर कहाँ फिट बैठ पायगा। क्योंकि, अतिदूरवर्तीको तो आप अनुमेय बताते नहीं और अतिनिकटवर्तीको अनुमेय बनानेको अनिष्ट और अनर्थक कहते हैं तब फिर अनुमान लगाया कहाँ जायगा ?

कदाचित् अविप्रकर्षी (दूरवर्ती) होनेपर उसकी अनुमेयताकी सिद्धि माननेपर शाश्वत् परोक्षभूत बुद्धिके अनुमानकी अनुपपत्तिका प्रसंग—यहाँ मीमांसक कहते हैं कि अनुमान वहाँ लगेगा जहाँ कभी तो चीज निकट है, प्रत्यक्षगोचर है और किसी समय वह वस्तु दूर देश कालमें है तो चूँकि उस वस्तुका, साधनका अविनाभाव पहिले परख लिया था। तब साधन देखकर साध्यका ज्ञान किया जाता है और वहाँ अनुमान सार्थक बनता है। ऐसी बात रखनेपर समाधानमें कहते हैं कि फिर इस तरहसे तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो निरन्तर परोक्षभूत है, जिसका कभी साक्षात्कार न हो, ऐसी बुद्धिका अनुमान
कैसे बन सकेगा, जिससे कि आपका यह सिद्धान्त शोभा पाये ? जैसे कि श्रुति वाक्यमें
कहा है कि पदार्थके जान लिए जानेपर अनुमानसे बुद्धिको जान लिया जाता है, जैसे
किसीने पदार्थको जान लिया तो अब हम अनुमानसे समझ लेते हैं कि इसमें बुद्धि है
क्योंकि इसने पदार्थको जान लिया। तो यहाँ अनुमान बना रहे ना और अनुमान कर
रहे हो निरन्तर परोक्ष रहने वाली बुद्धिका तो यहाँ अनुमान कैसे बन सकेगा जब कि
इन परोक्षभूत पदार्थोंका कोई अनुमान ही नही हो सकता, यह सिद्धान्त बना रहे हो।

अर्थापत्तिसे बुद्धिकी प्रतिपत्ति माननेपर अर्थापत्तिसेसे पुण्य पापकी प्रतिपत्ति की सिद्धि—मीमांसक उक्त अनिष्टापत्तिके समाधानरूपमें कहते हैं कि अर्थापत्तिसे बुद्धि
का ज्ञान हो जायगा अतएव यह आक्षेप करना कि निरन्तर परोक्षभूत बुद्धिका अनुमान
कैसे बनेगा ? यह आक्षेप अयुक्त है। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार यहाँ
अर्थात्पत्तिसे बुद्धिका ज्ञान मान लिया गया है इसी तरह अर्थापत्तिसे पुण्य पाप आदिक
का भी ज्ञान मान लिया जाय। जैसे कि बाह्य पदार्थोंका परिज्ञान अन्यथा नहीं बन
सकता था, इस अन्यथानुपपत्तिसे बुद्धिका ज्ञान किया गया है उसी प्रकार सुख दुःख
अन्यथा नही बन सकते थे इस कारणसे पुण्य पाप आदिकके सद्भावका ज्ञान किया
जाता है, यह बात भी युक्त मान लेना चाहिए बुद्धि जैसे परोक्षभूत है और उन बुद्धि
का परिज्ञान आप लोग इस तरह करते हैं कि मुझमें बुद्धि है अन्यथा घट पट आदिक
बाह्य अर्थोंको ज्ञान नही बन सकता था। तो जैसे अपने परोक्षभूत बुद्धि पदार्थका अर्था-
पत्तिसे ज्ञान कर रहे हो इसी प्रकार यह भी ज्ञान कर लीजिए कि पुण्य पाप हैं अन्यथा
सुख और आपत्तियाँ उत्पन्न न हो सकती थी। इस तरह पुण्य पाप आदिकका ज्ञान भी
अर्थापत्तिसे बन गया तब यह बात तो न रही कि पुण्य पाप केवल आगम मात्रसे गम्य
हैं, लो अनुमानसे भी अर्थापत्तिसे भी ये पुण्य पाप गम्य हो गए। यहाँ शंकाकार कहता
है कि सुख और दुःख तो धर्म और अधर्मके अभावमें भी देखे जाते हैं। जैसे स्त्री, पुत्र
आदिक मिले तो उनसे सुख हो गया। पुण्य पाप नहीं हैं, धर्म अधर्म नहीं है तो भी
देखो ! सुख दुःख हो जाया करते हैं। तब पुण्य पापकी सिद्धि करनेमें जो अर्थापत्ति
बतायी है वह तो क्षीण हो गयी, अर्थात् बुद्धि अर्थापत्तिसे जानी जाती है इसका निरा-
करण करनेमें जो पुण्य पापकी अर्थापत्ति बतायी है वह अर्थापत्ति निर्बल है। उत्तरमें
कहते हैं कि जो यह कहा है कि सुख दुःख पुण्य पापके बिना भी हो सकते हैं सो बात
अयुक्त है। यहाँ जो स्त्री, पुत्र आदिकके प्रसंगमें सुख दुःख नजर आ रहे हैं वे भी अन्त-
रङ्गमें तो पुण्य पापके कारणसे ही है, दूसरे सुख दुःखकी उत्पत्तिमें दृष्ट कारणोंका
व्यभिचार है। मानो स्त्री होनेपर भी किसीको सुख है किसीको दुःख है, वैभवसम्पदा
होनेपर भी किसीको सुख है, किसीको दुःख है। तो यहाँ जो कारण दृष्ट हो रहे हैं सुख
दुःखके उनमें व्यभिचार है, अर्थात् वे अविनाभाव रूपसे कारण नहीं बन पाते, इससे
यह ज्ञान करना चाहिए कि सुख दुःखका कारण कोई अदृष्ट कारण ही है और वह है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुण्य पाप। तो जैसे रूपादि ज्ञानकी अन्यथानुपपत्तिसे तुम इन्द्रिय शक्तिका ज्ञान करते हो, अनुमान करते हो कि विशिष्ट रूपादिक ज्ञान हो रहे हैं इस कारण मुझमें विशिष्ट इन्द्रियकी शक्ति है अन्यथा विशिष्ट रूपादिकका ज्ञान बन नहीं सकता था। तो जिस तरह यहाँ अर्थापत्तिसे बुद्धिका ज्ञान और इन्द्रियकी शक्तिका ज्ञान कर लेते हो उसी प्रकार अर्थापत्तिसे पुण्य पापका भी परिज्ञान किया जा सकता है।

अर्थापत्ति अनुमानसे अन्य न होनेके कारण अनुमानसे परोक्षभूत अर्थोंकी सिद्धिकी युक्तिसंगतता और विप्रकर्षी पदार्थोंके प्रत्यक्ष विषयताकी सिद्धि —और भी सुनो ! अर्थापत्ति अनुमानसे कोई भिन्न चीज नहीं है। अनुमानका ही अर्थापत्ति नाम रख लिया है क्योंकि अर्थापत्तिमें यही तो दिखलाते हो कि यदि साध्य न होता तो साधन भी न होता। अर्थापत्तिकी दो पद्धतियां हैं—तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति। और इन दो पद्धतियोंमें अन्यथानुपपत्तिकी पद्धति प्रबल है। एवकारके निर्णयसे तथोपपत्तिकी पद्धति भी प्रबल है। तथोपपत्तिका अर्थ हुआ साध्यके होनेपर हीं साधनका होना तथा अन्यथानुपपत्तिका अर्थ है—अन्यथा याने साध्य न होनेपर साधन का न होना। अन्यथानुपपत्तिमें यह ज्ञान हुआ कि साध्य न होता तो साधन न बन सकता था। जैसे अग्नि न होती तो धूम नहीं हो सकता था। सो अर्थात् धूम देखनेसे अग्निका ज्ञान हुआ तो यह अन्यथानुपपत्ति ही तो हुई। तो अनुमानमें अन्यथानुपपत्ति साधकतम है और अर्थापत्तिमें भी अन्यथानुपपत्ति साधकतम है। तथोपपत्ति तो अन्वय व्याप्तिका रूप है. अन्यथानुपपत्ति व्यतिरेक व्याप्तिका रूप है। तो अर्थापत्ति भी अनुमानसे कोई जुदा प्रमाण नहीं है। तो बुद्धिका अर्थापत्तिसे ज्ञान करना यों कहिये या यह कहिये कि बुद्धिका अनुमानसे ज्ञान करना इन दोनोंका एक ही तात्पर्य है। और, जब परोक्षभूत बुद्धिका अनुमान बन गया तो इससे यह सिद्ध है कि परोक्षभूत पदार्थोंका अनुमान बना लेना सही है। लोकके ये परोक्षभूत पदार्थ जो सूक्ष्म हैं अन्तरित हैं, दूरवर्ती हैं ऐसे विप्रकर्षी पदार्थोंका अनुमान बना लेना यथार्थ है और इस तरह यह सिद्ध होता है कि समस्त पदार्थ जिनमें कि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती विप्रकर्षी पदार्थ हैं ये भी किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। तो अनुमानसे जैसे निरन्तर परोक्ष रहने वाली बुद्धि आदिकमें अनुमेयता सिद्ध होती है उस ही प्रकार पुण्य पाप आदिकमें भी जो सदा विप्रकर्षी है. अनुमेयता सिद्ध होती है और इस ही प्रकार सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंमें भी अनुमेयता सिद्ध होती है।

सत्त्व कृतकत्व आदि हेतुकी अनित्यत्व साध्यके साथ व्याप्ति सिद्ध करने वालोंके परोक्षभूत विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयता मान लेनेकी अनिवार्यता—अब उक्त कथनसे यह स्पष्ट समझ लीजिए कि जो बौद्ध मीमांसक नैयायिक आदिक सत्त्व कृतकत्व आदिक हेतुकी अनित्यत्व आदिकके साथ व्याप्ति बताना चाहते हैं तो उनके यहाँ यह सिद्ध पहिले ही हो गया कि समस्त रूपोंसे उन पदार्थोंमें अनुमेयता प्रसिद्ध है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब कुछ क्षणिक है सत्त्व होनेसे। तो भला बतलावो कि परमाणु, रामरावण आदिक मेरु पर्वत आदिक ये तुमने प्रत्यक्ष किये या नहीं? नहीं किये। तो उन परोक्षभूत अर्थों में तुम क्षणिकत्वको सिद्ध कर रहे हो तो यही तो सिद्ध हुआ कि परोक्षभूत अर्थ भी अनुमेय बनता है। नैयायिक कृतकत्व हेतु देकर पदार्थोंको अनित्य सिद्ध करते हैं। वहाँ भी यही बात हुई कि परोक्षभूत पदार्थोंकी व्याप्ति माननी होगी और अनुमान मानना होगा। तब तो असर्वज्ञवादियोंके फिर कुछ विघात नहीं है। सीधी तरहसे अनुमान भी माना, व्याप्ति भी माना, और इसी प्रकार सर्वज्ञवादियोंके यहाँ भी कुछ भी विघात नहीं है क्योंकि असर्वज्ञवादियोंने भी स्वभाव विप्रकर्षी, कालविप्रकर्षी और देश विप्रकर्षी पदार्थोंमें अनुमेयपनेकी व्यवस्था बनायी है और सर्वज्ञवादियोंने भी इन विप्रकर्षी पदार्थोंमें अनुमेयता मानी है, तब प्रकृत अनुमानमें कि सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे इसमें कोई बाधा नहीं है। सो सर्वज्ञ की सिद्धि बराबर हो रही है क्योंकि परोक्षभूत अर्थोंमें अनुमेयता पूर्णरूपसे सिद्ध होती है।

प्रकृत अनुमेयत्व हेतुमें भागासिद्ध दोषका अभाव—अब यहाँ अत्यन्त परोक्ष अर्थोंमें अनुमेयता न होनेसे यह अनुमेयत्व हेतु भागासिद्ध नामके दोषसे दूषित है, ऐसा यदि कोई कहे तो उसका भी निराकरण हो जाता है। तब परोक्षभूत अर्थ अनुमेय सिद्ध हो गए। तो भागासिद्धकी कहाँ गुञ्जाइस रही? जो लोग परोक्षभूत अर्थोंमें अनुमेयपना नहीं मानते और इसी कारण प्रकृत हेतुको भागासिद्ध दोषसे दूषित कहते हैं वह उक्त समाधानोंसे ही निराकृत हो जाता है। देखिये? समस्त पदार्थोंकी सत्ता अनेकान्तात्मकत्व रूपसे अर्थात् समस्त वस्तुयें अनेकान्तात्मक हैं इस रूपसे सिद्ध ही है समस्त पदार्थ, परोक्षभूत व प्रत्यक्षभूत सर्व पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं सत्त्व होनेसे, इस अनुमानके द्वारा अनेकान्तात्मकपना आदिक स्वभावरूपसे उन सबका अनुमेयपना सिद्ध है। अर्थात् जो लोग यह कहते कि पहिले परोक्षभूत पदार्थ ही तो सिद्ध नहीं हैं फिर हेतु कहाँ लगे? सो उसका उत्तर यह है कि परोक्षभूत पदार्थ इस रूपसे तो अनुमेय हो ही गए कि सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं सत्त्व होनेसे। सत्त्व हेतु द्वारा सर्व पदार्थोंकी अनेकान्तात्मकता प्रसिद्ध है, फिर उनमें ये किसीके प्रत्यक्ष है, यह साध्य बताया जा रहा इस लिए भागासिद्ध नामका भी दोष यहाँ नहीं लगता।

अथवा अनुमेय अर्थात् श्रुतज्ञानाधिगम्य होनेसे सूक्ष्मादि पदार्थोंकी कहीं प्रत्यक्षविषयताकी सिद्धि—अथवा इस सर्वज्ञताके प्रतिपादनमें जो अनुमेयत्व हेतु दिया है उसका अर्थ श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य होना भी है। तब अनुमान प्रयोग यों हो गया कि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं। श्रुतज्ञनका शास्त्रोंमें वर्णन आता है सो आगम द्वारा गम्य है, इससे सिद्ध है कि ये सर्व पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्ष हैं। यहाँ अनुमेयत्वका अर्थ श्रुतज्ञानके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्वारा अधिगम्य होना किस प्रकार है सो सुनो। अनुमेयमें दो शब्द हैं अनु और मेय। मेयका अर्थ है मीयमान होना अर्थात् जान जाना, ज्ञात होना, और अनुका अर्थ है पीछे सो मतिज्ञानके पीछे ज्ञात होनेके कारण ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेय हैं याने श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं सो इस प्रकारकी व्युत्पत्तिसे अनुमेयत्वका अर्थ हुआ मतिज्ञानके पीछे उत्पन्न होने वाला जो प्रमाण मतिज्ञानके अनन्तर होता उसे अनुमेय कहते हैं। मतिज्ञानके पश्चात् प्रमाण उत्पन्न होता है श्रुतज्ञान। सो श्रुतज्ञानके द्वारा ये सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ अधिगम्य है ही। शास्त्रोंमें भी कहा है कि "श्रुतं मति-पूर्वकं" श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है ये विप्रकर्षी पदार्थ श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं यह बात असिद्ध भी नहीं है। प्रतिवादी भी सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य मानते हैं, जैसे पुण्य पाप आदिक पदार्थ श्रुतिवाक्य वेदके द्वारा अधिगम्य माने गए हैं। उनका सूत्र है कि वेद भूत वर्तमान भविष्यत सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट इस प्रकारकी जाति वाले समस्त पदार्थोंको जनानेके लिए समर्थ हैं। ऐसे मीमांसकोंके सिद्धान्तमें उन्होंने स्वयं कहा है। सो अनुमेय शब्दका श्रुतज्ञानाधिगम्य अर्थ कर देनेपर निष्कर्ष यह निकला कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ भी किसीके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं। जिसके द्वारा ये प्रत्यक्ष हुए उसहीको सर्वज्ञ कहते हैं क्योंकि श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य होनेसे परमाणु, राम रावण आदिक पुरुष और मेरु विदेह स्वर्ग नरक आदिक ये सब श्रुत ज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं। प्रभुप्रणीत शासनकी परम्परामें आचार्योंने शास्त्रोंमें सूक्ष्म निर्देश किया है। विवरण भी किया, इससे यह यह सिद्ध होता है कि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष है, जैसे नदी द्वीप पर्वत देश आदिक किसीके प्रत्यक्ष हैं। आज कलके देश, पहाड़ विदेशोंको यहाँके अनेक लोगोंने देखा नहीं है लेकिन नक्शोंके द्वारा पुस्तकोंके द्वारा पढ़ करके जानते हैं और जाकर कोई लोग देख आयें, उनके वचनोंसे पहिचानते हैं कि वे सब द्वीप देश आदिक किसीके प्रत्यक्ष हैं। तो यों आगम भी श्रुत है, आगमके द्वारा जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है। तो श्रुत ज्ञानसे यह सब जाना गया है। अतः सिद्ध है कि विप्रकर्षी पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष अवश्य हैं। जिसको प्रत्यक्ष है उसहीका नाम सर्वज्ञ है।

अनुमेयत्व(श्रुतज्ञानाधिगम्यत्व) हेतुकी निर्दोषताका कथन—प्रकृत अनुमान प्रयोगमें जो अनुमेयत्व (श्रुतज्ञानाधिगम्यत्व) हेतु दिया गया है उसका सर्वथा एकान्तों के साथ अनैकान्तिक दोष नहीं आता। अर्थात् यहाँ कोई कहे कि सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य ये भी किसीको प्रत्यक्ष हो जाना चाहिये क्योंकि ये भी श्रुतिज्ञानके द्वारा जाने जाते हैं। और यदि कोई सर्वथा एकान्तवाद किसीके प्रत्यक्ष हुए तो इसका अर्थ यह निकला कि ये एकान्तवाद स्पष्ट समीचीन हैं। तो समीचीन माने नहीं गए तब अनमेयत्वके हेतुका जिसका कि व्युत्पन्न अर्थ यह कर रहे हैं कि श्रुत ज्ञानके द्वारा अधिगम्य होना यह हेतु सर्वथा एकान्तके साथ अनैकान्तिक दोषसे दूषित होता है नहीं कह सकते क्योंकि सर्वथा एकान्त भी तो श्रुतिज्ञानके द्वारा अधिगम्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है अर्थात् श्रुतज्ञानाभास, झूठाआगम झूठेवचनसे जाना तोजाता है लेकिन, सर्वथा एकान्त एक तो प्रत्यक्षसे बाधित है, दूसरे यह आगमसे बाधित है। प्रत्यक्षसे यों बाधित हैं कि हम प्रकट समझ रहे हैं कि कोई भी पदार्थ अपनी पर्यायोंको बदल–बदलकर भी वही रहता है तो पर्याय दृष्टिसे वह अनित्य है, किन्तु द्रव्य दृष्टिसे वह नित्य है, ऐसी बात जब हमको प्रत्यक्षसे ही समझमें आ रही है तो सर्वथा एकान्त कैसे समीचीन हो सकता है ? इसी प्रकार अनुमानसे भी सर्वथा एकान्तके स्वीकार करनेमें बाधा आती है। तो यह हेतु निर्दोष है। ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ श्रुतिज्ञानके द्वारा अधिगम्य होने से किसीके प्रत्यक्ष हैं यह बात निःसन्देह सिद्ध होती है। श्रुतज्ञान सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको विसम्वाद रहित जानता है, समीचीन रूपसे समझता है। यह बात आगे कहेंगे उसश्रुत ज्ञानके द्वारा जब यह सब अधिगम्य है तब समस्त वस्तुओंमें यह बात सिद्ध होती है कि ये सब किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेय हैं और तब किसीके प्रत्यक्ष अवश्य हैं।

अनुमेयत्व हेतुमें संदिग्धानैकान्तिकत्व दोषका परिहार - अब यहाँ मीमांसक शंका करते हैं कि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेय है तो रहे आये। अनुमान द्वारा अनुमेय हो तो और श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगमय हो तो अनुमेय रहा आये और किसीके प्रत्यक्ष न रहे, इसमें कौनसी बाधा आती है ? जिससे कि अनुमेय हेतु देकर इन पदार्थोंको किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत है यह सिद्ध किया जया रहा है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कथन तो अग्नि आदिक सभी साध्योंमें लगाया जा सकता है। अग्नि वगैरह अनुमेय तो हों और किसीके प्रत्यक्ष न हों, इसमें क्या दोष होगा ? जब केवल बोलनेसे ही किसीकी सिद्धि मान ली जाती है तो यह भी कह सकते हैं और इस तरह फिर अनुमान प्रमाणका उच्छेद ही हो जायगा, क्योंकि सभी अनुमानोंमें यह उपालम्भ समान है। ऐसा कह सकते हैं कि धूम तो रहो कहीं और अग्नि मत रहो। इस तरह सभी अनुमानोंमें साध्यका संदेह, साध्यका अभाव यह सब कहा जा सकता है, किन्तु अनुमानका उच्छेद तो नहीं। तब अनुमानसे भी प्रबलरूपसे मानना होगा कि सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं।

अनुमेयता माने बिना लौकायतिकोंका भी गुजारा न होनेसे लौकायतिययों को भी सर्वज्ञत्व सिद्धि मान लेनेकी अनिवार्यता—अब यहाँपर चार्वाक शंका करते हैं कि अनुमानका उच्छेद होता है तो होने दो, अनुमान तो उच्छेदके योग्य ही है क्योंकि वह अप्रमाण है, प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, क्योंकि यह ज्ञान अविसम्वादी है और अनुमान आदिक ज्ञान अप्रमाण हैं। क्योंकि ये विसम्वादी हैं। यों अनुमानका उच्छेद ही सही है, ऐसा कहने वाले चार्वाकोंके प्रति कह रहें हैं कि अनुमानका उच्छेद मान लेनेपर यह चार्वाक अस्वसंवेद्य ज्ञानकणोंके द्वारा किसीको यह कैसे सिद्ध कर सकेगा कि प्रत्यक्ष तो है प्रमाणरूप और अनुमान है अप्रमाणरूप, क्योंकि अनुमान तो चार्वाकको प्रमाण नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है और, ज्ञान जितना है वह सब है अस्वसम्वेद्य। चार्वाक सिद्धान्तके अनुसार ज्ञान सब अस्वसम्वेद्य हैं क्योंकि ये भौतिक हैं, पृथ्वी आदिकके परिणमन हैं। इस कारण ज्ञान स्वयं अपने आपकी प्रमाणता नहीं कर सकता है ऐसा तो है चार्वाकोंका प्रत्यक्ष ज्ञान और अन्य ज्ञान वे मानते ही नहीं हैं तब दूसरोंको ये चार्वाक कैसे समझा सकेंगे कि प्रत्यक्ष तो है प्रमाणरूप और अनुमान है अप्रमाणरूप, किसी भी प्रकार ये चार्वाक किसीको भी यह समझानेमें समर्थ नहीं हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाण है, अन्य सब अप्रमाण हैं. क्योंकि समझानेके लिए कुछ तो बोलना ही पड़ेगा। जैसे कि वे कहते कि प्रत्यक्ष प्रमाण है अविसम्वादी होनेसे अनुमान आदिक अप्रमाण हैं विसम्वादी होनेसे, इस तरह कहकर जब दूसरोंको समझा रहे हैं चार्वाक तो उन्होंने विवश होकर अनुमानको तो प्रमाण मान ही लिया। यह क्या अनुमानका रूप नहीं कि प्रत्यक्ष ही प्रमाण है अवि-सम्वादी होनसे। पक्ष साध्य साधन सभीका यहाँ स्थान है और अनुमान आदिक अप्र-माण हैं विसवम्वादी होनेसे, यहाँपर भी पक्ष साध्य साधन सभी अनुमानके अंग हैं। तो इस तरह समझाने वाले चार्वाकोंने विवश होकर बलपूर्वक अनुमानको ही मान लिया। फिर प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है यह सिद्धान्त उनका कैसे ठहर सकता है? प्रयो-जन यह है कि अनुमान प्रमाण माने बिना अपने सिद्धान्तका समर्थन भी नहीं किया जा सकता है। इससे अनुमानका उच्छेद नही तो यह प्रयोग निर्दोष सिद्ध है कि सभी पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। यों जिस प्रकार अविनाभाव नियम वाले अनुमेयत्व हेतुसे मीमांसकोंको सूक्ष्मादि पदार्थोंकी प्रत्यक्षता मान लेना अनिवार्य है उसी प्रकार चार्वाकोंको भी सर्वज्ञत्व सिद्धि मानना पड़ेगी।

जिन हेतुओंसे शंकाकार द्वारा सर्वज्ञ साधक हेतुकी बाधितविषयताका प्रतिपादन, उन्हीं हेतुओंसे सर्वज्ञत्वकी स्पष्ट सिद्धि—यहाँ मीमांसक शंका करते हैं कि यह अनुमेयत्व हेतु बाधित विषय है अर्थात् जो अनुमेयत्व हेतुसे सूक्ष्म आदि पदार्थोंके किसीके प्रत्यक्ष विषयपनेका अनुमान किया है वह अनुमान बाधित होता है। जैसे यह अनुमान प्रयोग है कि कोई भी पुरुष सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला नहीं हो सकता क्योंकि पदार्थोंकी प्रमेयता सत्ता औरवस्तुता होनेसे। जैसे कि हम लोग किसी भी सत् पदार्थोंका साक्षात्काम नहीं कर सक रहे क्योंकि ये सारे पदार्थ प्रमेय हैं। जो प्रमेय है, जो सत् है, जो वस्तु है हम लोगोंकी ही भाँति तो जाननेमें आयगा। इस अनुमानमें जो साधन कहा गया है वह असिद्ध और व्यभिचारी भी नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे उनमें अविसम्वाद पाया जाता है याने प्रत्यक्षसे हम प्रमेयको परखते हैं, तो वह स्थूल प्रमेय है, जो यहाँ सत् नजर आ रहे हैं, जो यहाँ पदार्थ दृष्टिसे आ रहे हैं ऐसे ही पदार्थ तो जाननेमें आ सकते हैं। समा-धानमें कहते हैं कि यह बात भी असंगत है। जो हेतु इसकी सर्वज्ञताके निषेधमें दिये हैं वे ही सब हेतु सर्वज्ञताकी सिद्धि करते हैं, जैसे तुम्हारा अनुमान है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष नहीं हो सकते प्रमेय होनेसे सत् होनेसे और वस्तु होनेसे : तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखिये यह ही हेतु यह सिद्ध करता है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्षभूत हैं। अनुमान प्रयोग है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं प्रमेय होनेसे, सत् होनेसे अथवा वस्तु होनेसे। स्फटिक आदिक पदार्थोंकी तरह। जैसे ये स्फटिक काँच आदिक जो कि बहुत देर निहारनेमें उसका आकार आदिक परखा जाता है तो यह प्रमेय है, सत् है, वस्तु है, सो यह किसीके प्रत्यक्ष है ना! यहाँ जो जो हेतु दिया गया है उन हेतुओंका अत्यन्त परोक्षभूत अनुमेय पदार्थोंके साथ व्यभिचार नहीं बताया जा सकता। याने कोई यह कहे कि जो प्रमेय है, सत् है, वस्तु है वह किसीके प्रत्यक्ष हो जाय, इसमें आपत्ति नहीं है। लेकिन जो अत्यन्त परोक्ष है, अनुमान मात्रसे गम्य है अथवा केवल आगमसे ही गम्य है, ऐसा पदार्थ प्रमेय तो है किन्तु किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं है। तो किसी प्रयोग में साधन तो पाया जाय और साध्य न पाया जाय इसीको तो व्यभिचार कहते हैं। तो यों ये तीन हेतु अनुमेय और अत्यन्त परोक्ष पदार्थोंके साथ व्यभिचार रखते हों सो बात नहीं है क्योंकि उन पदार्थोंको भी जो अनुमान मात्र गम्य हैं अथवा आगमगम्य हैं उन्हें भी पक्षमें सम्मिलित किया गया है। वे सब भी किसीके प्रत्यक्ष हैं प्रमेय होनेसे, सत् होनेसे और वस्तु होनेसे। सो इस तरह शंकाकारके द्वारा दिए गए ये तीन हेतु प्रमेयपना, सत्त्व और वस्तुत्व ये तो सर्वज्ञको सिद्ध करनेमें हेतुके लक्षणको पुष्ट कर रहे हैं। हेतु होना चाहिए ऐसा निर्दोष कि जिस में बाधक प्रमाण असम्भव हो। सो यह हेतु भी ऐसे ही अबाधित है कि इसमें अन्य कोई बाधक प्रमाण नहीं लगता। तब अनुमेयत्व जो हेतु है वह अबाधित विषय है। तो जहाँ ये प्रमेयत्व आदिक हेतु सर्वज्ञको ही सिद्ध करते हैं तब फिर कौन बुद्धिमान ऐसा होगा जो सर्वज्ञका प्रतिषेध कर सकता है या सर्वज्ञके सम्बन्धमें संशय रख सकता है।

सूक्ष्मादिक पदार्थोंकी प्रत्यक्षविषयताके प्रतिषेधकी असंगतता— और भी समझिये! सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार जिसने किया हो वही पुरुष तो सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारका अनुमान बना सकेगा क्योंकि अनुमान प्रयोगमें पक्षको प्रसिद्ध होना चाहिए। जहाँ यह अनुमान किया गया कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष नहीं हैं तो पक्ष हुए सूक्ष्म आदिक पदार्थ, तो यह पहिले अप्रसिद्ध हो तब तो इसमें साध्यपना सिद्ध किया जायगा और यदि सूक्ष्म आदिक अर्थ प्रसिद्ध हैं जो अनुमान प्रयोग कर रहा है उसको ये सूक्ष्म आदिक अर्थ विदित हैं, तब तो चलो उस ही में सर्वज्ञके अस्तित्वकी सिद्धि मान ली जायगी। सो यह बोल चाल करने वाला तो रागी है यह नहीं तो कोई सर्वज्ञ जरूर हो सकेगा साथ ही इस प्रसंगमें यह देखिये कि मीमांसकके द्वारा माने गए ये प्रमेयत्व आदिक हेतु सर्वज्ञके अस्तित्वको सिद्ध करनेमें अबाधित विषय हैं इन ही हेतुवोंसे सर्वज्ञका अस्तित्व सिद्ध हो रहा है तब फिर ये हेतु प्रकृत हेतुको अबाधित सिद्ध कर रहे हैं।

हेतुमें साध्यभावधर्म साध्याभावधर्म व उभयधर्मके तीन विकल्प उठा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर सर्वज्ञ साधक हेतुको बेकार सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकार मीमांसक कहते हैं कि यह तो बताओ कि इन हेतुवोंमें सर्वज्ञका अस्तित्व सिद्ध करनेमें आपने बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय बताया है तो यह हेतु और जो भी हेतु सर्वज्ञके अस्तित्वको सिद्ध करनेमें दिया जाय। जैसे एक यही हेतु कि सर्वज्ञ है क्योंकि सर्वज्ञकी सत्ताके बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय है, अर्थात् सर्वज्ञका सद्भाव निराकृत करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। तो यह हेतु क्या सर्वज्ञके सद्भावका धर्म है या सर्वज्ञके अभावका धर्म है ? या सर्वज्ञके भाव अभाव दोनोंका धर्म है ? याने यह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका स्वरूप रख रहा है या सर्वज्ञके अभावका स्वरूप रख रहा है या सर्वज्ञके भाव अभाव दोनोंका स्वरूप रख रहा है ! यदि कहो कि यह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका धर्मरूप है तो यह बिल्कुल असिद्ध है। सर्वज्ञकी तरह जैसे कि अभी सर्वज्ञका सद्भाव ही सिद्ध नहीं है इसी तरह सर्वज्ञके सद्भावका धर्मरूप यह हेतु भी सिद्ध नहीं है, क्योंकि यदि सिद्ध होता तो भला बतलावो कि सर्वज्ञके सद्भावके धर्मको हेतु मानते हुये कौन पुरुष सर्वज्ञ न मानेगा ? सर्वज्ञको जब नहीं माना जा रहा या सर्वज्ञमें विवाद हो रहा तो सर्वज्ञकी सिद्धि करनेमें जो भी हेतु दिया जायगा उसे सर्वज्ञके सद्भावका धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि कहो कि सर्वज्ञ साधक हेतु सर्वज्ञके अभावका धर्म है तब तो यह बिल्कुल विरुद्ध हो गया। अब तो इस हेतुसे सर्वज्ञके ही सिद्धि होगी क्योंकि हेतु तो है सर्वज्ञके अभावका धर्म। तो सर्वज्ञ साधक हेतुको सर्वज्ञके अभावका धर्म भी नहीं कह सकते। यदि कहो कि सर्वज्ञ साधक हेतु सर्वज्ञके सद्भाव और अभाव दोनोंका धर्म है तब तो वह हेतु व्यभिचारी हो गया, क्योंकि उस हेतुकी सर्वज्ञके सद्भावमें भी वृत्ति बन गई और सर्वज्ञके अभावमें भी वृत्ति बन गई याने इस हेतुसे अब सर्वज्ञका सद्भाव भी सिद्ध हो सकेगा और सर्वज्ञका अभाव भी सिद्ध हो सकेगा क्योंकि सर्वज्ञ साधक हेतुमें सर्वज्ञके सद्भाव और अभाव दोनोंका धर्म मान लिया।

हेतुमें साध्यभावाभावोभयधर्मत्वके विकल्प उठाकर सर्वज्ञसद्भावोच्छेद बतानेवाली शंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि देखो! सबसे अधिक हास्यास्पद बात तो यहाँ यह है कि जिसकी सत्ता सिद्ध नहीं है ऐसे धर्मीमें जैसे कि इस प्रसंगमें सर्वज्ञका सद्भाव असिद्ध है तो उस सर्वज्ञमें भाव अभाव अथवा उभय धर्मोंकी असिद्धता विरुद्धता अनैकांतिकता होनेसे सर्वज्ञके सम्बन्धमें सत्वकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? ऐसा बोलने वाले ये मीमांसक इस समय धर्मीके स्वभावको नहीं पहिचान रहे हैं। धर्मी यहाँपर है सर्वज्ञ। उसमें सिद्ध किया जा रहा है अस्तित्व। उसकी सिद्धि करनेके लिए हेतुका प्रयोग है। तो जो इस प्रकार साध्यके सद्भावका धर्म है या अभावका धर्म है, या दोनोंका धर्म है ? यों विकल्प करके बातको उड़ा रहा है। वह जब किसी अन्य मतका निराकरण करनेके लिए या अपने किसी सिद्धान्तका समर्थन करनेके लिये कोई अनुमान बनाता हो तो उससे भी तथाकथित तीन विकल्पोंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूछा जा सकता है। जैसे कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमें कृतकपनाका हेतु दिया कि जो जो कृतक होते हैं वे सब अनित्य होते हैं। शब्द कृतक हैं इसलिए वे भी अनित्य हैं। तो इस अनुमानमें तथाकथित तीनों विकल्प क्यों नहीं किये जा सकते हैं? उनसे पूछा जा सकता है कि तुम्हारा कृतकत्व हेतु क्या अनित्य शब्दका धर्म है या नित्य शब्दका धर्म है या अनित्य और नित्य दोनों शब्दोंका धर्म है? ऐसे तीन विकल्पों द्वारा जब विचार किया जायगा तो पहिलेकी तरह यहाँपर भी यह अनुमान खण्डित हो जायगा। जब यह अनुमान बनाया गया कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे, तो इसमें जो तीन विकल्प पूछे गए हैं कि कृतकत्व हेतु अनित्य शब्दका धर्म है? अथवा उभय शब्द का धर्म है? इनमेंसे यदि प्रथम विकल्प कहोगे कि कृतकत्व हेतु अनित्य शब्दका धर्म है तो यह बात असिद्ध है। अब इस शब्दको ही तो अनित्य सिद्ध करनेके लिए अनुमान कहा जा रहा है और हेतुको कह रहे हो अभीसे कि यह अनित्य शब्दका धर्म है, तो जिस तरह शब्दमें अनित्यत्व असिद्ध है उसी प्रकार कृतकृत्वमें अनित्य शब्दका धर्मपना असिद्ध है, क्योंकि यदि यह बात प्रकट होती है कि कृतकत्व अनित्य शब्दका धर्म है तो ऐसा फिर कौन पुरुष होगा जो अनित्य शब्दके धर्मरूप कृतकत्व हेतुको मानता हुआ शब्दको तुरन्त व हेतु प्रयोगसे पहिले ही अनित्य न मानले। सो उसे तो अनित्य शब्दको ही एकदम मान लेना चाहिये जब कृतकत्व हेतुको अनित्य शब्दका धर्म मान लिया तो शब्द अनित्य है तो यह तो पहिले ही मान लिया गया। फिर अनुमान की आवश्यकता ही क्या थी? तो अनित्य शब्दका धर्मरूप कृतकत्व असिद्ध है। यदि कहो कि कृतकत्व हेतु नित्य शब्दका धर्म है तब तो यह हेतु विरुद्ध है क्योंकि इस हेतुके द्वारा शब्दका नित्यपना ही सिद्ध होगा। अनुमान में साध्य तो बनाया जा रहा है कि शब्द अनित्य है और हेतुके द्वारा सिद्ध यह हो रहा है कि शब्द नित्य है क्योंकि कृतकत्व हेतुको नित्य शब्दका धर्म मान लिया। यदि कहो कि कृतकत्व हेतु उभय धर्म है, नित्य शब्दका धर्म और अनित्य शब्दका धर्म दोनों ही रूप है, तब तो यह हेतु व्यभिचारी हो गया, क्योंकि अब यह कृतकत्व नित्य शब्दमें भी रहने लगा और अनित्य शब्दमें भी रहता है। तो सपक्ष और विपक्ष दोनोंमें हेतुके रहनेसे यह हेतु व्यभिचारी अर्थात् अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो गया है।

हेतुमें साध्यभावाभावोभयधर्मत्वके विकल्पोंकी स्वच्छन्दतासे सकलानुमानोच्छेदका प्रसंग—देखिये! यदि साध्यभावाभाव धर्मके विकल्प करने लगें तो समस्त अनुमानोंका उच्छेद हो जायगा। कुछ भी साध्य बनायें और उसका साधन बनाये तो यहाँ यह पूछा जा सकता कि इस साध्यका धर्म है यह हेतु या साध्यसे विपरीतका धर्म है या दोनोंका धर्म है? सारे अनुमानोंमें भी ऐसे विकल्प लगाये जा सकते हैं। जैसे अनुमान बनाया कि पर्वत अग्निमान है धूमवान होनेसे। तो वहाँ कोई यह पूछ सकता है कि यह धूम क्या अग्निमान पर्वतका धर्म है या अनग्निमानका धर्म है या दोनोंका धर्म है? अग्निमानका धर्म है तब तो असिद्ध है, अनग्निमानका धर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है तब विरुद्ध है और दोनोंका धर्म है तो हेतु व्यभिचारी है। इस तरह सभी अनुमानोंका उच्छेद हो जायगा। तब यह निष्कर्ष निकला कि विवादापन्न अनित्य शब्दका धर्म माननेपर याने कार्यत्व हेतु विनाशशील शब्दका धर्म है ऐसा माननेसे बाधकप्रमाण का असम्भवपना होनेके कारण भी संदिग्ध है सद्भाव जिसका ऐसा यह धर्म बना। अर्थात् शब्दमें अनित्यपना ही तो साध्य बनाया जा रहा और वही संदिग्ध बन गया कि कृतकत्व धर्म क्या अनित्य शब्दका धर्म है या नित्य शब्दका धर्म है? तब यह अनुमान सही न रहा और इस तरहसे फिर सारे अनुमान मिथ्या हो जायेंगे।

शङ्काकार द्वारा शब्दधर्मीकी प्रसिद्धताके कारण अनित्यत्व साध्यमें कृतकत्वादि हेतुकी युक्तताका कथन तथा सर्वज्ञसत्ताकी असिद्धके कारण सर्वज्ञत्व साध्यमें हेतुधर्मताकी असिद्धिका कथन—यहाँ मीमांसक कहते हैं कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमें जो कृतकत्व हेतु दिया गया है उस अनुमानके सम्बन्धमें तथ्य यह है कि शब्द जो धर्मी है, जिसमें कि अनित्यपना साध्य बना रहे हैं वह शब्द धर्मी शब्दपनेसे तो प्रसिद्ध सत्ता वाला है याने शब्दकी सिद्धि शब्दत्वरूपसे तो प्रसिद्ध ही है। अब उसमें सदेह हो रहा है कि अनित्य है या नित्य है? उनमें विवाद उठा है तो वहाँ अनित्य साध्य जिसको बनाया जा रहा है ऐसे शब्दका धर्म है कृतकत्व। उसमें कौनसी अयुक्त बात है? याने शब्दत्वरूपसे तो शब्द प्रसिद्ध है और अनित्य आदिकके रूपसे संदिग्ध है तो अनित्यत्व साध्य जिसका बनाया जा रहा है ऐसे शब्दका धर्म है यह कृतकत्व, फिर अनुमानमें कोई बाधा न आयगी, किन्तु सर्वज्ञ धर्मीके सम्बन्धमें यह उत्तर दे नहीं सकते, क्योंकि सर्वज्ञकी सत्ता तो सर्वथा ही असिद्ध है। अब असंभवद् बाधकत्व हेतुको असिद्ध सत्ता वाले सर्वज्ञका अथवा विवादापन्न सद्भावसद्धर्मक सर्वज्ञ का याने विवादापन्न सद्भाव साध्य वाले सर्वज्ञका धर्म बताया जाय, यह कैसे युक्त हो सकता है? तात्पर्य यहाँ यह स्पष्ट है कि शब्द तो शब्दत्व रूपसे प्रसिद्ध है अब उसमें अनित्यपना सिद्ध किया जा रहा है। तो विवाद तो अनित्यपनेका है कि शब्दका? तो यहाँ धर्मी प्रसिद्ध है लेकिन सर्वज्ञकी सत्ता तो सिद्ध ही नहीं है। तो असिद्ध सत्ता वाले सर्वज्ञका धर्म कोई हेतु कैसे बन सकेगा? क्योंकि न्यायशास्त्रका यह वचन है कि धर्मी प्रसिद्ध होता है और उस प्रसिद्ध धर्मीमें अप्रसिद्ध साध्यको सिद्ध किया जाता है तब वह प्रतिज्ञा कहलाती है। लेकिन यहाँ तो सर्वज्ञ अप्रसिद्ध ही है। जब पक्ष ही सिद्ध नहीं है तो उसमें कुछ भी सिद्ध करना अयुक्त बात है।

शङ्काकार द्वारा शब्दानित्यत्व हेतु और सर्वज्ञसत्तासाधकसाधनमें प्रदर्शित विषयताकी आरेकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि कह तो लिया यह सब कि शब्द हमारा प्रसिद्ध है और फिर उस शब्दमें हम अनित्यपना सिद्ध करना चाहते हैं और उस हीके लिए हमारा कृतकत्व हेतु है, लेकिन वे यह तो बतायें कि जब हेतुके द्वारा साध्यको सिद्ध करेंगे तो उसकी व्याप्ति तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनानी ही होगी। यह तो कहना ही होगा कि जो जो कृतक होते हैं वे अनित्य होते हैं और सारे शब्द कृतक हैं अतएव अनित्य हैं। तो समस्त देश, समस्त कालमें होने वाले शब्द तो धर्मी बने ना ! तो उन शब्दोंको कौन जान रहा है ? सारे शब्द कहाँ प्रसिद्ध हैं ? फिर पक्षका लक्षण यहाँ घटित नहीं हो सकता, क्योंकि समस्त देश, समस्त कालमें होने वाले शब्द अप्रसिद्ध हैं, उनकी सिद्धि कहाँ ? यदि कहो कि दूसरों ने माना है सो दूसरोंके माननेके अनुसार समस्त शब्द प्रसिद्ध हो जायेंगे और तब प्रसिद्धोधर्मी इस नीतिमें कोई बाधा न आयगी। तो समाधानमें कहते हैं कि फिर तो इस तरह सर्वज्ञवादियोंके माननेके कारण सर्वज्ञ भी प्रसिद्ध हो जायगा और जब सर्वज्ञ प्रसिद्ध बन गया तो प्रसिद्धोधर्मी इस न्यायका यहां भी उल्लंघन न हो सका हेतुरूप धर्मकी तरह। जैसे साधन प्रसिद्ध है और साधनके द्वारा सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध किया जा रहा है तो परके आगमसे जब सकल शब्दरूप धर्मीकी प्रसिद्धता मान रहे हो तो सर्वज्ञवादीके आगमसे सर्वज्ञकी भी प्रसिद्धि क्यों न मानी जावेगी याने सर्वज्ञवादियोंके आगमसे सर्वज्ञकी भी प्रसिद्धता मान लीजिए। उसमें फिर कोई आपत्ति क्यों देते हो? यदि कहो कि नहीं, हम प्रतिवादी मीमांसकोंके प्रति जो समर्थित हुआ हो वही हेतुधर्म साध्यको सिद्ध कर सकता है। तब फिर शब्दधर्मी भी जैनोंके प्रति समर्थित होकर ही अनुमानका अङ्ग बने। दोनोंके प्रयोगमें कोई विशेषताकी बात नहीं है। यहां मूल प्रसङ्ग यह है कि जब सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध करनेमें कोई हेतु दिया गया तो उसमें शंकाकारने ये तीन विकल्प रखकर कि वह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका धर्म है या सर्वज्ञके अभावका धर्म है या उभय धर्म है ? निराकरण किया है तो इस पद्धतिसे निराकरण किए जानेकी बात सारे अनुमानमें लागू हो जाती है फिर स्वयं मीमांसक आदिक अपने शासनकी सिद्धिके लिए और परशासनके निराकरणके लिए जो भी अनुमान दें उनमें ये तीन विकल्प उठ सकते हैं कि वह हेतु साध्यका धर्म है या साध्यसे विपरीत धर्म है या दोनोंका धर्म है। इस प्रकार विकल्प उठाकर तो कोई अनुमान प्रमाण ही नहीं बन सकता है। इससे यह विकल्प युक्त नहीं है। तब सीधे और स्पष्टरूपसे हेतुके साधन और बाधापर ही विचार करके कुछ बोलना चाहिए।

सर्वज्ञसद्भाव साधक अनुमानमें धर्मीकी कथंचित् प्रसिद्ध सत्ताकताका वर्णन—यहाँ स्याद्वादी मीमांसकोंसे पूछते हैं कि प्रसिद्धोधर्मी इस सूत्र द्वारा जो यह कहा गया है कि धर्मी प्रसिद्ध होता है तो इसका अर्थ क्या है ? सर्वथा प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी है क्या यह अर्थ है अथवा कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी है यह अर्थ है ? यदि कहो कि सर्वथा प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी होता है ऐसा अर्थ अभीष्ट है तब तो आपके अनुमानमें शब्दादिक भी धर्मी न रह सकेंगे क्योंकि शब्दादिक सभी धर्मी सर्वथा प्रसिद्ध नहीं हैं। साध्य धर्मकी उपाधिकी सत्ता सहित रूपसे तो धर्मी अप्रसिद्ध ही है। यदि साध्य विशिष्टरूपसे धर्मी प्रसिद्ध होता तो उसका अनुमान बनानेकी भी आवश्यकता न होती। तो साध्यविशिष्टरूपसे धर्मीकी अप्रसिद्धि माननी ही होगी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और तब सर्वथा प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्म न रह सका। यदि कहो कि कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाले शब्दादिक धर्मी होते हैं याने शब्द शब्दत्वरूपसे प्रसिद्ध हैं अतएव कथंचित् प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार सभी पक्ष याने धर्मी अपने आपके स्वरूपसे प्रसिद्ध ही होते हैं अतएव प्रसिद्धोधर्मीका अर्थ यह है कि जो कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला है वह धर्मी होता है और इस प्रकार किसी भी पक्षमें धर्मीपनेका विरोध नहीं आता। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि कथंचित् सत्ता वाला धर्मी है यह स्वीकार करते हो और शब्दादिक पक्षोंमें धर्मीपना निर्बाध प्रसिद्ध कहते हो तो इसी तरह सर्वज्ञ भी धर्मी कैसे न हो जायगा ? क्योंकि सर्वज्ञ सिद्ध करनेके सम्बन्धमें जो पक्ष बताया है वह है कोई आत्मा, वहां किसी आत्माको सर्वज्ञ बतानेकी बात कही गई है। कोई आत्मा सर्वज्ञ है, यह प्रतिज्ञा है। तो इसमें आत्मत्व आदिक विशेषणोंसे जिसकी सत्ता प्रसिद्ध है ऐसा तो यहाँ पक्ष कहा गया है अर्थात् कोई आत्मा आत्मत्वरूपसे तो प्रसिद्ध ही है इस संबंधमें वादी और प्रतिवादी दोनोंको ही विवाद नहीं है कि आत्मा नामक पदार्थ है। हाँ, उसमें सर्वज्ञत्वकी उपाधिकी सत्ता अप्रसिद्ध है। तो इस अनुमानमें पक्ष कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला हो गया ना ! कोई आत्मा जो कि आत्मत्व आदिक विशेषणोंकी सत्तासे प्रसिद्ध है किन्तु सर्वज्ञत्वकी उपाधिसे अप्रसिद्ध है। उस ही को धर्मी माना है तो वह भी सर्वथा अप्रसिद्ध सत्ता वाला न रहा। कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी हो गया है। तब सर्वज्ञ सिद्धिके अनुमानमें पक्ष कथंचित् प्रसिद्ध ही रहा।

सर्वत्र सद्भावसाधक अनुमानमें "कश्चित् आत्मा" धर्मीके व सूक्ष्मान्तरित दूरार्थके कथंचित्प्रसिद्धसत्ताकत्वका वर्णन--देखिये ! स्याद्वादी जन सर्वज्ञ सिद्धिके अनुमानके पक्षका याने धर्मीका प्रयोग यों करते हैं कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है अन्य प्रकारसे प्रयोग न समझना। जब यह कह भी दिया जाय कि कोई सर्वज्ञ है तो उसका भी भाव यही लेना कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है या इस प्रकारसे भी कहा जाय कि सर्वज्ञ है क्योंकि उसमें बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय है। तो ऐसा कहनेपर भी अर्थ उसका यह लेना कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है। केवल सर्वज्ञ है ऐसा प्रयोग शोभा नहीं देता है, ऐसी ही तो शंका है। तो उसमें 'कोई आत्मा' इतने शब्दका अध्याहार कर लेना चाहिए अर्थात् 'कोई आत्मा' इतना अपने आप ऊपरसे शब्द जोड़ लेना चाहिए तब प्रयोग यह बना कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है क्योंकि सर्वज्ञके सद्भावमें बाधा करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार अब कोई दार्शनिक मीमांसक अथवा सौगत आदिक जो इस प्रकार दोषको प्रकट कर रहे थे कि वह हेतु साध्यके भावका धर्म है या साध्यके अभावका धर्म है अथवा दोनोंका धर्म है अथवा पक्ष अप्रसिद्ध है, उसकी सत्ता ही प्रसिद्ध नहीं है आदिक रूपसे जो दूषण दे रहे थे उन्होंने धर्मीके स्वभावको जाना ही न था। बात यह है कि सर्वज्ञ सिद्धिके अनुमानमें केवल सर्वज्ञको धर्मीरूपसे नहीं कहा गया है, किन्तु कोई आत्मा सर्वज्ञ है, इस प्रकारसे कहा गया है और इस प्रकृत आत्मामें भी जिसको कारिका द्वारा सिद्ध किया जा रहा है उसमें भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वज्ञको धर्मी रूपसे नहीं कहा गया है। सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे, इस अनुमानमें सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थोंको ही तो धर्मी कहा जा रहा है और यह सब प्रसिद्ध ही है। तब इस अनुमानमें भी जो धर्मी हैं सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थ वे सब प्रसिद्ध सत्ता वाले हैं। ये परमाणु आदिक प्रमाणसे सिद्ध हैं, यह बात आगेकी कारिकामें बताई जायगी। जब "बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं" आदिका कारिका कहीं जायगी तो ये परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ वस्तुतः हैं, ऐसी बात वहाँ सिद्ध की जायगी। और इस मौकेपर इतना तो समझ ही लीजिए कि परमाणु आदिकके सम्बन्धमें वादी और प्रतिवादी दोनोंका ही विवाद नहीं है। मीमांसक सौगत अथवा अन्य भी दार्शनिक परमाणुको किसी न किसी रूपमें मानते ही हैं। और जैन शासनमें तो परमाणुको निश्चयतः पुद्गल द्रव्य माना ही गया है। तो ये सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ प्रमाणसिद्ध हैं और प्रसिद्ध होनेसे इनको धर्मी बताया जाना बिल्कुल युक्तिसंगत है।

सर्वज्ञसाधनाके प्रसंगमें प्रत्यक्षके बारेमें इन्द्रियप्रत्यक्ष या अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष इन दो विकल्पोंमें सूक्ष्मादिक पदार्थोंके प्रत्यक्षविषयत्वके निराकरणकी मीमांसकोंकी शंका—अब यहां मीमांसक शंका करते हैं कि यह शंका सर्वज्ञवादियों की सबके प्रति सम्भव है और इस मौकेपर नैयायिकोंके प्रति प्रधानतया कहा जा रहा है. मीमांसक शंका करते हैं कि यह बतलावो कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ क्या इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा किसीके प्रत्यक्ष हैं, यह साध्य बताया जा रहा है अथवा ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ अतीन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा किसीके प्रत्यक्ष हैं. यह साध्य बताया जा रहा है। यदि कहो कि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा किसीके प्रत्यक्ष हैं, यह साध्य बताया जा रहा तो ऐसा माननेपर यह प्रयोग अनुमान विरुद्ध हो जाता है अर्थात् इसके अनुमानका निराकरण हो जाता है। और जब यह पक्ष प्रमाणबाधित हो गया फिर इसमें हेतुका दिखाना यह कालात्ययापदिष्ट है, यह भी हेतुका प्रधान दोष है। तो अब देखिये कि उस अनुमानमें कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके इंद्रिय प्रत्यक्ष द्वारा प्रत्यक्ष हैं, कैसे अनुमानसे बाधा आती है। सो सुनो! सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके भी इंद्रियज्ञानके विषय नहीं होते, क्योंकि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ सर्वथा इन्द्रियसंबंधसे रहित हैं। इन पदार्थोंमें इंद्रियका संबंध ही नहीं हो सकता है, फिर ये किसीके भी इंद्रियज्ञानके विषय कैसे हो सकते हैं? जो किसीके भी इंद्रियज्ञानके विषय होते हैं वे सर्वथा इंद्रिय सम्बन्धसे रहित देखे गये हैं। यहाँ इस अनुमानकी व्यतिरेक व्याप्ति बताई जा रही है। इसमें साध्य यह है कि किसीके इंद्रियज्ञानके विषय नहीं हैं और हेतु है सर्वथा इन्द्रिय सम्बन्धसे रहित होनेसे। तो साध्यके अभावमें साधनका अभाव बताना व्यतिरेक व्याप्तिका प्रयोजन है सो बताया जारहा है कि देख लीजिए! दुनिया में जो जो पदार्थ किसीके इन्द्रियज्ञानके विषयभूत होते हैं वे किसी भी प्रकार इंद्रियके साथ सम्बन्धसे रहित नहीं होते हैं। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये किसीके इंद्रियज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के विषय हैं, अतएव ये इन्द्रिय सम्बंधरहित नही हैं। जब भी कोई घट आदिक पदार्थों को जानता है तब या तो चक्षुसे देखकर रूपकी प्रधानतासे जानता है या हाथसे छूकर स्पर्शकी प्रधानतासे जानता है या नाकसे सूँघकर गंधकी प्रधानतासे जानता है या उस को लकड़ी द्वारा ठोंककर कि यह कच्चा है पक्का है, किसी भी बातको स्रोत्र द्वारा शब्द की प्रधानतासे जानता है या कोई नये घड़ेमें थोड़ा पानी रखा हो और उस पानीको पीता हो तब मिट्टी जैसे थोड़े स्वादको लेता है या कोई घड़ेको ही जिह्वासे स्वादे तो वहाँ रसना इन्द्रियके द्वारा वह रसकी प्रधानतासे जानता है, मतलब यह है कि घटपट आदिकको जो भी पुरुष इन्द्रिय ज्ञान द्वारा जान रहे हैं उनकी इन्द्रियका घट आदिकसे सम्बंध बराबर है। अब यहाँ देखिये कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ तो सर्वथा इन्द्रिय सम्बंध से रहित हैं, तब ये किसीके इन्द्रिय ज्ञानके विषय नहीं हो सकते। ये उपनय और निगमन कहे गये हैं। तो इस तरह केवल व्यतिरेकी इस अनुमान द्वारा नैयायिकोंका वह पक्ष बाधित है।

परमाण्वादिकके इन्द्रियप्रत्यक्षत्वके निराकरणके प्रसङ्गका विवरण— यहाँ इतनी बात जान लेनी चाहिए कि नैयायिक किसीको सर्वज्ञ तो मानते हैं पर अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा सर्वज्ञ नहीं मानते। उनका मंतव्य है कि समाधि विशेषके कारण उन योगियोंके, उन सर्वज्ञोंके इन्द्रियमें इतनी विशेषता हो जाती है कि वे इंद्रिय के द्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान कर लेते हैं। सो उनके विरुद्ध यह कहा जा रहा है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ ये सर्वथा इंन्द्रिय सम्बन्धसे रहित हैं, ये विप्रकर्षी पदार्थ इन्द्रिय सम्बन्धसे रहित हैं। यह बात असिद्ध नहीं है क्योंकि परमाणु पुण्य पाप आदिकके साथ साक्षात् इंद्रियका सम्बन्ध नहीं बनता तो इन्द्रिय सम्बन्धसे जब यह सर्वथा रहित है तो ये परमाणु आदिक पदार्थ इन्द्रियज्ञानके विषय बन जायें यह कभी भी सम्भव नहीं है। इसका साधन यह प्रयोग है—किसीकी भी इंद्रिय साक्षात् परमाणु आदिकोंसे सम्बन्धित नहीं होती है इन्द्रिय होनेसे हम लोगोंकी तरह। जैसे हम लोगोंकी इंद्रियां इन्द्रिय ही तो हैं, इस कारण हम लोगोंकी इन्द्रियोंका परमाणु आदिकोंसे सम्बन्धित नहीं हो सकती हैं, ऐसे ही किसीकी भी इंद्रिय हो, इन्द्रिय ही तो है। इस कारण किसीकी भी इंद्रियका परमाणु आदिकसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता। जब इन्द्रियोंका सूक्ष्मादि पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नहीं है तो वे पदार्थ किसीके भी इंद्रिय प्रत्यक्ष विषय नहीं हो सकते।

योगजधर्मानुगृहीत होकर परमाण्वादिकमें इन्द्रियवृत्ति होनेके प्रस्ताव पर विचार—यहाँ नैयायिक कहते हैं कि योगज धर्मसे अनुगृहीत हुई इन्द्रियाँ सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके साथ साक्षात् सम्बन्धित हो जाती हैं अर्थात् जब किसी योगी साधुके विशिष्ट तपश्चरण समाधि परिणाम बनता है तो उस समाधिके बलसे ये इन्द्रियाँ विशिष्ट अतिशय पा जाती हैं और तब योगज धर्मसे अनुगृहीत इन्द्रियाँ परमाणु आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंके साथ सम्बन्धित हो जाती है अतएव इन्द्रियोंके द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो जाना असिद्ध नहीं है। इसपर मीमांसक पूछते हैं कि इन्द्रियका योगज धर्मानुग्रह होनेका अर्थ क्या है ? क्या इस योगज धर्मकी कृपाका यह अर्थ है कि अपनी बुद्धिमें प्रवृत्ति करने वाली इन्द्रियमें कोई अतिशय रख दिया जाय, यदि ऐसा आपका विकल्प हो तो यह बात असम्भव ही है, क्योंकि परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें इन्द्रियाँ स्वयं ही प्रवृत्ति नहीं किया करती। इन्द्रियका ऐसा विषय ही नहीं है कि इन्द्रियाँ परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें, राम रावण आदिक अन्तरित पदार्थोंमें में स्वर्ग नरक आदिक दूरवर्ती पदार्थोंमें प्रवृत्ति करें विप्रकर्षी पदार्थोंमें इन्द्रियाँ प्रवृत्ति नहीं कर सकतीं। और, यदि इन परमाणु आदिक पदार्थोंमें ये इन्द्रियां प्रवृत्ति करने लगें तो फिर योगज धर्मके अनुग्रहकी भी आवश्यकता क्या है ? फिर तो योगज धर्मका अनुग्रह व्यर्थ हो जायगा। यदि कहो कि योगज धर्मके अनुग्रहसे ही इन्द्रिय परमाणु आदिमें प्रवृत्ति करती हैं तो ऐसा माननेपर इतरेतराश्रय दोषका प्रसंग आता है। वह कैसे कि इन्द्रियमें योगज धर्मका अनुग्रह पड़ जाय तब तो इन्द्रियकी परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति बने तब योगज धर्मका अनुग्रह बनेगा, इस तरह योगज धर्मके अनुग्रहसे ही इन्द्रियकी परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति माननेपर इतरेतराश्रय दोष होता है।

परमाण्वादिकमें इन्द्रियवृत्तिके लिये योगजधर्मकी सहकारितापर विचार—नैयायिक कहते हैं कि परमाणु आदिकमें इन्द्रियाँ प्रवृत्ति करें इस कार्यमें सहकारीपना होना इसका ही अर्थ है योगज धर्मका अनुग्रह। अर्थात् इन्द्रियाँ तो योगज धर्मके अनुग्रहसे परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति करती हैं, उसमें योगज धर्मका अनुग्रह सहकारी होता है। इस शंका के उत्तरमें मीमाँसक कहते हैं कि यह बात अत्यन्त अयुक्त है क्योंकि अपने विषयका उल्लंघन करते हुए तो इंद्रियमें योगज धर्मका अनुग्रह सम्भव नहीं हो सकता है अर्थात् ऐसा योगज धर्मका अनुग्रह नहीं है कि जिससे ये इन्द्रियाँ परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति कर जायें, अन्यथा अर्थात् यदि योगज धर्मका अनुग्रह यही मान लिया जाय कि इन्द्रियां अपने विषयका उल्लंघन करके सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको भी जान लेती हैं तब तो किसी भी एक इन्द्रियकी समस्त रस आदिक विषयोंमें प्रवृत्ति हो जानेमें भी योगज धर्मका अनुग्रह बन बैठेगा। जब इंद्रियाँ अपने विषयका उल्लंघन करके परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थों में जुट गईं, ऐसी योगज धर्मके अनुग्रहकी महिमा बनी तब तो जैसे चक्षु इन्द्रियका विषय है रूप, लेकिन योगज धर्मका अनुग्रह यह कर बैठें कि चक्षु इन्द्रिय ही रूपको जाने और साथ ही रस, गंध, स्पर्श आदिक सबको जान ले, ऐसा अनुग्रहका प्रसंग आ जायगा।

एक इन्द्रियकी अप्रतिनियत शेष विषयोंमें प्रवृत्ति न होनेकी तरह परमाण्वादिक विप्रकर्षी पदार्थोंमें भी प्रवृत्तिका अभाव—नैयायिक कहते हैं कि एक इन्द्रियकी समस्त रस आदिकमें प्रवृत्ति बननेकी बात यों युक्त नहीं है कि यह बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। हम स्पष्ट समझ रहे हैं कि चक्षुइन्द्रिय रूपको ही जान सकती है, रस आदिकमें चक्षुइन्द्रियकी प्रवृत्ति नहीं है। जब हम ऐसा प्रत्यक्षसे ही स्पष्ट समझ रहे हैं तब वहाँ अन्य कल्पना नहीं की जा सकती है। उत्तरमें मीमांसक कहते हैं कि बस यही बात तो परमाणु आदिकमें समान रूपसे है। परमाण्वादिक सूक्ष्म पदार्थमें भी इन्द्रियकी प्रवृत्तिका प्रत्यक्ष विरोध है, यह घटित हो जाता है। जैसे कि चक्षुइन्द्रिय योगज धर्मके अनुग्रहसे भी रस आदिकमें प्रवृत्ति नहीं कर सकती इसी प्रकार योगज धर्मका अनुग्रह होनेपर भी इन्द्रियाँ परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें भूत भविष्यकी घटनाओंमें अथवा दूरवर्ती द्वीप पर्वत आदिकमें प्रवृत्ति नहीं कर सकती। इन्द्रियका, अपने विषयका उल्लंघन नहीं कर सकना दोनों जगह समान है। जैसे कि चक्षु आदिक इन्द्रियां प्रतिनियत रूपादिकका विषय करने वाली ही देखी गई हैं। चक्षु रूपका विषय करते हैं, कर्ण शब्दका विषय करते हैं, घ्राण गंधका विषय करती है, रसना रसका विषय करती है स्पर्शनेद्रिय स्पर्शकाविषय करती है इनसब इन्द्रियोंका प्रतिनियत विषय है और उनमेंसे कोई भी इन्द्रिय अपने प्रतिनियत विषयके सिवाय अन्य समस्त रूप आदिक विषयोंका ग्रहण नहीं कर सकती है। ऐसा ही सब पाया और देखा जा रहा है। ये बहुत महान परिमाणको लिए पृथ्वी आदिक द्रव्य और उनमें समवेत रहने वाला अर्थात् समवाय सम्बन्धसे रहने वाले ये रूपादिक चक्षु आदिक इन्द्रियके विषय रूपसे प्रसिद्ध हैं. अर्थात् जो स्थूल चीज है वह ही इन्द्रियके द्वारा गोचर है यह बात प्रसिद्ध है, लेकिन परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ इन्द्रियके द्वारा विषयभूत नहीं है, देखिये समाधि विशेषसे जो योगियोंके धर्म उत्पन्न हुआ है उसके माहात्म्यसे दृष्टिका उल्लंघन करके चक्षु आदिक इन्द्रियाँ परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें प्रवृत्ति कर जाँय और रस आदिक अनेक विषयोंमें एक इन्द्रिय प्रवृत्ति न कर सके ऐसी व्यवस्था बनाने वाला कोई कारण नहीं, सिवाय एक जड़ताके। हठ करके अज्ञानसे ऐसी व्यवस्था कोई बनाये तो बनाये, पर वास्तवमें ऐसी व्यवस्था बनानेका कोई कारण नहीं है। इन्द्रिय कहते ही उसे हैं जो अपने-अपने विषयके प्रति प्रतिनियत हो। फिर योगज धर्म के अनुग्रहसे ये इन्द्रियाँ सूक्ष्म विषयमें न लग सकें, यह योगज धर्मके अनुग्रहकी महिमा न बन सके, ऐसा कोई विवेक कर सकने वाला कारण नहीं है।

इन्द्रियोंका परमाण्वादिक सूक्ष्म पदार्थोंमें परम्परया भी सम्बन्धके अभावका कथन— अब परम्परा सम्बन्धकी बात सुनिये ! जब इन्द्रियका परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंके साथ संयोग न बन सका, कोई सम्बन्ध बन ही न सका तब यह कहना कि साक्षात् परमाणुओंसे इन्द्रियका सम्बन्ध नहीं है तो न सही, किन्तु परम्परासे परमाणु रूप आदिकमें इन्द्रियका सम्बन्ध बन जायगा, सो यह भी निराकृत हो जाता है। जब संयोगका ही अभाव है तो संयुक्त समवाय या संयुक्त समवेत समवाय आदिक कोई भी सम्बन्ध कैसे बन सकेगा ? यहाँ नैयायिकने यह बात रखी थी कि इन इन्द्रियोंका परमाणु आदिकसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं बन पाता तो परमाणुके रूपके साथ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रियका संयुक्त समवाय सम्बन्ध बन जायगा अर्थात् परमाणुमें समवाय सम्बन्धसे रहता है रूप सो उस रूपके साथ इन्द्रियका संयुक्त समवाय सम्बन्ध बन जायगा। सो यह कल्पना करना असंगत है। इसका कारण यह है कि समवायके आधारका जब संयोग ही नहीं बन रहा है, तो संयोग इंद्रियका जिसमें होना चाहिए उस पदार्थमें जो कुछ रूपादिक रह रहा है उससे सम्बन्ध कैसे बन सकेगा? साथ ही यह भी बात विचारणीय है कि कर्ण इंद्रियमें समस्त शब्दोंका समवाय असम्भव होनेसे शब्दपनेरूपसे समवेत समवाय असम्भव है। इसी प्रकार इंद्रियोंका परमाण्वादिकसे संयोग न होनेसे इंद्रियोंका रूपादिकके साथ संयुक्त समवायादि सम्बन्ध असम्भव है। किसी प्रकार स्पष्टरूपसे भी अन्य इन्द्रियमें रूपादिकका संयुक्त समवाय मान लिया जाता है, किन्तु इसी तरह स्पष्टरूपसे श्रोत्र इंन्द्रियके साथ शब्दके शब्दत्वका साथ समवाय सम्बन्ध बन ही नहीं सकता। इस कारण यह बात निर्बाध सिद्ध है कि इन्द्रियका परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंके साथ सम्बन्ध हो ही नहीं सकता और इसी कारण ये परमाणु आदिक किसीके भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

मानसिक ज्ञानसे भी सर्वज्ञान हो जानेकी सिद्धिका अभाव—यहाँ नैयायिक कहते हैं कि एक मन ही योगज धर्मसे अनुगृहीत होकर एक साथ समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय कर लेता है अर्थात् योगियोंके योग समाधिके बलसे अन्त:करणमें ऐसा अतिशय प्रकट होता है कि उनका मन ही एक साथ समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको जान लेता है। इसपर मीमांसक उत्तर देते हैं कि योगज धर्मसे अनुगृहीत होकर मनके द्वारा समस्त पदार्थोंके जान लेनेपर भी प्रत्यक्षका उल्लंघन तो होता ही है, क्योंकि प्रत्यक्षसे यह समझमें आ रहा है कि मन अनेक पदार्थोंमें एक साथ प्रवृत्ति नहीं करता। तो मनका विषय है एक पदार्थके एक समय प्रवृत्ति करना लेकिन यहाँ मान लिया गया है कि मन ही एक साथ समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंमें प्रवृत्ति करता है। मनका चिन्ह भी नैयायिक सिद्धान्त में यह कहा है कि एक साथ समस्त ज्ञानोंकी उत्पत्ति न होना मनका चिन्ह है तब यह लक्षण तो कभी मिट ही न सकेगा, कारण यह है कि लक्षणके मिट जानेपर लक्ष्यभूत वस्तुका अभाव हो जाता है। फिर योगज धर्ममें अनुगृहीत होकर मनके द्वारा समस्त पदार्थ जान लिए जाते हैं, इस कल्पनामें सिद्धान्त से स्पष्ट ही प्रत्यक्षका उल्लंघन हुआ है और यदि मनके सम्बन्धमें प्रत्यक्षका उल्लंघन करनेपर भी यही बात मान रहे हो कि होने दो प्रत्यक्षका उल्लंघन, तब तो स्वयं यह आत्मा ही समाधि विशेषसे उत्पन्न हुए धर्मके अनुग्रहसे मनकी अपेक्षा न रखकर ही साक्षात् सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको जान जावे। फिर मनकी आवश्यकता ही क्या है? जैसे कि अभी इन्द्रियकी आवश्यकता न रहेगी। यह आत्मा ही स्वयं समस्त पदार्थोंका जाननहार हो जाय। सो नैयायिक लोग ऐसा मानते नहीं और न यह बात हम भी मानते हैं, तब न मनसे समस्त पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो सका और न इन्द्रियज्ञानसे समस्त पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो सका। मन भी है तो अतिन्द्रिय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

थोड़ी इन्द्रिय, और इन्द्रिय तो इन्द्रिय है हीं। तब यह सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ इन्द्रियज्ञानके द्वारा किसीके भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

इन्द्रियप्रत्यक्षसे सूक्ष्मादिक अर्थोंकी प्रत्यक्षताका निराकरण करके अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा विप्रकर्षी पदार्थोंकी प्रत्यक्षताके निराकरणके लिये असर्वज्ञवादियोका प्रयास— यहां मीमांसकोंके द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके प्रत्यक्ष होनेके अनुमानके सम्बन्धमें दो विकल्प किए गए थे - एक तो यह कि क्या ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके इन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है ? दूसरा यह कि क्या सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे जाना जाता है ? इन दो विकल्पोंमें पहिला विकल्प तो नैयायिकोंको लक्ष्य करके कहा गया था। क्योंकि नैयायिक इन्द्रियज्ञान द्वारा योगीको सकलज्ञ माना है। अब यह दूसरा विकल्प जैन आदिकोंको लक्ष्य करके कहा जा रहा है। क्या सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा प्रत्यक्ष है, क्या यह मानते हो ? यदि अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे समस्त पदार्थोंकी प्रत्यक्षता साध्य मानते हो तो यह बात यों अयुक्त है कि इस अनुमानमें पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है। अर्थात् पक्षमें प्रतिज्ञामें साध्यमें जो विशेषण दिया गया है कि वह विशेषण ही सिद्ध नहीं है, क्योंकि किसी भी दृष्टान्तमें अतीन्द्रिय ज्ञानसे प्रत्यक्षता प्रसिद्ध नहीं होती। भले ही प्रकृत अनुमानमें अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं यह कह लो—लेकिन इसका कोई दृष्टान्त तो बताओ। तो इससे सिद्ध है कि जब दृष्टान्त नहीं मिलता तो पक्षका विशेषण भी अप्रसिद्ध है। जैसे कि जब सांख्योंके प्रति यह अनुमान बनाया गया कि शब्द विनाशीक हैं तो सांख्यमतमें तो पदार्थोंका, पर्यायोंका आविर्भाव तिरोभाव माना है। वहां कोई पदार्थ नहीं उत्पन्न होते हैं। तो उनके सिद्धान्तसे इस अनुमानका कोई दृष्टान्त ही नहीं मिल सकता। अथवा विनाशीकपना उनके यहां असिद्ध ही है। तो ऐसे ही अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं, यह बात भी असिद्ध ही है। कोई सा भी दृष्टान्त ऐसा न मिलेगा कि जिसमें साध्य मिल जाय। दूसरी बात यह है प्रकृत अनुमानमें जो दृष्टान्त दिया गया अग्निका सो इस विकल्पमें अब यों प्रयोग हुआ कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। जैसे कि अग्नि अनुमेय तो है लेकिन अग्नि अनुमेय तो है, परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञानके द्वारा किसीको भी प्रत्यक्ष नहीं होता और कभी भी उस समय या कुछ समय बाद उस अग्निको देखते हैं तो इन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही तो प्रत्यक्ष होता है। तो प्रकृत अनुमानमें कोई दृष्टान्त नहीं मिल सकता, और जो कुछ भी दृष्टान्त कहा जायगा उसमें साध्य न मिलेगा। इस तरह सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा भी प्रत्यक्ष नहीं है। तब निष्कर्ष यह निकला कि प्रत्यक्ष हो सकता है दो प्रकारसे—इन्द्रियज्ञान द्वारा अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा। सो दोनों विकल्पोंसे भी सूक्ष्म आदिक पदार्थोंकी प्रत्यक्षता सिद्ध नहीं होती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असर्वज्ञवादियोंकी उक्त आरेकाका समाधान—अब उक्त प्रकार मीमांसकोंके द्वारा सर्वज्ञके सद्भावका निषेध करने वाले कथनपर स्याद्वादी समाधान करते हैं कि इस प्रकार विकल्प उठाकर सर्वज्ञकी सत्ताका निराकरण करना युक्ति-संगत नहीं है। कल्पनानुसार कल्पना उठाकर सर्वज्ञत्वके विरोधमें बोलने वाले वे मीमांसक सत्यवादी नहीं हैं। ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं ऐसा तो हम सिद्ध कर नहीं रहे हैं। सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका इंद्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होना हम भी नहीं मानते, इस कारण प्रथम विकल्पके पक्षमें दिये गए दोषकी तो गुंजाइश ही नहीं है। यदि ऐसा ही निराकरण करना अभीष्ट है कि सूक्षम आदिक पदार्थ किसीके भी इंद्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष माने तो उसमें जितने दोष बताये उन सब दोषोंका समर्थन स्याद्वादी भी करते हैं। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो! सूक्षम आदिक पदार्थ अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हैं। इस सम्बन्धमें प्रथम ही प्रथम हम यह सिद्ध नहीं कर रहे कि सूक्षम आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हैं। और, जब हम अभी सूक्षम आदिक पदार्थोंको किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष नहीं सिद्ध करते हैं तो उसमें यह कहना कि यह पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है अथवा दृष्टान्त साध्य-शून्य है, इन दोषोंकी गुंजाइश नहीं, क्योंकि हम तो इस अनुमान द्वारा किसी सूक्षम आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्ष सामान्यसे ही किसीके प्रत्यक्षभूतपना सिद्ध कर रहे हैं। अनुमान प्रयोग भी तो ऐसे ही सामान्यरूपसे किया गया है कि सूक्षम आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। तो इसमें हम अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है यह तो नहीं कह रहे। पहिले प्रत्यक्ष सामान्यसे इन विप्रकर्षी पदार्थोंका किसीके प्रत्यक्ष होना प्रसिद्ध है इतना तो मान लें, इस अनुमानमें कोई बाधक प्रमाण भी नहीं आता है। जो जो अनुमेय होते हैं वे वे पदार्थ किसीके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं, इसमें कोई बाधा हो नहीं तो जो जो भी अनुमेय हैं वे किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं इसमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं आता।

सूक्ष्माद्यर्थको विषय करनेसे सर्वज्ञके ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षता की सिद्धि—अब सर्वज्ञत्वके सम्बन्धमें और भी निर्णयकी बात देखिये! सूक्ष्म आदिक पदार्थ सामान्यरूपसे किसीके प्रत्यक्ष हैं यह बात जब सिद्ध हो गई याने सर्वज्ञपनेकी भली प्रकार व्यवस्था बन गई कि हाँ है कोई सर्वज्ञ जो कि सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको भी प्रत्यक्षसे जानता है। इसके बाद उसके प्रत्यक्षकी पद्धतिका विचार करिये, परख कीजिये कि सर्वज्ञ जिस प्रत्यक्षके द्वारा समस्त पदार्थोंको जान लेता है वह प्रत्यक्षज्ञान किस प्रकारका है? क्या इन्द्रियकी अपेक्षा रखने वाला सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है या मनकी अपेक्षा रखने वाला सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है, या इन्द्रिय और मन इन दोनोंकी अपेक्षा न रखने वाला सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है? इन तीन बातोंमेंसे प्रथम दो बातें तो सिद्ध नहीं हैं क्योंकि इन्द्रियज्ञानसे अथवा मानसिक ज्ञानसे, और युक्तिसे भी सिद्ध नहीं होता। देखिये! इस सम्बन्धमें अनुमान प्रयोग है कि सर्वज्ञका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की अपेक्षा नहीं रखता है, क्योंकि सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करनेसे। इस सम्बंध में व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा स्पष्टीकरण किया जाता है कि जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखते हुये नहीं हैं ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करने वाले भी नहीं हैं। जैसे कि हम लोगोंका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखने वाला नहीं है अर्थात् इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखकर ही हम लोगोंका प्रत्यक्षज्ञान बनता है। तब वह सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषयभूत नहीं है। यह हम आप सब भली भाँति समझ रहे हैं। और योगियोंका प्रत्यक्ष सूक्ष्म आदिक अर्थोंका विषय करने वाला है (यह उपनय है) इस कारण यह सिद्ध है कि सर्वज्ञका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता (यह निगमन है) यह निर्णीत हुआ ?

सर्वज्ञके ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षता सिद्ध करनेवाले हेतुकी अव्यभिचारिताका प्रतिपादन—यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि सर्वज्ञके प्रत्यक्षको इन्द्रियानिन्द्रियापेक्ष सिद्ध करनेके लिए जो यह हेतु दिया है कि "सूक्ष्म आदिक पदार्थों को वह विषय करता है" सो सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करनेरूप वह हेतु तो अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान जो प्रत्यक्ष माने गए हैं उनमें भी चला जाता है, किंतु साध्य नहीं है वहाँ इस कारणसे यह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। समाधानमें कहते हैं कि अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान भी इन्द्रिय तथा मनकी अपेक्षा नहीं रखते। अवधिज्ञानको विषय है विप्रकर्षी रूपी पदार्थ और मनः पर्ययज्ञानका विषय है दूसरेके मन में ठहरे हुए पदार्थ, तो अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञानमें जो अपने विषयको जाना उस जाननेमें उनको इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नही रखनी पड़ी। लक्षण ही प्रत्यक्षका यह है कि जो इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्म शक्तिसे पदार्थको जाने यहाँ इस प्रत्यक्षसे मतलब पारमार्थिक प्रत्यक्षसे है। व्यवहारमें जो प्रत्यक्ष बताया जाता है वह तो सांव्यवहारिक है, अतएव वह वस्तुतः परोक्ष ही है। अवधिज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना केवल आत्मशक्तिसे जानता है। इसी प्रकार मनः पर्ययज्ञान भी इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्मशक्तिसे जानता है इस कारण हेतुका इन दोनों ज्ञानोंके साथ व्यभिचार दोष नहीं आता। यों यह हेतु निर्दोष है। जो ज्ञान सूक्ष्मादिक विप्रकर्षी पदार्थोंको विषय करता होगा वह इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखा करता है। इस तरह प्रभुका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखने वाला है और सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जानने वाला है।

सर्वज्ञको तीन विकल्पोंमें सविशेषण बनाकर असर्वज्ञवादी द्वारा सर्वज्ञत्वके निराकरणका प्रयास—अब यहां शंकाकार मीमांसक स्याद्वादियोंसे कहते हैं कि यह बतलावो कि यहां जो सिद्ध किया जा रहा है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं सो यह सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्षपना किस जीवके सिद्ध किया जा रहा है ? क्या अरहंतके यह प्रत्यक्षपना सिद्ध किया जा रहा है या अनर्हंत बुद्ध आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह सर्वज्ञता सिद्ध की जा रही है अथवा न अरहंतके न अनर्हतके अर्थात् दोनोंके किसीके सिद्ध नहीं किया जाता है, किन्तु किसी सामान्य आत्माकी सर्वज्ञता सिद्ध की जाती है ? इन तीन विकल्पोंमेंसे यदि कहो कि अरहंतमें सूक्ष्म आदिक अर्थोंकी प्रत्यक्षता सिद्ध की जाती है अर्थात् यदि विप्रकृष्ट पदार्थोंका प्रत्यक्ष होना अरहंतके सिद्ध किया जा रहा है तो इसमें पक्ष दोष आया । जो सिद्ध किया जा रहा है उसका विशेषण सिद्ध नहीं है और इस ही कारण उसमें अनुमानकी व्याप्ति नहीं बनती है । जहां जहां अनुमेयपना हो वहाँ वहाँ किसी अरहंतके प्रत्यक्षपना है ऐसी व्याप्ति नहीं बनती । इस कारणसे यह पक्षदोष आया । तब अरहतकी सर्वज्ञता सिद्ध की जाती है यह बात तो सिद्ध न हो सकेगी । यदि कहो कि अरहंतके सिवाय अन्य दूसरेकी सर्वज्ञता सिद्ध की जा रही है तो इसमें तो तुम्हारे अनिष्ट मंतव्यका प्रसंग आया । उनको सर्वज्ञपना यहाँ तुम स्याद्वादी नहीं मान रहे हो और साथ ही उस ही प्रकार पक्षदोष भी आया वहाँ भी व्याप्ति सिद्ध नहीं हो सकती कि जहाँ अनुमेयपना हो वहां किसी अनर्हन्तके प्रत्यक्षपना है ऐसी व्याप्ति नहीं बनती । अब अरहंत और अनर्हतको छोड़कर तीसरा और सामान्य आत्मा है ही कौन, जिसमें कि सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्षपना सिद्ध किया जाय? तो यों तीनों विकल्पोंमें सूक्ष्म आदिक पदार्थोंकी प्रत्यक्षता सिद्ध नहीं होती ।

उक्त शंकाके समाधानमें शंकाकाराभिमत शब्दनित्यत्वके प्रयोगमें विकल्प जालोंकी समानताका उद्घाटन—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि प्रकृत अनुमानमें इस तरहके विकल्पजाल उठाना तो शब्दमें नित्यपना सिद्ध करनेमें भी समान है । मीमांसक लोग जो कि यहाँ सर्वज्ञके सद्भावमें शंका कर रहे हैं और जिन्होंने उक्त प्रकारसे तीन विकल्प उठाये हैं वे शब्दको नित्य मानते हैं सो वे जब शब्दको नित्य सिद्ध करते तो वहांपर भी ये तीन विकल्प उपस्थित होते हैं कि वे बतावें कि शब्दोंमें नित्यपना जो सिद्ध किया जा रहा है तो क्या सर्वव्यापी शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध किया जा रहा है या असर्वगत, अव्यापी शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध किया जा रहा है ? या सर्वगत व असर्वगतसे भिन्न किन्हीं सामान्य शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध किया जा रहा है ? यदि कहो कि हम अकृतकत्व हेतुसे सर्वगत शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध कर रहे हैं याने सर्वगत शब्द नित्य है अकृतक होनेसे । यों हम सर्वव्यापी शब्दोंमें सिद्ध कर रहे हैं तब तो उसमें विशेषण अप्रसिद्ध होनेसे पक्ष दोष आयगा अर्थात् उन का पक्ष सिद्ध न हो सकेगा । इसी कारण उसकी व्याप्ति भी नहीं बन सकती कि जो जो अकृतक हों वे वे सर्वगत शब्दोंके नित्यपनेसे सहित होंगे, ऐसी कोई व्याप्ति नहीं बनती । यदि कहें वे कि हम अव्यापी शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध कर रहे हैं तो इसमें उनके सिद्धान्तका विघात है । मीमांसकोंने शब्दको अव्यापी नहीं माना और फिर अव्यापी शब्दोंमें भी नित्यपना सिद्ध करनेका अनुमान बनाया जायगा तो वहां भी पक्षदोष और अप्रसिद्ध विशेषणका कलंक रहता ही है । अब रहा तीसरा विकल्प

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सो सर्वव्यापी और अव्यापी शब्दोंको छोड़कर तीसरा सामान्य शब्द और होगा ही क्या ? जिसे कि दोनों विकल्पोंमें दिये गए दोष प्रसंगके परिहारके लिये माने जायें, लो इस तरह शब्दोंका नित्यपना भी यह शंकाकार सिद्ध न कर सकेगा।

शंकाकाराभिमत शब्दसर्वगतत्वके प्रयोगमें भी विकल्पजालोंकी समानताका उद्घाटन—अब शंकाकार अपने शब्दोंके सर्वव्यापीपना सिद्ध करनेके सम्बन्धमें भी सोच ले. वहाँ भी ये तीन विकल्पजाल लगाये जा सकते हैं। इन शब्दों में जब व्यापकता सिद्ध करने चलेंगे तो उनसे पूछा जा सकता है कि क्या अमूर्त शब्दोंमें व्यापकता सिद्ध कर रहे हो अथवा मूर्त और अमूर्तसे अलग किन्हीं सामान्य शब्दोंमें व्यापकता सिद्ध करते हो ? यदि कहो कि अमूर्त शब्दोंमें व्यापीपना सिद्ध किया जा रहा है तो अमूर्त शब्दोंमें व्यापीपना सिद्ध करनेमें जो पक्ष बनेगा उस पक्ष का विशेषण प्रसिद्ध नहीं है। क्या बनेगा प्रयोग कि अमूर्त शब्द सर्वव्यापी है। अब इसमें जो हेतु दोगे उस हेतुका साध्यके साथ व्याप्ति नहीं रह सकती। हेतु दिया गया है कि आकाशका गुण होनेसे। तो जो जो आकाशका गुण होता है वह अमूर्त शब्दोंके नित्यपनेसे सहित है। यह कोई व्याप्ति न बनी। तो व्याप्ति भी सिद्ध नहीं होती। यदि कहो कि हम मूर्त शब्दोंमें सर्वव्यापीपना सिद्ध कर रहे हैं तो इसमें अनिष्ट मंतव्य सिद्ध होगा। मीमांसक लोग शब्दोंको मूर्तिक नहीं मानते हैं और यहां दूसरा विकल्प स्वीकार कर रहे हो कि मूर्तिक शब्दोंमें सर्वव्यापीपना सिद्ध करते हैं तो यह उनके लिये अनिष्ट आपत्ति ही तो हुई। अब तीसरे विकल्पकी बात सुनो— मूर्त और अमूर्त शब्दको छोड़कर तीसरा अब वह कौनसा शब्द है जिसे सामान्य शब्द कहा जाय ? जिसको आप दोनों पक्षोंमें आये हुए दोषप्रसंगके निराकरणके लिये मानें। अर्थात् मूर्त शब्द अमूर्त शब्द इन दो को छोड़कर तीसरी कोई शब्दके बारेमें कल्पना नहीं है। तो लो जिससे यह कह सको कि यों नहीं तो व्यापक शब्द और अव्यापक शब्दको छोड़कर कोई सामान्य शब्द रहा और इसी तरह मूर्त शब्द और अमूर्त शब्दको छोड़कर कोई सामान्य शब्द रहा। यों विकल्पजाल उठाकर सर्वज्ञता निषेध करने चलोगे तो अपना मंतव्य भी सिद्ध नहीं कर सकते।

शंकाकार व कल्पित विकल्पजालोंसे सकल अनुमानोंके उच्छेदका प्रसंग—और भी देखिये—इस तरह विकल्प जाल उठानेसे तो समस्त अनुमानोंकी भी मुद्रा खण्डित हो जायगी। अर्थात् किसी भी प्रकारका अनुमान न बन सकेगा, क्योंकि जो भी अनुमान बनाओगे उसमें तीन विकल्प कर दिये जायेंगे और फिर साधन साध्यकी व्याप्ति सिद्ध न हो सकेगी। यों व्यर्थ कल्पनायें करके सर्वज्ञत्वके निषेधके लिये अपनी कल्पनायें बनाना यह श्रेयस्कर नहीं है। देखिये सभी अनुमानों की मुद्रा कैसे खण्डित हो जाती है इन विकल्पजालोंमें। किसीने कहा कि यह पर्वत अग्निमान् है धूमवान होनेसे तो यहां भी तीन विकल्पजाल पूर दिये जावेंगे। अच्छा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बताओ क्या अग्निमान पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं। या अग्निमान पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं। या अग्निमान अनग्निमान पर्वत भिन्न किसी सामान्य पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं। यदि प्रथम विकल्प लोगे ? अग्निमान पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं यह कहोगे तो इसमें पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है, क्योंकि जब तक अग्नि प्रसिद्ध (सिद्ध) नहीं हो जाती तब तक अग्निमान पर्वत यह पक्ष कैसे कहा जा सकता है और इसी कारण इसकी व्याप्ति न बनेगी। यदि अनग्निमान पर्वतमें अग्नि सिद्ध करनेकी बात कहोगे तो इसमें अनिष्टसिद्धि है अनग्निमान पर्वतमें तो अग्निका अभाव ही सिद्ध होगा। यदि तीसरा विकल्प लोगे तो वह यों असंगत है कि अग्निमान पर्वत व अनग्निमान पर्वत इनसे भिन्न पर्वत और हो ही क्या सकता है। सो लो, यह अनुमान भी न सिद्ध कर सकोगे। अतः ऐसे ३ विकल्पजाल अथवा विवेकसे बाहर की बात हैं।

सर्वज्ञत्वके प्रतिषेधके साधक अनुमानकी भी विकल्पजालपद्धतिसे असिद्धि—अब यहाँ असर्वज्ञवादी सर्वज्ञवादियोंसे कह रहे हैं कि तुम्हारे प्रकृत अनुमान में जो विकल्पजाल उठाये गए हैं वे किसी आधारपर ही उठाये गए हैं, क्योंकि सूक्षम आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला कोई पुरुष नहीं है, इस बातकी सिद्धि अनुमान प्रयोगसे होती है। कोई भी आत्मा सूक्षम आदिक विप्रकर्षी पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला नही है। क्योंकि पुरुष होनेसे। जैसे कि रास्तागीर भी पुरुष है और वह सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात् कर सकने वाला नहीं है। ऐसे ही सर्वज्ञत्वरूपसे विवादापन्न पुरुष भी पुरुष ही है। वह भी कोई विप्रकर्षी पदार्थोंका साक्षात्कार कर सकने वाला नही हो सकता। असर्वज्ञवादीकी इस शंकाके समाधानमें भी सर्वज्ञत्वनिषेधक शंकाकारके अनुमानमें भी तीन विकल्पजाल उठाये जा सकते हैं—यहां असर्वज्ञवादी जो पुरुष उस सर्वज्ञत्वके प्रतिषेधको सिद्ध कर रहे हैं सो वे यह बतायें कि क्या अरहंतके सर्वज्ञत्वके प्रतिषेधको सिद्ध कर रहे हैं या अनर्हन्तके सर्वज्ञत्वके निषेधको सिद्ध कर रहे हैं, या अरहंत और अनर्हंतके सिवाय किसी अन्य सामान्य आत्माके सर्वज्ञत्वके निषेधको सिद्ध कर रहे हैं ? यदि वे कहें कि हम अरहंतके सर्वज्ञपनेका निषेध सिद्ध कर रहे हैं तो यह अप्रसिद्ध विशेषण पक्ष हो गया। अर्थात् इन धर्मीमें जो अरहंत विशेषण दिया है वह अप्रसिद्ध है। और इसी कारण इसकी व्याप्ति भी सिद्ध नहीं होती। क्या यह व्याप्ति बनायी जा सकती है कि जो जो पुरुष होते हैं वे अरहंतके सर्वज्ञत्वके निषेधसे युक्त होते हैं ? यह तो कोई व्याप्तिका ढंग नहीं है और फिर इसमें जो भी दृष्टान्त दोगे वह साध्यशून्य होगा। अब यदि दूसरा विकल्प मानते हो कि हम पुरुषत्व हेतुसे अनर्हंतके सर्वज्ञपनेका निषेध कर रहे हैं तो इसमें भी अनिष्ट प्रसंग आ जाता है, क्योंकि शंकाकार अनर्हंतके सर्वज्ञत्वका निषेध कर रहे हैं। । ऐसा कहनेसे यह सिद्ध हो जाता है तब फिर अर्हंत ही सर्वज्ञ है। अतएव यह दूसरा विकल्प शंकाकारको अनिष्ट पड़ जाता है। तीसरे विकल्पकी बात देखिये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि क्या अरहंत और अनर्हंतके सिवाय किसी तीसरे सामान्य आत्मामें सूक्ष्म आदिक अर्थोंके साक्षात्कारका निषेध किया जा रहा है। वह बात यों अयुक्त है कि अरहंत अनर्हंतको छोड़कर कोई और तीसरा सामान्य क्या होगा ?

सर्वज्ञत्वके संशयके साधक अनुमानकी भी विकल्पत्रयजालपद्धतिसे असिद्धि—अब असर्वज्ञवादी कहते हैं कि सर्वज्ञपनेका अभाव सिद्ध नहीं होता है तो मत होओ, किन्तु सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें संशय तो हो ही जाता है। इसका अनुमान प्रयोग इस प्रकार है कि विवादापन्न पुरुष सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात् करनेरूपसे संशयित है, क्योंकि विप्रकृष्ट स्वभाव वाला होनेसे अर्थात् जिसमें सूक्ष्म आदिक पदार्थों का साक्षात्कारपना सिद्ध किया जा रहा हो वह तो अन्तरित है, सूक्ष्म है, देखनेके व्यवहारसे परे है, अतएव वह संदिग्ध है, जैसे कि पिशाच आदिक। कोई पुरुष पिशाच की सिद्धि करने लगे तो उसकी सिद्धि कैसे हो सकती है? न हाँकी सिद्धि, न नहीं की सिद्धि, क्योंकि पिशाच तो अदृश्य चीज है। जो अदृश्य है उसकी सत्ता और असत्तामें तो संदेह है। पिशाच है ऐसा सिद्ध करते हुए भी न हो पिशाच, नहीं है ऐसा सिद्ध करते हुए भी हो शायद पिशाच, कुछ नियत तो नहीं है तो जैसे पिशाच का सद्भाव संदिग्ध है इसी प्रकार कोई पुरुष सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला है, यह तो संशयकी ही बात है। इस शंका के समाधानमें भी उक्त प्रकार से तीन विकल्पजाल उठाये जा सकते हैं—वे किस प्रकार? कि बताओ शंकाकार कि जिस पुरुषमें सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके साक्षात्कार करनेका संशय बता रहे हो तो क्या वह अरहंतकी सर्वज्ञतामें संशय कह रहे हो, या अनर्हंतकी सर्वज्ञतामें संशय कह रहे हो, या दोनोंको छोड़कर किसी सामान्य आत्मामें सर्वज्ञताका संशय कर रहे हो? प्रथम पक्ष माननेपर तो पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है और इसी कारण उस विकल्पमें व्याप्ति भी नहीं बनती है तथा कोई दृष्टान्त भी न मिलेगा। और, जो दृष्टान्त दोगे उसमें साध्य शून्यताका दोष होगा। यदि कहो कि हम अनर्हंतके सूक्ष्म आदिक पदार्थों की साक्षात्कारितामें संशय बता रहे हैं तो यह शंकाकारके लिए अनिष्ट प्रसंग आ जायगा, क्योंकि इस द्वितीय विकल्पसे तो यह सिद्ध हुआ कि अनर्हंतकी सर्वज्ञतामें संशय है। अरहंतकी सर्वज्ञतामें संशय नहीं है। तीसरे विकल्पकी बात कहोगे तो वह यों असंगत है कि अरहंत और अनर्हंतको छोड़कर तीसरा और आत्मा कौन है? जिसमें अपने अभीष्ट अनुमानका प्रयोग करोगे? तात्पर्य यह है कि इस तरहके, कल्पित विकल्प उठाकर सर्वज्ञत्वका निषेध अथवा संदेह नहीं किया जा सकता है।

अविवक्षित विशेष पक्ष माननेपर सर्वज्ञत्व साध्यमें भी अबाधा—अब शंकाकार कहता है कि हमारे उठाये गये विकल्पजालोंके आक्षेपमें जो शब्द नित्यत्वमें विकल्पजाल उठाये तो ठीक नहीं क्योंकि जिसमें हम कोई विशेष विवक्षित नहीं करते ऐसे शब्दको अपना पक्ष बनायेंगे नित्य सिद्ध करनेमें, तो शब्दको नित्य सिद्ध करनेके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रसंगमें जो विकल्पजाल उठाकर निराकरण किया है वह न बन सकेगा। जैसे कि हम अनुमान प्रयोग यह करेंगे कि जिसमें न सर्वगतपनेकी विवक्षा है न असर्वगतपनेकी विव..ा है ऐसे अविशेष शब्द ही नित्य हैं अकृतक होनेसे। यों हम अविशेष शब्दमें नित्यपना सिद्ध करना चाहते हैं तब तो उसमें कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार हम अविवक्षित विशेषण शब्दमें सर्वगतपना सिद्ध करना चाहते हैं याने न तो अमूर्त विशेषण विशिष्ट शब्दमें सर्वव्यापीपना सिद्ध करना चाहते हैं और न मूर्तत्व विशिष्ट शब्द में सर्वव्यापीपना सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु अमूर्त और मूर्त इन दो विशेषणोंकी विवक्षा न रखकर केवल अविशिष्ट शब्दमें सर्वव्यापीपना सिद्ध करना चाहते हैं तब तो कोई दोषकी बात नहीं आ सकती है। अब उक्त आक्षेपपरिहारके उत्तरमें यह कह रहे हैं कि इस ही प्रकार तो प्रकृत सर्वज्ञत्व सिद्ध वाले अनुमानमें भी न तो अरहंत विशेषण विवक्षित है न अनर्हंत विशेषण विवक्षित है, किन्तु अरहंत विशेषणकी विवक्षासे रहित, अनर्हन्त विशेषणकी विवक्षासे रहित किसी अविवक्षित विशेषण पुरुषमें ही विप्रकर्षी पदार्थोंका साक्षात्कारपना सिद्ध कर रहे हैं जिसका कि अनुमान प्रयोगमें यों है कि अरहंत विशेषणसे रहित अनर्हंत विशेषणसे रहित सामान्य किसी अविशिष्ट पुरुषके ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। इस प्रकार अविशेष आत्मामें प्रत्यक्षपना सिद्ध करनेपर हम भी कोई दोष नहीं देखते हैं। सिवाय एक शंकाकारकी हठकी ही बात है। अप्रतिष्ठित असिद्ध जिन विकल्पजालोंकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है ऐसे मिथ्या विकल्प जाल उठाये जाये कि वे अटपट विकल्पजाल सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानका निराकरण करनेमें असमर्थ हैं। सिवाय एक दोंदापट्टीके और यहाँ कोई बात नहीं है जो भी शंकाकारने विकल्पजाल उठाये हैं वे सब अप्रतिष्ठित हैं, महत्त्वहीन हैं, उनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं है, क्योंकि ये विकल्प जाल साधनाभासकी तरह सच्चे साधनमें भी, जिसमें मिथ्या विकल्प नहीं लगाये जा सकते उनमें भी लगाये जा सकते हैं। इस कारण विकल्पजाल अप्रतिष्ठित हैं, महत्त्वहीन हैं। अतएव यह सिद्ध हुआ कि किसी पुरुषमें सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कारपना है अनुमेय होनेसे, यह हेतु निर्दोष है और इसमें नियमतः यह सिद्ध हो जाता है कि जब कि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ अनुमेय हैं तो किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत अवश्य ही हैं। यों अनुमेयत्व हेतुसे किसी परम पुरुषके सर्वज्ञपना सिद्ध हो ही जाता है।

अर्हन्तके ही आप्तता व विश्वसाक्षात्कारिता होनेके कारणका प्रश्न— किसी पुरुषके सर्वज्ञपनेकी सिद्धिके बाद अब अलंकाररूपमें मानो परमात्मा अरहंत ही प्रश्न कर रहे हों कि भले ही किसी पुरुषके कर्मरूपी पहाड़ोंका भेदनामात्र माना गया और इस ही प्रकार किसी पुरुषके समस्त तत्त्वोंका साक्षात्कारीपना मान भी लिया गया और जैसे कि अभी कहा है मानना ही होगा। उसमें प्रमाणका सद्भाव है, सर्वज्ञत्वमें बाधा देने वाले किसी भी प्रमाणकी सम्भवता नहीं है. तो जैसे कर्मपहाड़का

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भेदने वाला कोई है यह सिद्ध हुआ और समस्त तत्त्वोंका साक्षात्कार करने वाला कोई है यह सिद्ध हुआ तो होने दो परन्तु वह सर्वज्ञ परमात्मा अरहंत ही है, ऐसा निश्चय कैसे किया जा सकता है जिससे कि हे समन्तभद्र ! मैं तुम्हारा इतना महान अभिवन्द्य होऊँ ! इस प्रकार निश्चित् अभ्युपगमपूर्वक भगवानके सर्वज्ञत्वका प्रश्न होने पर समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्रविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ ६ ॥

अर्हंतके सर्वज्ञत्वकी सिद्धिका एवं विशेषणोंमें कार्यकारणभावकी गर्भितताका कथन—हे अरहंत प्रभो ! वह सर्वज्ञ तुम ही हो, तुम निर्दोष हो, युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध वचन कहने वाले हो अतएव तुम ही सर्वज्ञ हो आपके उपदेश में अविरोध है यह यों निश्चित होता है कि किसी भी प्रमाणसे आपका माना हुआ सिद्धान्त विरुद्ध नहीं पड़ता है । आपका उपदेश विरोध रहित है । इस कारिकामें मुख्य विधेय है यह कि कि हे अरहंत प्रभु ! जिस प्रकार सर्वज्ञका साधन पहिले किया गया है वैसे सर्वज्ञ तुम हो । अब इस मुख्य कथनके साथ इस कारिकामें जितने विशेषण आये हैं वे सब हेतु रूप बन जाते हैं । बड़े पुरुषोंके वचन अनायास सुगम ही इस प्रकार निकलते हैं कि वे वचन परस्पर कार्य कारणभावको सिद्ध करने वाले होते हैं । यहाँ यह कहा गया कि हे प्रभो ! तुम ही सर्वज्ञ हो, निर्दोष हो । तो यहाँ निर्दोष होना एक हेतुरूप वचन है । प्रभु तुम ही सर्वज्ञ हो निर्दोष होनेसे । जिसमें दोष सम्भव हैं वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता । चूंकि आप निर्दोष हैं, रागद्वेष मोहादिक दोष आपके नहीं हैं, क्षुधा तृषा आदिक दोष भी आपके नहीं हैं अतएव आप ही सर्वज्ञ हो । अब इसके बाद दूसरा विशेषण दिया है कि युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध वचन कहने वाले हो । यह द्वितीय विशेषण निर्दोषपनेकी सिद्धिमें हेतुपना रख रहा है कि प्रभु आप निर्दोष क्यों हैं, यों कि आपका वचन युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध नहीं पड़ता इस द्वितीय विशेषणका हेतु इस कारिकाके उत्तरार्द्धमें बताया गया है कि जिस कारणसे कि आपका इष्ट सिद्धान्त किसी भी प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधा नहीं जाता ।

प्रभुको निर्दोष शब्दसे पुकारनेका भाव—इस कारिकामें जो निर्दोष शब्द दिया है उसमें दोषरहित है ऐसा कहनेपर अज्ञान रागद्वेषादिक सब दोषोंसे रहित है ऐसा समझना चाहिये जिनमेंसे ये दोष अलग हो गए हों, जो दोषोंसे अलग हो गए हैं उसे निर्दोष कहते हैं । निर्दोष शब्दमें जो निर उपसर्ग है वह निष्क्रान्त अर्थमें है । अदोष और निर्दोषके भाव जुदे हैं । अदोषका अर्थ है जिसमें दोष नहीं है । तो यों सामान्यरूपसे अकाज, अराग, अद्वेष पुद्गलको भी कह सकते हैं, उनमें भी राग नहीं, द्वेष नहीं, लेकिन, निर्दोष पुद्गलको नहीं कह सकते । निर्दोष शब्द यह सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है कि जिसमें दोष थे फिर उसमें दोष नहीं रहे तो वह निर्दोष कहलाता है। अरहन्त देवके आत्मामें क्षीणमोहनामक गुणस्थान होनेसे पहिले रागादि दोष थे, किन्तु अब रागादिक निवृत्त हो चुके हैं। रागद्वेषादिक भावोंका अचेतनमें होनेका प्रसंग ही नहीं अतएव निर्दोष शब्दसे अचेतनको नहीं कहा जा सकता। ये अज्ञान रागद्वेष चेतन वस्तुमें ही हुआ करते हैं। तो जो चेतन इस दोषसे अलग हो गया है उसे निर्दोष कहते हैं।

अरहंत सर्वज्ञकी निर्दोषताका साधक अनुमान प्रयोग—यह बात प्रमाणबलसे सिद्ध है कि सर्वज्ञ और वीतराग जो सामान्यतया अभी बताये गए हैं—प्रभो! अरहंत तुम ही हो। क्यों अरहंत ही सर्वज्ञ वीतराग है? तो उसमें हेतु दिया गया है कि युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध वचन वाला होनेसे। इसका अनुमान प्रयोग यों होगा कि अरहंत ही वीतराग सर्वज्ञ है क्योंकि युक्ति शास्त्रका अविरोधी वचनपना पाया जानेसे। जो जिस सम्बन्धमें युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध वचन वाला है वह उस तत्त्वमें निर्दोष देखा गया है। जैसे कहीं रोगके उपशम करनेमें कोई वैद्य युक्ति और वैद्यशास्त्रसे अविरुद्ध वचन वाला है तो वह निर्दोष जाना जाता है। कोई रोगी किसी वैद्यपर तब ही श्रद्धा करता है जब कि वैद्य नाड़ी देखकर रोगीको स्वयं बताने लगता है—तुमको इतना बुखार है, तुमको इस इस अङ्गमें पीड़ा होती है आदिक जब वचन बोलता है तो रोगीको विश्वास हो जाता है कि वह निर्दोष वैद्य है, अज्ञानी वैद्य नहीं है। तो युक्तिशास्त्रसे अविरोधी वचन वाला अरहंत भगवान है। अरहंत प्रभुने मुक्तिके स्वरूपमें, मुक्तिके कारणोंके सम्बन्धमें जो भी उपदेश किया है जो वस्तु स्वरूप बताया है वे सब युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध वचन हैं। इस ही कारण हे प्रभो! तुम निर्दोष हो।

आर्हत वचनमें अविरोधताके कारणका प्रतिपादन—अब प्रभु युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध वचन वाले हैं यह कैसे सिद्ध हुआ? अथवा इसको यों अलंकार रूपमें समझिये कि यहां मानो परमात्मा अरहंत ही कह रहे हों कि मेरा वचन युक्ति और शास्त्रसे पूर्णतया अविरुद्ध कैसे है? जिससे कि मेरा वचन प्रमाणसिद्ध माना जाय? तो इसके उत्तरमें इस ही कारिकामें कहा गया है कि जिस कारणसे आपका इष्ट मंतव्य, उपदेश, सिद्धान्त मोक्ष आदिक प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधे नहीं जाते हैं इससे सिद्ध है कि आपका वचन युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध है। किस प्रकार अबाधित है इस सम्बन्धमें प्रयोग करते हैं। जिस सम्बन्धमें जिसका अभिमत तत्त्व प्रमाणसे बाधा नहीं जाता वह उस सम्बन्धमें युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध वचन वाला कहलाता है। जैसे कि रोगके स्वरूप और रोगके कारणके सम्बन्धमें स्वास्थ्यका स्वरूप और स्वास्थ्यके कारणके जानने बतानेके सम्बन्धमें वैद्य युक्ति शास्त्रसे अविरोधी वचन वाला है क्योंकि उसकी कही हुई बात प्रमाणसे बाधित नहीं होती है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभिमत तत्त्व प्रमाणसे बाधित नहीं होता है। जो प्रभुने मोक्ष, मोक्षकारण, संसार, संसारका कारणका स्वरूप कहा है वह किसी प्रमाणसे बाधित नहीं होता इस कारण हे प्रभो, अरहंत ! तुम मुक्ति और संसारके कारण तत्त्वस्वरूपादिकके सम्बन्धमें युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध वचन वाले सिद्ध होते हो। इस प्रकार जब यह सिद्ध हो गया कि मुक्ति, संसार, वस्तुस्वरूप ये सब युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध हैं। तो भगवानका वचन युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध है, यह सिद्ध हो जाता है। जो बात कही गई है वह बात यदि सत्य उतरती है तो वचनका अविरोध कहा जाता है। जैसे कोई पुरुष कुछ भी वचन बोलता है देखो वह वहाँ सीप पड़ी है और परख लिया कि यह सीप ही है, तो सब कहने लगते हैं कि इस पुरुषका ज्ञान सही है, अविरुद्ध है। तो ज्ञानकी प्रमाणता बाह्य वस्तुकी परखके बाद आया करती है। यद्यपि ज्ञान तो जिस समय हुआ उस ही समय प्रमाणभूत है। लेकिन लोक निर्णय तो तब होता है जब कि ज्ञानमें किसीके सम्बन्धमें जैसा जाना गया वैसा स्वरूप वस्तु में पाया गया हो। तो प्रभु आपकी दिव्यध्वनिमें, आपकी परम्परासे प्रणीत उपदेशमें जो बात कही गई है वैसा ही बाह्य पदार्थोंमें निरखा गया है। अतएव आपका वचन युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी है।

अरहन्तके युक्ति शास्त्राविरोधिवाक्त्व सिद्ध करनेके अनुमानमें वैद्यके उदाहरणकी उपयुक्तता—इस कारिकाके व्याख्यानमें अभी दो एक बार जो वैद्य दृष्टान्त दिया गया है। दृष्टान्त तो व्याख्याकार कोई अपनी ओरसे भी दे सकता है, लेकिन इस आप्तमीमांसा मूलग्रन्थके रचयिता स्वामी समंतभद्रने स्वयं ही स्वयंभूनाथ की स्तुतिके समय वैद्यका दृष्टान्त दिया है। हे प्रभो सम्भवनाथ ! तुम संसारके तृषा रोगसे संतप्त हुए मनुष्योंके लिये यहाँ एक आकस्मिक वैद्य हो, ऐसा स्वयं ग्रन्थकारने वृहत् स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है। सो वैद्यका दृष्टान्त यहाँ युक्त बैठता है। और आप्त-मीमांसा समन्तभद्राचार्यका ही ग्रन्थ है और वृहत् स्वयंभूस्तोत्र भी आचार्य समन्तभद्र रचित है। और यह वैद्यका दृष्टान्त इस कारिकामें बहुत उपयुक्त बैठ रहा है इसलिये यद्यपि स्वयं कारिकामें दृष्टान्त नहीं कहा गया है तथापि इस दृष्टान्तकी उपयुक्तता व संगतता प्रकरणोचित है। कारिकामें संक्षेपसे वर्णन किया जाता है, लेकिन दृष्टान्त युक्त बैठता है, अतएव वैद्यका दृष्टान्त इस प्रसंगमें लगाना बिल्कुल युक्त है और उससे प्रभुकी निर्दोषता, प्रभुके वचनोंकी अविरोधता सिद्ध होती है। यों सामा-न्यरूपसे जो सर्वज्ञपना सिद्ध किया गया था, हे प्रभो वह सर्वज्ञ तुम ही हो।

कारिकामें दृष्टान्तके न कहनेका भी उचित रहस्य—इस कारिकामें जो दृष्टान्त नहीं कहा गया है उसके कारण तीन हैं—एक तो कारिका संक्षेपरूपसे वर्णन करनेके लिये होती है। कारिकामें वर्ण्यमान तत्त्वके मुख्य साधक वचनके प्रयोगकी आवश्यकता होती है। अतः संक्षेपके प्रतिपादनके नाते होनेसे कारिकामें दृष्टान्त न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहना कोई विरोधकी बात नहीं है। इसका दूसरा कारण यह है कि दृष्टान्त न कहनेसे हेतुका जो मुख्य लक्षण है अन्यथानुपपत्ति उस अन्यथानुपपत्तिके नियमकी प्रधानतासे अवलोकन होगा, जो कि किसी बातके सिद्ध करनेके लिए एक अमोघ साधक है। अन्यथानुपपत्ति नियम ही हेतुका लक्षण है और उसकी प्रधानता इसमें देखते हैं इस कारण यहाँ दृष्टान्तका प्रयोग नहीं किया है। अब तीसरी बात सुनिये—इससे यह भी एक बात प्रसिद्ध होती है कि हेतुका लक्षण एक अन्यथानुपपत्ति ही है। जहाँ अन्यथानुपपत्ति पायी जाय वह हेतु सही है, वह अनुमान सही है। अन्यथानुपपत्तिका अर्थ है साध्यके बिना साधनका न होना। जो साधन साध्यके बिना नहीं हो सकता है वह साधन जब उपलब्ध हो तब वह साध्यको नियमसे सिद्ध करता ही है। तो पक्ष-धर्मत्व आदिक जो अनुमानके ५ रूप कहे हैं, जिनको कोई तीन रूपोंमें भी मानते हैं, कोई ५ रूपोंमें मानते हैं। उन रूपोंके उन संख्याओंके बिना भी अन्यथानुपपत्ति नियम वाले हेतुसे साध्यकी सिद्धि होती है। यह भी बताना इस कारिकामें दृष्टान्त न कहने का प्रयोजन है।

भगवानके अभिमत मोक्षतत्त्वकी प्रत्यक्षसे अबाधितता—इस कारिका में यह बताया जा रहा है कि हे प्रभो ! तुम्हारा जो मंतव्य है, सिद्धान्त है, जो आपने मोक्ष और मोक्षका कारण तथा संसार संसारका कारण बताया है इन चारोंके स्वरूपमें बाधा नहीं आती। इन चारोंमेंसे पहिले मोक्षतत्त्व किसी प्रमाणसे बाधित नहीं होता है इसकी भी परख कर लीजिये। प्रत्यक्ष प्रमाण तो उस मोक्ष तत्त्वका बाधक हो ही नहीं सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष दो प्रकारके होते हैं—अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष, इन्द्रियज प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्षका तो वह विषय ही नहीं है, उसमें बाधा वह क्या डालेगा ? अतीन्द्रिय प्रत्यक्षकी तो अभी विस्तृतरूपसे सिद्धि ही की जा चुकी है और उससे सिद्ध ही हो गया कि सर्वज्ञ प्रभु विश्वतत्त्वके ज्ञाता हैं और इस प्रकरणमें तो बाधकरूपसें पृष्ठव्य प्रत्यक्षसे मतलब सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे है प्रत्यक्ष मोक्ष आदिक तत्वोंका बाधक नहीं है।

अनुमानप्रमाणसे मोक्ष तत्त्वकी अबाधितता—अब यहां शंकाकार शंका करता है कि प्रत्यक्षसे उन तत्त्वोंमें बाधा नहीं आयी, किन्तु अनुमानसे तो बाधा आ जाती है। यहाँ शंका करने वाला असर्वज्ञवादी है। उन असर्वज्ञवादियोंमें चार्वाक जब शंका कर रहे हैं तो वह यद्यपि अनुमान नहीं मानता तो स्वयं अनुमान प्रमाण न माननेपर भी दूसरे मतकी अपेक्षासे अनुमानको दिखा रहा है। अन्य अनुमान प्रमाणवादी भी इस शंकाको कर सकता है। क्या शंका की जा रही है कि देखिये किसी भी पुरुषके मोक्ष नहीं होता, क्योंकि मोक्षकी उपलब्धि कराने वाले ५ प्रमाणों का यह मोक्ष विषय नहीं है। जैसे कूर्मरोम बन्ध्यापुत्र आदि। दृष्टान्तमें परखिये जैसे कछुवाके रोम आदिक हैं ही नहीं सो यों ही तो समझा जाता है कूर्मरोमादिका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

असत्त्व कि उस चीजकी उपलब्धि करानेमें समर्थ सद्भाव साधक पाँचों प्रमाण लगते नहीं हैं। प्रमाण दार्शनिक क्षेत्रमें अधिकसे अधिक ६ माने गए हैं। इन ६ प्रमाणोंको मीमांसक मानते हैं। सो उनमें ५ तो हैं सद्भावकी सिद्धि करने वाले प्रमाण और एक है अभाव नामका प्रमाण। तो उन पाँचों प्रमाणोंका विषय नहीं है मोक्ष इस कारणसे मोक्ष किसीके होता ही नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका संगत नहीं है क्योंकि मोक्षका अनुमानसे और आगमसे प्रामाण्य प्रसिद्ध है। अतएव मोक्षका अस्तित्व बराबर व्यवस्थित है। और, इस सम्बन्धमें आगे विशेषणरूपसे कथन किया जायगा। अभी सामान्यरूपसे सुन लीजिये ! जब हम कहीं अनन्त ज्ञाना॰ दिक स्वरूपका लाभ देखते हैं, जिसको अनुमानसे सिद्ध कर दिया गया है तो वह फल है किसका सो तो विचारिये। किसी जीवमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति प्रकट हो जाय, जिसमें कि पहिले प्रकट न थी और अब यह सब प्रकट हो गया तो यह बतलावो कि यह किसका फल है। यह फल है उस आत्मामें दोष और आवरणका क्षय हो जानेका सो दोष और आवरणका क्षय है और उसके फलमें अनन्त ज्ञानादिक स्वरूपकी प्राप्ति है यह अनुमानसे सिद्ध किया ही जा चुका है। फिर भी सुनिये— अनन्तज्ञानादि स्वरूपका लाभ है फल जिसका दोषावरणक्षय किसी आत्मामें संपूर्णरूपसे है, क्योंकि दोषावरण हानिका अतिशायन पाया जाता है। जैसे किसी स्वर्णमें किट्ट कालिकाका पूर्णरूपसे क्षय है, क्योंकि उन मलोंकी हानिका अति-शायन पाया जाता है। इस अनुमानसे कहीं दोषावरणक्षय हेतुसे वहाँ अनन्त ज्ञानादि स्वरूपका लाभ भी सिद्ध है।

आगम प्रमाणसे भी मोक्षतत्त्वकी अबाधितता— आगमसे भी मोक्षतत्त्व बाधित नहीं होता है। आगम तो मोक्षतत्त्वका साधक ही है। आगममें कहा है— "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष:" यह आगम वाक्य तत्त्वार्थ महा-शास्त्रका है जिसकी टीका करते हुए समन्तभद्राचार्यने मंगलाचरणमें स्पष्ट करनेके लिये यह आप्तमीमांसा की है। तो जब आगममें भी वचन पाया जाता है तो जैसे मोक्ष युक्तिसे अविरुद्ध है इसी प्रकार आगमसे भी अविरुद्ध है। तो प्रत्यक्षसे मोक्ष बाधित नहीं होता है, अनुमानसे मोक्ष बाधित नहीं होता और अब यहां आगमसे भी मोक्षतत्त्व बाधित नहीं होता। आगम तो मोक्षके सद्भावको सिद्ध करने वाला पाया जाता है। तो इस कारिकामें जो यह बात कही है कि प्रभुका माना हुआ तत्त्व मोक्ष, मोक्षकारण, संसार, संसारकारण, यह बाधित नहीं होता। इसमेंसे मोक्षतत्त्वके अबा-धितपनेकी बात कही गई है।

मोक्षकारणतत्त्वकी प्रमाणोंसे अबाधितता— अब मोक्षके कारणतत्त्वकी भी बात सुन लीजिये— मोक्षका कारण तत्त्व है सम्यग्दर्शन आदिक मोक्षके कारण तत्त्व हैं यह बात भी प्रमाणसे विरुद्ध नहीं जाती। क्योंकि इसका प्रत्यक्षसे तो विरोध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता नहीं। क्योंकि मोक्ष अकारणक नहीं होता। अकारणक मोक्षकी प्रतिपत्तिका अभाव है। तब प्रत्यक्षसे तो मोक्ष कारण तत्त्वमें बाधा आती नहीं अनुमानसे भी मोक्षके कारण तत्त्वमें बाधा नहीं आती। अनुमानसे तो मोक्षकी कारणवत्ता प्रसिद्ध ही है। जैसे अनुमान प्रयोग है कि मोक्ष सकारणक है अर्थात् सम्यग्दर्शन आदिक कारणपूर्वक है प्रतिनियत काल आदिकपना होनेसे। अर्थात् जब द्रव्य, क्षेत्र, काल, तीर्थादिक सामग्रीके बिना मोक्ष नहीं होता है तो इससे सिद्ध है कि मोक्ष सकारणक है। यदि मोक्षको अकारणक मान लिया जायगा तो सब समय सब जगह सब जीवोंके मोक्षका सद्भाव होना पड़ेगा क्योंकि अब मोक्षको तो मान लिया अकारणक। अकारणक मोक्षको अब दूसरेकी अपेक्षा तो रही नहीं। जब कारणोंकी अपेक्षा नहीं है मोक्ष होनेके लिए तब तो सभी जीवोंको सब ही समय सब ही देश क्षेत्रमें मोक्ष हो जाना चाहिये, सो यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है और अनिष्ट भी है। अतः मोक्ष अकारणक नहीं है, मोक्ष सकारणक है, क्योंकि प्रतिनियत द्रव्य क्षेत्र आदिक पूर्वक मोक्ष देखा गया है। तो यों अनुमानसे भी मोक्षके कारण तत्त्वमें बाधा नहीं आयी। अब आगम तत्त्वसे भी मोक्षका कारणतत्त्व बाधित नहीं होता है इस बातको सुनो—आगम तो मोक्ष कारण तत्त्वका साधक है आगममें लिखा है—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है अर्थात् मोक्षका कारण है। तो यों रत्नत्रयमें मोक्षकारणता सिद्ध ही है। तो मोक्ष तत्त्वकी तरह मोक्ष कारण तत्त्व भी अबाधित है।

यथोपवर्णित संसारतत्त्वकी भी प्रत्यक्ष व अनुमान प्रमाणसे अबाधितता—अब संसार तत्त्वकी बात देखिये—जैसे कि मोक्षतत्त्व और मोक्ष कारणतत्त्व अबाधित है इसी प्रकार संसारतत्त्वका स्वरूप भी जो बताया गया है वह प्रमाणसे अबाधित है। इसमें किसी प्रमाणसे बाधा नहीं आती। प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो संसारके अभावकी असिद्धि ही है। प्रत्यक्ष तो यह सब संसार समझमें आ रहा है। प्रत्यक्ष कैसे बाधक बनेगा? संसार कहते क्या है कि अपने अपने परिणामसे उपार्जित किये हुए कर्मोंके उदयसे आत्माका जो अन्य भावोंकी प्राप्ति है उस हीका नाम संसार है। संसरणको संसार कहते हैं। एक भवसे दूसरे भवमें जाना, जन्म मरण होना, अनेक देहोंका धारण करना, यही तो संसार है। सो यह सब कुछ प्रत्यक्ष आ ही रहा है। कितनी तरहके संसारमें जीव हैं। कैसी कैसी अवगाहनायें हैं। है तो उनके चैतन्यस्वरूप एक समान। जीव जीव सब एक स्वरूपके हैं। तो जैसे हम मनुष्य शरीरको धारण किए हुए हैं ऐसे ही जीव ये सब हैं। जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीट पतिंगा पशुपक्षी आदिक हैं। ये जीव ऐसे ऐसे शरीरोंको ग्रहण कर रहे हैं और शरीर ग्रहण कर करके उस उस जीवनमें ये कषायोंके कारण नाना दुःख सहते हैं। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, मानसिक व्यथा, शारीरिक रोग आदिक नाना तरहके कष्ट सहते रहते हैं। इस हीका नाम तो संसार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। इस परिवर्तनको कोई आँखोंसे न निरखकर यह कहे कि हम तो नहीं निरख पा रहे है कि यह जीव मरा और यहांसे चला, और इसने इस देहको धारण किया। यों हो तो हम प्रत्यक्ष मानें। तो भाई ऐसे प्रत्यक्षका यह विषय नहीं है। यह जो संसार है, यह मानसिक ज्ञान द्वारा भली प्रकार जाना जा सकता है। पर इसे हम इन्द्रियज्ञान द्वारा समझना चाहें कि एक भवसे इसे दूसरे भवमें यह जीव इस तरह आया, तो यह बात नहीं कही जा सकती। तो वहाँ भी यह समझिये कि जब इन्द्रियज प्रत्यक्षका वह विषय ही नहीं तो उस प्रत्यक्षसे बाधा क्या आ सकेगी ? तो संसार तत्त्वकी सत्तामें प्रत्यक्ष बाधा नहीं आती। अनुमान प्रमाणसे भी संसार तत्त्वकी सत्ता में बाधा नहीं आ सकती है। क्योंकि संसारके अभावके साथ जो प्रतिबद्ध हो ऐसा कोई हेतु नहीं है जो संसारके अभावको नियमत: सिद्ध कर सके। तो जब संसारके अभावका अविनाभावी कोई साधन नहीं है तो अनुमानसे फिर संसार तत्त्वकी सत्तामें बाधा ही कैसे आ सकती है ?

लौकायतिकों द्वारा भवान्तरके प्रतिषेधकी सिद्धिका प्रयास—अब यहाँ चार्वाक शंका करते हैं कि गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त चैतन्य विशिष्ट शरीरात्मक पुरुष के जन्मसे पहिले और मरणके बादमें कोई भवान्तर नही है, क्योंकि भवान्तरकी उपलब्धि न होनेसे, आकाशपुष्पकी तरह। जैसे आकाशपुष्पकी उपलब्धि नहीं होती है तो यह सिद्ध होता है कि आकाशपुष्प है ही नहीं। इसी प्रकार इस पुरुषके गर्भसे पहिले न कोई भवान्तर देखा गया है और न मरणके बाद कोई भवान्तर देखा जाता है। इससे सिद्ध है कि इस पुरुषके भवान्तर नहीं है, तो इस प्रकारका जो अनुपालम्भ है उस कल्पित चैतन्य स्वरूपकी अनुपलब्धि रूप हेतु है वह तो संसारके अभावका ग्राहक हो गया। और, यों संसारके अभावका ग्राहक अनुमान संसारतत्त्वका बाधक है, कैसे फिर कहा जा रहा है कि अरहंत प्रणीत शासनमें जो संसारतत्त्वका स्वरूप कहा गया वह अबाधित है। कहाँ मालूम हो रहा जीवोंका संसार ? संसार तो तभी कहलाये जब एक भव छोड़कर दूसरे भवमें चेतन जाय, किन्तु यहाँ भवान्तर न था न आगे होता हुआ नजर आता है।

भवान्तर सिद्धि करते हुए लौकायतिकोंकी शंकाका निराकरण—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह शंका युक्त नहीं है, क्योंकि इसमें जो सिद्ध किया जा रहा है वह एकदम असिद्ध है। देखिये ! अनुमानसे जीवके भवान्तरकी सिद्धि होती है। भवान्तर किसे कहा ? नया जन्म पाना, दूसरा देह धारण करना यही संसार है और इस प्रकारके संसारकी बराबर सिद्धि है। अनुमान प्रयोग है कि प्राणियोंका प्रथम चैतन्य अर्थात् गर्भावस्थामें दूसरा देह धारण करना यही संसार है और इस प्रकारके संसारकी बराबर सिद्धि है। अनुमान प्रयोग है कि प्राणियोंका प्रथम चैतन्य अर्थात् गर्भावस्थामें प्राप्त हुआ चैतन्य, उससे पूर्व रहने वाले चैतन्य उपादान कारणसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुआ है, क्योंकि चैतन्यका परिणमन होनेसे। जैसे कि मध्य चैतन्य परिणमन। देखो ना, जीवन अवस्थामें जैसे बालककी अवस्थाओंमें जो चैतन्य पाया जा रहा है वह चैतन्य पूर्व चैतन्यके उपादान पूर्वक है। जैसे कोई पुरुष जवान है तो जवानी अवस्थामें रहने वाला चैतन्यपरिणमन बाल अवस्थामें रहने वाले चैतन्य पूर्वक ही तो हुआ है। तो जैसे एक जीवनकालमें होने वाला चैतन्य विवर्त पूर्व चैतन्यके उपादान कारणसे हुआ है इसी प्रकार प्राणियोंका वह आद्य चैतन्य अपनी गर्भावस्थामें प्राप्त हुआ चैतन्य उससे पूर्ववर्ती चैतन्यके उपादान पूर्वक हुआ है। और जिस तरह गर्भावस्थामें प्राप्त चैतन्य पूर्व चैतन्यके उपादान पूर्वक होनेसे यह सिद्ध हुआ कि इस चैतन्यसे पहिले भवान्तर था जिस भवसे मरण करके यह गर्भ अवस्थामें प्राप्त हुआ है इसी प्रकार यह भी सिद्ध होता है कि अन्तिम चैतन्य परिणाम अर्थात् मरण अवस्थाके समयका चैतन्य विवर्त भी चेतनकार्य वाला है अर्थात् उस चैतन्यके बाद फिर अगले भवका चैतन्य होगा। जैसे कि बाल अवस्थाका चेतन परिणमन युवावस्थाके चेतनकार्यका साधक है इसी प्रकार मरण अवस्थाके समयका चैतन परिणाम आगे उत्पन्न होने वाले चैतन्य कार्यका उपादान है अर्थात् उस मरण अवस्थाके चैतन्यका कार्य अगले भवान्तरमें उत्पन्न होनेवाला चैतन्य है। इससे सिद्ध है कि मरणके बाद भी आगे यह चेतन रहता है, इस अनुमानसे पहिले भी चेतनकी उपलब्धि सिद्ध हुई और मरणकालके बाद भी चेतनकी उपलब्धि सिद्ध हुई। यों जो संसार तत्त्वकी बात कही गई थी वह बराबर सिद्ध है, अतः अरहंत देवके शासनमें कहे गए इस संसार तत्त्वकी असिद्धि नहीं है।

चिद्विवर्तत्व हेतुका गोबरसे उत्पन्न हुए बिच्छूके साथ व्यभिचारकी शंका और उसका समाधान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि देखो! गोबर अचेतनसे चेतन बिच्छू आदिककी उत्पत्ति देखी जाती है तब तो आपका हेतु व्यभिचारी हुआ ना। आपका हेतु है कि चैतन्यपूर्व चेतनके उपादान कारणसे हुआ है। तो अब वह बिच्छूका चेतन देखो गोबरसे ही बन गया, वह कहाँ पूर्व चेतनके उपादानसे हुआ? तब यह हेतु व्यभिचारी हो गया। उत्तरमें कहते हैं कि हेतु व्यभिचारी नहीं है, क्योंकि जो आक्षेप दे रहे हो बिच्छूके चैतन्यका उदाहरण देकर सो वह चैतन्य भी पक्षमें ही सम्मिलित है। वहां भी यह अनुमान बनेगा कि गर्भावस्था प्राप्त चैतन्य चेतनसे, पूर्वभवके कालके उपादान कारणसे हुआ है। जो बिच्छू आदिकके शरीर देखे जा रहे हैं वे तो अचेतन हैं। हम अचेतन शरीरके लिये यह अनुमान नहीं बना रहे हैं। अचेतन शरीरसे तो गोबर आदिकका सम्मूर्छन होता है, उसका निषेध नहीं करते, पर उस गोबरसे बिच्छूके चेतनके परिणामकी उत्पत्ति नहीं हुई है। उस चेतन परिणामकी उत्पत्ति तो पूर्व चेतन परिणामसे ही हो सकती है। तो बिच्छूका शरीर अचेतन है, पौद्गलिक स्कंधोंका पिण्ड है। वह तो गोबर, वायु, जल आदिकके सम्पर्कमें बन गया। वह पौद्गलिक देह पौद्गलिक स्कन्ध उपादान पूर्वक है, किन्तु जो जाननहार जिसमें ज्ञान और आनन्दका स्वभाव पड़ा है, चाहे वह कितने ही रूपमें प्रकट हुआ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। किन्तु वह ज्ञानानन्दस्वभावी चेतन, आत्मा, उस चेतन आत्माका यह परिणमन तो पूर्व चेतन विवर्तसे ही हुआ है। अतः इस हेतुमें व्यभिचारीपनेका दोष नहीं दे सकते।

चिद्विवर्तत्व हेतुका खङ्गिचरमचित्तके साथ व्यभिचारकी शंका और उसका समाधान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जो ध्यानी योगियोंका अन्तिम चेतन है, जो कि अन्य चेतनका उपादान नहीं बनता है उस ध्यानी योगी पुरुषके अन्तिम चेतनसे तो इस हेतुका व्यभिचार बन जावगा। यह शंका क्षणिकवादी सौगतोंके मन्तव्यका आश्रय लेकर हुई है। सौगत सिद्धान्तमें मोक्षका स्वरूप यह माना है कि चेतनकी संततिका क्षय हो जाता। एक चेतनके बाद अन्य चेतन हो रहे हैं, उनकी संतति चलती रहती है। यद्यपि वहाँपर प्रत्येक चेतन भिन्न-भिन्न ही है, एक नहीं है। अपूर्व-अपूर्व नये-नये चेतन उत्पन्न होते हैं लेकिन उन चेतनोंकी संततिका बन जाना, उनकी परम्परा लगना यह तो है संसार। और जब चेतनकी परम्परा मिट जाय उसका नाम माना गया है मोक्ष। तो ऐसे मोक्षकी प्राप्ति इसी पद्धतिसे ही हो सकती है कि कोई चेतन ध्यानी अंतिम चेतन ऐसा होता कि जिसके बाद फिर उस सिलसिले में चेतन न आये तो वह मोक्ष कहलाता है। तो इस पद्धतिमें रहने वाले योगी ध्यानी का जो चरम चेतन है वह अन्य चेतनका उपादानभूत नहीं है। उससे इस हेतुका व्यभिचार आता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह भी कहना केवल अपना मनोरथमात्र है। मनमें जो कल्पना किया उससे अपने घरकी, अपने मंतव्यकी बात तो बनायी जा सकती है, किन्तु सर्वलोक समस्त हो जाय, यह बात मनोरथोंसे नहीं बनती, वह तो युक्ति और आगमसे अविरुद्ध होना चाहिये। तब ही सकल दार्शनिकों की दृष्टिमें प्रमाणता आ सकती है। तो यहाँ जो मान लेना कि जब जिस चेतनके बाद अन्य चेतनकी संतति न रहे उसका नाम मोक्ष है तो यह बात प्रमाणसे असिद्ध है। योगी ध्यानीका अन्तिम चेतन इतर चेतनका उपादान कारण नहीं होता, इस प्रकारकी बात प्रमाणसे प्रसिद्ध नहीं है, क्योंकि निरन्वय क्षणक्षयका निषेध किया जा चुका है। कोई पदार्थ निरन्वय नष्ट नहीं होता। पर्याय तो बदलती है। उत्तर पर्याय होती है और पूर्व पर्याय वहीं विलीन होती है। लेकिन निरन्वय नाश हो जाय यह कभी भी सम्भव नहीं है। जैसे यही दृष्टान्तमें परखलो कि मिट्टीका घट बना तो घट पर्यायकी उत्पत्ति तो हुई और उससे पूर्व जो मृत्पिण्ड परिणमन था उसका व्यय हो गया। लेकिन दोनों अवस्थाओंमें रहा वह कुछ मिट्टी स्कंध। और अब आगे चाहे वह घट भी फूट जाय, अनेक खण्ड खण्डरूपमें कपाल बन जाय तब भी स्कंधका विनाश न होगा। तो जिसका अन्वय न रहे, मूल न रहे, स्कंध भी न रहे ऐसा विनाश नहीं माना गया है। तो चेतन भी एक सत् पदार्थ है। वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। यदि योग बलसे शुद्ध ध्यानसे उस चेतनमें अब रागद्वेष नहीं जगते हैं तो ठीक है, निर्विकार हुआ, शुद्ध हुआ। लेकिन वह आगे ऐसा ही निर्विकल्प शुद्ध पर्यायोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता रहेगा। उसमें यह निर्विकार शुद्ध परिणमन समाप्त हो जाय और कुछ आत्म सत् ही न रहे, यह कभी भी अवसर नहीं आ सकता।

उदाहरणपूर्वक गर्भावस्था प्राप्त चैतन्यकी अचेतनोपादान कारणक सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि जैसे बनकी कोई पहिली अग्नि जो बांसकी रगड़से उत्पन्न हुई है तो वह अग्नि पूर्वक अग्नि देखी गई है। बादमें फिर दूसरी जो अग्नि होगी वह अग्नि पूर्वक बन जायगी। इसी प्रकार पहिला जो चेतन है गर्भावस्थामें प्राप्त हुआ चेतन शरीरकार परिणत जो भौतिक स्कंध हैं उनसे उत्पन्न हो जायगा। फिर उसके बादका जो चेतन है वह चेतन पूर्वक बना रहेगा। इसमें तो कोई विरोध नहीं आता और इस तरह यह सिद्ध होता है कि प्रथम चैतन्य चैतन्यपूर्वक नहीं हुआ है। तो इससे पूर्वभवकी सिद्धि न रही और जब भवान्तर सिद्ध न हो सका तो संसार तत्त्व भी न रहा और जो कुछ दिखता है बस यही संसार है। अन्य जन्म पाना इसका नाम संसार नहीं है। इस शंकापर समाधान करते हैं कि ऐसा कहना अपने ही पक्षका घात करने वाला होने से जाति नामक दोषसे ही दूषित है। उनका यह मिथ्या उत्तर है। उनके कहनेमें उनके ही सिद्धान्तका घात है जिसे अभी बतावेंगे। यहाँ जो चिद्विवर्तत्व हेतु दिया है उसकी साध्यके साथ व्याप्तिका खण्डन नहीं होता। प्रकृत अनुमानमें जो यह बात कही गई है कि आद्य चेतन चेतनपूर्वक है चिदविवर्त होनेसे तो इसमें चिद्विवर्तत्व जो हेतु है उसकी साध्यके साथ व्याप्ति अखण्डित है अर्थात् वह पूर्व चेतन पूर्वक ही हुआ है। अब शंकाकारकी शंकापद्धतिसे शंकाकाराभिमत सिद्धान्तका घात देखिये जैसे कि आक्षेप किया है पहिले बनकी प्रथम अग्नि बाँसकी रगड़से उत्पन्न हुई है सो उस अग्निको बिना अग्निके उपादानके मान लिया जायगा अर्थात् उसकी अग्नि उपादान न थी किन्तु वह बन गया तब तो जैसे कोई अग्नि बिना उपादानके बन जाती है इसी प्रकार जल भी बिना जल उपादानके बन जायगा। वायु आदिक भी बिना वायु आदिक उपादान बन जायगा, और जब अपने अपने उपादानसे न बने, ये भिन्न उपादानसे बन गए तब पृथ्वी आदिक जो चार भूत माने गए हैं वे वास्तवमें अलग-अलग तत्त्व सिद्ध नहीं होंगे। क्योंकि यह नियम है कि जिसका परस्परमें उपादान उपादेय-भाव होता है अर्थात् जो एक कारणसे जन्य हैं उनकी वास्तवमें भिन्नता नहीं है, तत्त्वान्तरपना नहीं है। जैसे कि पृथ्वीकी पर्यायें कुछ भी होती जायें, पर वे वास्तवमें भिन्न जातिको नहीं कहलायीं। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना, कपाल बना, कुछ भी बन जाय, उन सबमें मिट्टीपना साधारण रूपसे है, वे मिट्टी जातिसे कोई भिन्न-भिन्न तत्त्व नहीं हैं। इसी प्रकार जब अग्नि जल वगैरह एक भूतपिण्डसे हो गए जैसे अग्नि वनस्पति रूप पृथ्वीसे बन गई। जल चन्द्रकान्त मणि आदि पृथ्वीसे बन गया। तो जब इनका परस्परमें उपादान उपादेय भाव है। कुछ भी उपादान बन जाता है तब यह सिद्ध होता है कि ये चारों भूत वास्तवमें कोई भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं हैं। इनकी भिन्न

http://www.jainkosh.org

जातियां नहीं है। तब यही तो सिद्ध हुआ कि एक पुद्गल तत्त्व ही है जो पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक पर्यायरूपसे रहता है। फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों तत्त्व अलग–अलग न रहे। इसी तरह अग्निको अनग्न्युपादानपूर्वक माननेपर उनके सिद्धान्त का ही विघात होता है और उन्हें यदि अलग अलग मानते हो तो वह मानना पड़ेगा कि जो जिस जातिका है वह उस जातिके उपादानसे उत्पन्न होता है। फिर तो चेतन अचेतन जातिके उपादानसे उत्पन्न होना सिद्ध न होगा किन्तु चेतन अपने पूर्व चेतनके उपादानसे ही हुआ यह सिद्ध होगा।

अनुपादानकारणक कार्यकी उपपत्तिकी शंका व उसका समाधान—अब शंकाकार कहता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुमें परस्पर उपादान उपादेय भाव नहीं है। वहां तो केवल सहकारी भाव माना गया है। जब कहीं ऐसा नजर आता है कि लो यह जल पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ। यह अग्नि बाँससे उत्पन्न हुई तो उसमें वह सहकारी है किन्तु उपादान नहीं है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ठीक है फिर तो पहिली जो वह अग्नि है वह अनग्निके उपादानसे भी नहीं है। जो बाँसोंकी रगड़ से अग्नि उत्पन्न हुई है उस अग्निकी उत्पत्तिमें वह बांस सहकारी कारण है न कि उपादान कारण। तो प्रथम अग्नि अनग्निके उपादानसे कैसे कैसे सिद्ध होगी? उस ही प्रकार प्रथम चेतन अचेतन पूर्वक कैसे सिद्ध होगा? प्रथम चेतन माने गर्भस्थ चेतन भी अचेतन उपादानसे उत्पन्न नहीं हुआ है। वह भी चेतन जातिसे ही उत्पन्न हुआ है। जैसे कि पहिले उत्पन्न हुई अग्निको बांसमें तिरोहित अग्नि उपादान पूर्वक माना गया है। वहां अन्य पदार्थ सहकारी कारण माना गया है पर उपादान तो तिरोभूत अन्य अग्नि है। जैसे यहां माना गया है उसी प्रकार गर्भस्थ चेतनका जो आविर्भाव हुआ है वह तिरोहित चेतनपूर्वक हुआ है। ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं मान ली जाती? किन्तु यहाँ भी यह मानो कि जो अद्य चेतन है गर्भावस्था प्राप्त हुआ चेतन है वह चेतनपूर्वक ही है। वह चेतन उपादान तिरोहित है। यहाँ देखनेमें, समझनेमें आया नहीं है, लेकिन वस्तुस्वरूपकी विधिसे यह ही प्रमाणसिद्ध है कि वह आद्य चेतन भी पूर्वचेतन पूर्वक हुआ है।

वनकी प्रथम अग्निकी सहकारीमात्रसे उपपत्ति बताकर अनुपादनकारणक सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास व उसका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि प्रथम जो वह अग्नि उत्पन्न हुई है वह तो सहकारी मात्रसे ही उत्पन्न हुई है, यही तो इसका कहना है। बाँसोंका जो रगड़ मथन हुआ है उससे अग्नि जो बनी है वह अग्नि उस सहकारी मात्र बाँसके मथनसे हुई है। इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वह प्रथम अग्नि तिरोहित अन्य अग्निके उपादानसे हुआ है फिर कैसे इसका उदाहरण देकर इस प्रथम चेतनको तिरोहित चेतन पूर्वक सिद्ध कर रहे हो? उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना आपका असत्य है क्योंकि बिना उपादानके किसी भी विवर्तको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पत्ति नहीं देखी जाती है। यहाँ यह ही तो कह रहे हो कि पहिले जो अग्नि उत्पन्न हुई है उसका उपादान तो कुछ नहीं है। हां बांसोंकी रगड़ सहकारी मात्र है सो बात यह है, कि सहकारी कारण कितने ही जुट जायें लेकिन बिना उपादानके किसीकी भी उत्पत्ति नहीं हुआ करती है। तब वह जो प्रथम अग्नि हुई है उसमें यद्यपि बाँसकी रगड़ सहकारी कारण है लेकिन उसका उपादान अग्नि होना ही चाहिए। और वह उपादानभूत अग्नि चूँकि वहाँ व्यक्त नहीं है तो सिद्ध होता है कि तिरोहित अग्नि है, उन बाँसोंके पेड़ोंमें किसी भी रूपसे अग्नि तत्त्व बना हुआ है। अन्तमें अग्नि तत्त्वसे अग्निकी व्याप्ति हुई है, इसी प्रकार गर्भस्थ आद्य चेतनमें सहकारी कारण कुछ भी हो लेकिन वह चेतन प्रथम चेतन पूर्वक ही हुआ है। बिना उपादानके किसी भी विवर्तकी उत्पत्ति नहीं होती है। और भी देखिये! यहाँ अग्निदेह पौद्गलिक है वह अनग्नि-परिणत बाँससे उत्पन्न हो जाय तो भी पौद्गलिकस्कंध उपादान पूर्वक तो है ही, किन्तु चेतन अचेतन पौद्गलिकमें विलक्षण है, वह चेतन उपादानसे ही होगा।

शब्द बिजली आदिको अनुपादानकारणक कह कर दोषपरिहारकी चेष्टा व उसका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि देखिये! शब्द बिजली आदिकका तो कोई उपादान देखा नहीं गया। और शब्द बिजली उत्पन्न होते हुए नजर आ ही रहे हैं इस कारण यह दोष नहीं दे सकते कि प्रथम अग्निके लिए अन्य अग्नि उपादानभूत चाहिये ही। देखो शब्द उत्पन्न हो गया किन्तु उसका उपादान कारण कुछ नहीं है। बिजली उत्पन्न हो गई किन्तु उसका उपादान कारण कुछ नहीं है। उत्तरमें कहते हैं कि बात ऐसी नहीं है। शब्द बिजली आदिक भी उपादान कारण पूर्वक ही होते हैं, कार्य होनेसे, है ना शब्द कार्य और बिजली कार्य। देखो! जो न हो और बन जाय उसे ही तो कार्य कहते हैं, चाहे उसके कारणकलाप प्रकट हों अथवा न हों। शब्द न था और तालु जिह्वा आदिकके संयोग वियोगसे अथवा किन्हीं पुद्गलके संयोग वियोगसे शब्द उत्पन्न हो गया है, मेघोंके संघट्टनसे बिजली उत्पन्न हो गयी है तो बिजली कार्य है, शब्द भी कार्य है तो कार्य होनेसे ये भी अपने उपादान पूर्वक ही हुए हैं। जैसे घट पट वगैरह। घड़ा कार्य है। घड़ा मिट्टीमें पहिले न था और अब बना है, तो कार्य होनेके नाते यह सिद्ध है कि घट मिट्टी उपादान पूर्वक है, इसी प्रकार यद्यपि शब्द और बिजली इनका उपादान अदृश्य है लेकिन ये भी उपादान सहित ही हैं। और, जिन पुद्गल स्कंधोंमें शब्दरूप परिणमन हुआ है वे स्कंध ही शब्दके उपादान हैं। इसी प्रकार जिन पुद्गल स्कंधोंमें बिजली रूप परिणमन हुआ है वे पुद्गल स्कंध उस बिजली विवर्तके उपादान कारण हैं। तो शब्द और बिजली भी उपादान कारण बिना न हो सके। ऐसे ही वह प्रथम अग्नि भी आधनन्तरके उपादान कारण बिना नहीं हुई। और इसी प्रकार गर्भस्थ आद्य चैतन्य भी चेतन उपादान कारण बिना नहीं हुआ अर्थात् उस आद्य चैतन्यसे पहिले भी वह चेतन था और किसी भवमें था तो इस से भवान्तरकी सिद्धि होती है ऐसे ही आगे भवान्तर होगा और भवान्तरोंकी प्राप्ति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का नाम ही संस्कार है।

भूत उपादानसे चैतन्यकी उपपत्तिका चार्वाकोंका मन्तव्य और उसका निराकरण—चार्वाक शंका करते हैं कि सारी अग्नि चाहे अग्निके उपादान पूर्वक हो, चाहे वह पहिली अग्नि हो, चाहे बादकी अग्नि हो, उसको अग्नि उपादान पूर्वक माननेमें अब हम कुछ बाधा नहीं समझते, क्योंकि सभी कार्य अपने सजातीय उपादान से हुआ करते हैं। तो अग्नि भी कार्य है और अग्निका सजातीय उपादान है अग्नि, सो वह अग्निपूर्वक हो जाय इसमें कोई बाधा नहीं, परन्तु चेतनका अन्य चेतनके उपादानसे होनेका नियम नहीं है, क्योंकि चेतन तो भूत उपादानसे प्रकट होता है, क्योंकि भूत और चेतनमें सजातीयता है। सजातीयता इस कारणसे है कि भूतसे से चेतनकी उत्पत्ति होती है, इसी कारण भूत और चेतन एक जातिके कहलाते हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो बिल्कुल ही अयुक्त है क्योंकि भूत और चेतन इन दोनोंमें भिन्न लक्षणता है। भूतका लक्षण अचेतनता है रूप रस गंध स्पर्शमयता है और चेतनका लक्षण ज्ञान है स्मरणवेदनरूपता है अतएव ये दोनों भिन्न भिन्न तत्त्व हैं। जैसे जल और अग्नि इनका भिन्न लक्षण है और भिन्न लक्षण होनेके कारण जल और अग्निको शंकाकार द्वारा भिन्न माना गया है। सो भिन्न लक्षणपना होनेसे ही दूसरे लोगोंने, शंकाकार चार्वाकोंने भी भिन्न भिन्न तत्त्वपनेकी व्यवस्था बनाई है। यहाँ भी भूतसे चैतन्यका लक्षण भिन्न है अतः भूतसे चैतन्यका भिन्न तत्त्वपना सिद्ध है।

चैतन्यकी भूतसे तत्त्वान्तरताकी सिद्धि—अब भूतसे चेतन भिन्न तत्त्व है। विभिन्न है, इस बातकी सिद्धि अनुमान प्रयोगसे की जाती है। चेतन भूतसे तत्वान्तर है, क्योंकि भूतसे भिन्न लक्षण वाला होनेसे। यदि चेतन भूतसे भिन्न तत्व न होता तो चेतनसे भूतका लक्षण भिन्न नहीं बन सकता। तो इस अनुमानमें भी भिन्न लक्षण हेतु दिया गया है वह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि रूपादिक है सामान्यतया लक्षण जिसका ऐसे पृथ्वी आदिक भूतसे स्वसम्वेदन लक्षण वाले चेतनकी भिन्न लक्षणता सिद्ध होती है। अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों भूत एक ही जातिके द्रव्य हैं और उनका लक्षण है रूप, रस, गंध, स्पर्शका होना। सो वे एक हैं या अनेक ? इस बात को अभी नहीं कह रहे हैं, पर यह बता रहे हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारों भूतोंका लक्षण है रूपादिमान होना और चेतनका लक्षण है स्व सम्वेदन होना अर्थात् स्वयं अपने आपका सम्वेदन करना इस तरह यह चेतन भिन्न लक्षण वाला सिद्ध होता है।

अस्मदादि अनेक जनों द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेसे भूतमें स्वसंवेदन लक्षणताकी असिद्धि—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये भूत स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं, क्योंकि हम जैसे अस्मदादि अनेक ज्ञाताओंके प्रत्यक्षभूत होनेसे। जो जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थ हम जैसे लोगोंको इन्द्रिय प्रत्यक्षसे प्रत्यक्ष हो रहे हैं वे स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं। ज्ञान ज्योति स्वरूप नहीं है। जो स्वसम्वेदन लक्षण वाला होता है वह हम जैसे अनेक लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं होता है। जैसे अपने अपने ज्ञान सभी जीवोंको अपने अपने ज्ञानमें तो प्रत्यक्ष हो रहे हैं। वे अपने अपने ज्ञानके स्वरूपको समझ जाते हैं, पर दूसरा नहीं समझ सकता। तो इस पद्धतिसे यह न्याय निकला कि जो पदार्थ जिन अनेक लोगोंके प्रत्यक्षमें आता है वह पदार्थ स्व सम्वेदन लक्षण वाला नहीं हैं और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार भूत हम जैसे अनेक छद्मस्थ जनोंके इन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हो रहे हैं इससे ये भूत स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं। सो यों चेतनके लक्षणसे इन चार भूतोंका लक्षण जुदा है।

अस्मदाद्यनेकप्रत्यक्षत्वका अनेकयोगिप्रत्यक्षभूत सुखादिसंवेदनसे अव्यभिचारित्वका प्रतिपादन—यहाँ शंकाकार कहता है कि इस समय जो यह हेतु दिया गया है कि हम जैसे अनेक ज्ञाताओंका प्रत्यक्षभूत होनेसे ये भूत स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं सो देखिये कि सुख आदिकका सम्वेदन अनेक योगियोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत है, मगर दूसरेके सुखका वे अनुभव नहीं करते सो व्याप्ति तो यहाँ यह बनायी जा रही कि जो स्वसम्वेदन लक्षण वाला नहीं है वह अनेकों द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं है मगर सुख आदिकका सम्वेदन अनेक योगियोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो रहा है। जिस आत्मामें सुखरूप परिणमन हो रहा है उस ही आत्माके द्वारा उसका सम्वेदन हो सकता है। तो सुख आदिकका सम्वेदन लक्षण वाला होनेपर भी अनेक योगियोंके द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा है अतएव यह हेतु व्यभिचारी है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शंका न करना चाहिए। कारण यह कि जो हेतु दिया गया है उसमें अस्मदादि शब्द पड़ा हुआ है, जिससे हेतुका यह अर्थ बनता है कि हम जैसे अनेक लोगोंके प्रत्यक्षभूत होनेसे। लेकिन हम लोगोंके द्वारा तो प्रत्यक्षभूत नहीं हो रहा है, वह सुख आदिक सम्वेदन अनेक योगी भले ही उसका प्रत्यक्ष करलें लेकिन हम जैसे छद्मस्थोंकी बात इस हेतुमें कही गई है। अतएव यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित नहीं होता।

ज्ञानमें स्वसंवेदनलक्षणताका प्रतिपादन—अब यहाँ शंकाकार कह रहा है कि ज्ञानमें स्वसम्वेदन लक्षणपना असिद्ध है। ज्ञान जानता है, पर ज्ञान अपने आपको नहीं जानता। जिस ज्ञानने किसी भी बाह्य पदार्थको जाना उस ज्ञानकी बात यदि समझते हैं कि यह ज्ञान सही है अथवा मिथ्या है तो यह समझनेके लिए अन्य ज्ञानसे समझा जायगा। ज्ञान स्वयं अपने आपका सम्वेदन नहीं करता है। जब ज्ञानमें स्वसम्वेदन है ही नहीं, फिर चेतनका स्वसम्वेदन लक्षण बताकर और पृथ्वी आदिक चार भूतोंसे भिन्न कहकर तत्वान्तरता सिद्ध करनेका प्रयास व्यर्थ है। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि यह कहना युक्तिसंगत नहीं है, ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला ही है। यदि ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला न होता तो बाह्य अर्थका ज्ञाता नहीं बन सकता था।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसको यों अनुमान प्रयोगमें लीजिए ! ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला है, क्योंकि बाह्य अर्थका परिच्छेदक होनेसे। यदि ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला न होता तो ज्ञानके द्वारा कभी भी बाह्य अर्थका परिज्ञान न किया जा सकता था। इस हेतुसे ज्ञानकी स्व सम्वेदनता प्रमाण सिद्ध होती है। जो अस्वसम्वेदन लक्षण वाला होता है वह बाह्य अर्थोंका परिच्छेदक नहीं होता। जैसे घट पट आदिक ये पदार्थ अस्वसम्वेदन लक्षण वाले हैं, तो घट पट आदिक किसी भी बाह्यपदार्थके ज्ञाता नहीं हैं। तो इस हेतुका विपक्षमें बाधक प्रमाण मौजूद है अर्थात् यह हेतु विपक्षमें नहीं जा रहा है इससे इस हेतुकी अन्यथानुपपत्ति बराबर सिद्ध है। किसी भी अनुमानके बनाये जानेमें यदि हेतु विपक्षमें चला जाता है तब उसकी अन्यथानुपपत्ति सही नहीं है और हेतु विपक्षमें न जाय व साध्यके अभावमें वह हेतु भी न हो ऐसी व्याप्ति हो तो उस हेतुमें अन्यथानुपपत्ति कही जाती है। तो यह हेतु कि ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला है बाह्य अर्थका परिच्छेदक होनेसे। यह हेतुके लक्षणसे पूर्णतया सहित है।

स्वसंवेदनलक्षणत्वकी सिद्धिमें दिये गये बाह्यार्थ परिच्छेदकत्व हेतुका प्रदीपादिके साथ अव्यभिचार—अब शंकाकार कहता है कि इस हेतुका प्रदीप आदिकके साथ अनेकान्तिक दोष आता है यह कहना कि जो बाह्य अर्थका परिच्छेदक होता है वह सुसम्वेदन लक्षण वाला है यह बात प्रदीपमें कहां घटित होती है ? दीपक बाह्य अर्थोंका प्रकाश करने वाला तो है लेकिन अपने आपका सम्वेदन नहीं कर पाता है। वह अस्वसम्विदित है अतएव हेतु प्रदीप आदिकके साथ अनेकान्तिक दोष वाला घटित होता है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि प्रदीप तो जड़ पदार्थ है, अज्ञानरूप है। अज्ञानरूप होनेके कारण प्रदीप बाह्य अर्थोंका परिच्छेदक नहीं हो सकता है। परन्तु बाह्य अर्थका परिच्छेदन करने वाले ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण होनेसे दीप आदिकका बाह्यचक्षु आदिककी तरह यह परिच्छेदक है इस प्रकार का उपचार किया जाता है। अर्थात् वस्तुतः बाह्य अर्थका जानने वाला तो ज्ञान है लेकिन उस ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हैं इन्द्रियां। सो लोग इन इन्द्रियोंको भी ज्ञाता कह देते हैं। ये इन्द्रियां जानती हैं। तो जैसे इन्द्रियको जानने वाला कह देना उपचार से है इसी प्रकार इन्द्रियसे जो ज्ञान किया जाता है उस ज्ञानमें ये दीप आदिक भी सहकारी कारण हैं इनमें भी प्रकाशक होनेसे परिच्छेदक होनेका उपचार किया जाता है परन्तु उपचरित अर्थके परिच्छेदक प्रदीप आदिकके द्वारा मुख्य अर्थ परिच्छेदकपने हेतुमें व्यभिचार दोष उपस्थित करना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है। यदि मुख्य अर्थके परिच्छेदक हेतुका उपचरित अर्थ परिच्छेदकके साथ व्यभिचार बताया जाने लगे तो जब यह अनुमान करें कि अग्नि दहनशक्ति युक्त है अग्नि होनेसे तब कहीं जिस किसी बालकका नाम अग्नि रखा गया हो उस बालकसे इस हेतुका व्यभिचार बना दिया जाना चाहिये कि देखो यह अग्नि (बालक) है किन्तु इसमें दहनशक्ति नहीं है। सो मुख्य अर्थपरिच्छेदक हेतुका उपचरित अर्थपरिच्छेदकके साथ व्यभिचार नहीं बताया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जा सकता इसका कारण यह है कि मुख्य अर्थके धर्म उपचरित अर्थमें नहीं होते। उपचरितपना तो नाम, सम्बन्ध आदिकके कारणसे किया जाता है। तो यहाँ दीप अर्थपरिच्छेदक नहीं, किन्तु अर्थपरिच्छेदन करने वाले ज्ञानकी उपपत्तिमें बन्धनबद्ध स्थितिके कारण निमित्तभूत इन्द्रियके व्यापारमें प्रकाश सहकारी मात्र है इससे प्रदीपमें परिच्छेदनका उपचार किया जाता है। वस्तुतः प्रदीप अर्थपरिच्छेदक नहीं। अतः हेतुमें व्यभिचार नहीं आता।

ज्ञानका स्वसंविदितपना सिद्ध करनेके लिये दिये गये वाह्यार्थ परिच्छेदकत्व हेतुकी पक्षाव्यापकत्व दोषकी शंका व उसका समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि सुखादि ज्ञान स्वरूपमात्रके जाननेमें व्यापार किया करते हैं। लेकिन वे बाह्य अर्थके परिच्छेदक नहीं हैं। सो देखिये—सुख आदिक ज्ञानोंमें स्वरूप मात्रका सम्वेदन तो पाया गया, अतएव वह भी पक्ष है लेकिन उसमें हेतु नहीं पाया जाता तो यह सुखादिसंवेदन बाह्य अर्थका परिच्छेदक नहीं है। इसी कारण यह हेतु पक्षाव्यापक है याने पक्षमें नहीं रह रहा है अतएव हेतु सदोष है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह आक्षेप ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान भी अपनेसे बहिर्भूत जो सुख आदिक हैं उनका सम्वेदन करता है याने सुख आदिकका ज्ञान तो ज्ञानभाव है, जाननरूप है और इस ज्ञानमें जो जाना गया सुख वह सुख ज्ञेयरूप है। तो सुखादिज्ञान भी अपनेसे वहिर्भूत सुख आदिकका परिच्छेदक है अतएव सुखादि ज्ञानोंमें भी बाह्य अर्थकी परिच्छेदकता सिद्ध है। यों तो जब घट पट आदिकका भी ज्ञान किया जाता है वहां भी वह सर्वथा बाह्य अर्थका परिच्छेदक है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुम्भादिकके ज्ञानके समय भी सर्वथा अपनेसे वहिर्भूत अर्थका परिच्छेदक हो सो बात नहीं क्योंकि जानने वाला है घट पट आदि ज्ञान और जाना जा रहा है घट पट आदिक पदार्थ, तो उस ज्ञानका और इस घट पट आदिकके साथ सदा सत् आदिक रूपसे सम्वेदन होनेके कारण अभेदकी प्रतीति है। अर्थात् जैसे कि कुम्भादिक सत् हैं उसी प्रकार ज्ञानादिक भी सत् हैं। तो देखो सत्ताकी अपेक्षासे ज्ञान घटसे सर्वथा भिन्न नहीं होता। यदि सर्वथा भिन्न मान लिया जाय तब तो कुम्भादिकका अभाव बन पड़ेगा, क्योंकि गुण हो गया सत् तो कुम्भादिक हो जायगा असत्, और ऐसा माननेपर कि कथंचित् तो घटादिज्ञानसे वहिर्भूत है घटादि पदार्थ सो जैसे सत् रूपसे एक समान होते हुए भी घट पट आदिक पदार्थ लक्षणकी दृष्टिसे तो ज्ञानसे भिन्न हैं, ऐसी ही बात सुखादिसम्वेदन और सुख आदिकमें भी जानना चाहिए। सुख आदिक सम्वेदनसे सुख आदिक भी कथंचित् अपनेसे वहिर्भूत हैं क्योंकि सुख आदिकका और सुख आदिकके सम्वेदनका कारण आदिका भेद पड़ा हुआ है। सुखका कारण तो साता वेदनीयका उदय है और ज्ञानका कारण ज्ञानावरणका क्षयोपशम आदिक है। तो जब कारण भिन्न है तो इससे सिद्ध है कि इसके स्वरूपमें भी भेद है। यों सुखादि ज्ञानसे, सुख आदिक भी कथंचित् वहिर्भूत हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूप संवेदन होते हुए ही परसंवेदन करनेका ज्ञानमें स्वभाव— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि तब तो घट आदिक ज्ञानमें तो सुख आदिक ज्ञान भी जब अपनेसे बहिर्भूत अर्थके परिच्छेदक बन गए तब उससे अन्य कोई विज्ञान तो रहा नहीं, फिर वह ज्ञान अपने आपका सम्वेदक क्या कहलाया ? जैसे कि ज्ञानने घट पदार्थको जाना तो ज्ञानका बहिर्भूत है ना घट उसका परिज्ञान किया। तो अब घटसे भिन्न अन्य कोई विज्ञान तो रहा नहीं। इस ज्ञानने तो घटको जाना। तब जैसे कि वहाँपर ज्ञान अपनेका सम्वेदक नहीं है इसी प्रकार सुख आदिक ज्ञान भी अपनेका सम्वेदक न बनेगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह तुलना यों नहीं दी जा सकती कि घट आदिका ज्ञान हो अथवा सुख आदिकका ज्ञान हो, ज्ञान तो स्वरूप सम्वेदक है ना ! तो किसीका भी ज्ञान हुआ उस ज्ञानने अपने स्वरूपका सम्वेदन करते हुए ही तो परसम्वेदकता धारण की है अर्थात् कोई भी ज्ञान हो, जो भी परतत्त्वको जानेगा वह अपने आपका सम्वेदन करता हुआ जानेगा। जैसे कि एक स्थूल दृष्टान्त लीजिए ! कोई भी दीपक यदि परपदार्थका प्रकाशक बनता है तो वह अपने आपके स्वरूपको प्रकाशित करता हुआ ही परका प्रकाशक बनता है। यों ही समझिये कि सभी ज्ञान चाहे कोई घट आदिक पदार्थको जानता हो अथवा सुख आदिक भावको जानता हो, ज्ञान होनेके नातेसे ज्ञानमें यह स्वरूप पड़ा ही है कि वह अपना स्वरूप सम्वेदन करता हुआ ही परका ज्ञाता बनता है। इस तरह सभी ज्ञानोंमें स्वसम्वेदनपना सिद्ध है। सभी ज्ञानोंका स्वरूप ही यह है कि स्वपर व्यवसायकपना ज्ञानमें हुआ करता है। ज्ञान स्वके स्वरूपको भी जानता है। प्रत्येक जीवका ज्ञान चाहे तर्कणा-शक्ति इतनी विशिष्ट न हो, वह अपने आपमें इस प्रकारका तर्क न बना सके। लेकिन ज्ञानका यह स्वभाव ही है कि वह ज्ञान स्वका निश्चायक होता हुआ परका निश्चायक होता है।

ज्ञानकी जाननक्रियाका स्वात्मामें अविरोधकी सिद्धि— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि स्वात्मामें तो क्रियाका विरोध है। जैसे कि कुल्हाड़ी अपने आपका भेदन नहीं कर पाती। तो जब कोई पदार्थकी क्रिया उसकी अपने आपमें नहीं बन सकती तो ज्ञानकी सम्वेदन क्रिया अपने आपके स्वरूपमें कैसे बन जायगी और तब फिर ज्ञान स्वरूपका सम्वेदक कैसे हो सकता है ? इस शंकापर शंकाकारसे पूछा जाता है कि यह तो बतलावो कि इस ज्ञानके प्रसंगमें जो यह कहा जा रहा है कि स्वात्मामें क्रियाका विरोध होता है। तो उस क्रियाका अर्थ क्या है ? जो क्रिया स्वात्मामें विरोध खाती हो, धात्वर्थरूप है या परिस्पंदरूप ! धात्वर्थ रूप क्रियाका विरोध तो मान नहीं सकते, क्योंकि भवन आदिक क्रियाका पृथ्वी आदिकमें अभाव प्रसंग हो जायगा। यदि धात्वर्थरूप क्रियाका स्वात्मामें विरोध किया जाय तो जितने पदार्थ हैं ये सब सत्तात्मक हैं कि नहीं ? इसमें भवन क्रिया निरन्तर चल रही है। अब धात्वर्थ क्रियासे स्वात्माका विरोध मान लिया तो इसका अर्थ है कि पृथ्वी आदिक सभी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थोंमें अब भवन क्रिया नहीं बन सकती तो फिर सत्ता क्या रही ? पारस्वर्यरूप क्रियाका स्वात्मामें विरोध माननेपर तो सर्व पदार्थोंका अभाव बन बैठेगा। यदि कहो कि परिस्पंदात्मक क्रियाका स्वात्मामें विरोध बताया जा रहा है तो फिर यह बतलावो कि क्रियाका स्वात्मा क्या कहलाता है ? जिसमें कि परिस्पंदात्मक क्रियासे विरोध बताया जा रहा। यदि कहो कि क्रियाका स्वात्मा क्रियात्मक ही है तो भला बतलावो कि क्रियात्मक क्रियामें क्रियाका विरोध कैसे हो जायगा ? यहाँ तो कह रहे हैं कि क्रिया क्रियात्मक है, क्रियाका स्वात्मा स्वरूप क्रियात्मक है। फिर बताते हो कि क्रियाका स्वात्मामें विरोध है। तो परिस्पंदरूप क्रियाको क्रियात्मक माननेपर उसमें क्रियाका विरोध नहीं हो सकता है, क्योंकि स्वरूप कभी अपने आपका विरोधक नहीं बनता। जिस पदार्थका जो स्वरूप है वह स्वरूप अपने ही पदार्थका विरोध करने लगे तब उस पदार्थकी सत्ता कहाँ रह सकी अन्यथा अर्थात् स्वरूप भी यदि अपने आधारका विरोध करने लगे तो जब स्वरूप ही वस्तुका विरोध करने लगा तो सभी पदार्थोंमें स्वरूपरहितताका प्रसंग आ जायगा, सभी पदार्थ स्वरूपरहित हो जायेंगे। जब पदार्थोंका स्वरूप न रहा तो इसका अर्थ है कि पदार्थ कुछ है ही नहीं, सकल शून्य हो जायगा। अतः क्रियात्मक स्वात्मामें क्रियाका विरोध नहीं है।

एक वस्तुके स्वरूपमें विरोधकी चर्चाका अनवसर—और भी देखिये ! विरोध हुआ करता है दो पदार्थोंमें, अब क्रियाको स्वात्मा मान लिया है क्रियात्मा ही स्वरूप ही जब स्वयं है तो उसमें क्रियाका विरोध कैसे ? दो वस्तु हों, दो सत् हों, तब तो उनमें विरोधकी बात विचारी जा सकती है। लेकिन जब यहाँ स्वात्मा वही ही है तो उसमें क्रियाका विरोध कैसे कहा जा सकता है ? यदि कहो कि क्रियावान आत्मा क्रियाका स्वात्मा है। अर्थात् क्रिया जिसके हो उसे क्रियावान कहते हैं। तो क्रियावत् आत्मा क्रियाका स्वात्मा हुआ है। यों दो चीजें तो बन जाती हैं। कहते हैं कि यहाँ भी वस्तुतः चीज तो दो नहीं बनी। बल्कि इस आक्षेपसे तो और सिद्ध कर दिया गया कि वहाँ क्रिया अवश्य है। समस्त क्रियायें क्रियावान द्रव्योंमें ही तो पायी जाती हैं। क्रियावान आत्मा क्रियाका स्वात्मा है, ऐसा कहकर यही तो समर्थित होता कि क्रियावानमें ही समस्त क्रियावोंका समावेश है। तो प्रतीतिका रंचमात्र भी विरोध नहीं है। यदि यह कहो कि क्रियाकरण निष्पादन ये स्वात्मामें विरुद्ध हैं, क्रियाका अर्थ है करण अर्थात् निष्पादन उसका स्वात्मामें विरोध है तब तो सुनो—यह तो नहीं कहा जा रहा कि ज्ञान स्वरूपको उत्पन्न कर रहा है जिससे कि विरोध कहा जाय। करणकी बात तो नहीं है किन्तु ज्ञानमें जो कुछ वर्तना पाया जाता है उसकी बात कही जा रही है इस कारण स्वात्मामें क्रियाका विरोध कहना असिद्ध है। क्रिया रहती ही है स्वात्मामें। तब ज्ञानने जो स्वसम्वेदन किया वह अपने आपमें किया गया इस बातमें कोई विरोध नहीं आता। स्वात्मामें क्रियाका विरोध कैसे असिद्ध है, इसका कुछ स्पष्टीकरण यह है कि अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारणविशेषसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें स्व और परके प्रकाशनका स्वभाव है। जैसे कि प्रदीपमें अपना और परका उद्योत करनेका स्वभाव है। उस ही प्रकार अपने कारणसमूहसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें भी स्व और परके प्रकाशनका स्वभाव पड़ा है। जैसे रूपज्ञानकी उत्पत्तिमें प्रदीप सहकारी होनेसे चक्षुके रूपका उद्योतक कहा जाता है इसी प्रकार स्वरूपज्ञानकी उत्पत्तिमें वह ज्ञान सहकारी होनेसे स्वरूपका उद्योतक भी है। इस प्रकार ज्ञान स्व और परस्वरूपका परिच्छेदक है क्योंकि स्वपररूपके सम्बन्धमें अज्ञान निवृत्ति बन रही है। यदि स्वपररूपके परिच्छेदक अभाव पनेका होता ज्ञानमें तो फिर कभी भी अज्ञान निवृत्तिका वह कारण नहीं बन सकता था। यों हम बिल्कुल सही अविरुद्ध देख रहे हैं कि स्वसम्वेदन तो है अंतस्तत्त्वका लक्षण। अर्थात् ज्ञानमय चेतनका स्वरूप है जो कि पृथ्वी आदिक भूतोंमें नहीं पाया जाता है तब भूत और चेतनमें भिन्न लक्षणपना बिल्कुल प्रसिद्ध है।

भूत और चैतन्यमें उपादान उपादेयभावकी असिद्धिका उद्घाटन—जब भूत और चेतनमें भिन्न लक्षणता सिद्ध हो चुकी है तो वह सिद्ध हुई भिन्नलक्षणता तत्त्वान्तरपनेको भी सिद्ध करती है, और, वह तत्त्वान्तरपना भूत और चेतनमें क्या है ? असजातीयत्व है। अर्थात् भूत और चेतनमें जिन लक्षणोंसे भेद किया गया उन लक्षणोंसे देखा जाय तो वह सजातीय नहीं है। भूत तो अचेतन जातिका है अस्वसंवेदक है और चेतन चेतन जातिका है स्वसंवेदक है। असजातीयपना भी उपादान उपादेयभावके अभावको सिद्ध कर रहा है। चूँकि भूतमें और चेतनमें सजातीयता नहीं है, भिन्न लक्षणता है अतएव वे परस्पर एक दूसरेके उपादान और उपादेय नहीं बन सकते हैं, क्योंकि उपादान और उपादेयपना होनेका प्रयोग सजातीयपना है। जहाँ सजातीयता है वहाँ ही उपादान उपादेय भाव बन सकता है। भूत और चेतनमें अत्यन्त विलक्षणता है। तो ऐसे विजातीय पदार्थमें उपादान उपादेय सम्बन्ध नहीं बन सकता।

भूत और चैतन्यमें उपादानोपादेयभावके अभावके साधक हेतुका विवरण—भूत और चेतनमें उपादान उपादेयभाव नहीं है क्योंकि भिन्न लक्षणपना होनेसे। यह अनुमान प्रयोग इस बातको सिद्ध कर रहा है कि भूत और चेतनमें उपादान उपादेय भाव नहीं है। यह हेतु व्यापक विरुद्ध व्याप्तोलब्धि है ? उपादान उपादेय भाव है व्याप्य, उसका व्यापक बना सजातीयपना। उससे विरुद्ध है तत्त्वान्तरपना। उससे व्याप्त हो रहा है यह विभिन्न लक्षणत्व हेतु। इस तरह यह विभिन्नलक्षणत्व हेतु व्यापक विरुद्ध व्याप्तोलब्धि नामका हेतु है जो कि यह सिद्ध कर रहा है कि भूत और चेतनमें उपादान उपादेयभाव नहीं है विभिन्न लक्षणपना होनेसे। उपादान उपादेय भावमें व्यापक है सजातीयत्व, उससे विरुद्ध है तत्त्वान्तरभाव। उससे जो व्याप्त हो रहा हो विभिन्न लक्षणत्व हेतु उससे चेतन भूतसे उत्पत्ति होनेके अभाव की सिद्धि बन जाती है अर्थात् भूतोंसे चेतन उत्पन्न हो सकता है, भूतोंसे चेतन उत्पन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है यह निराकृत हो जाता है।

सजातीयत्वके व्यापक होनेसे व उपादान उपादेयभावके व्याप्य होनेसे शरीर और घटमें साक्षात् उपादान उपादेयभाव होनेके आक्षेपका अप्रसङ्ग

अब यहाँ कोई ऐसी मनमें शंका करे कि यों तो शरीरादिक व घट आदिक आकार इनका परस्पर उपादान उपादेयभाव हो जायगा क्योंकि देखो ! जो शरीर है वह भी पार्थिवत्वविशिष्ट है और घटादिक तो पार्थिव है ही प्रकट। सिद्धान्ततः देखो शरीर भी पृथ्वी तत्त्व है और घट भी पृथ्वी तत्त्व है और सजातीयको बता दिया है एक दूसरेका उपादान तब घट शरीरसे उत्पन्न हो बैठेगा। उत्तरमें कहते हैं ऐसी शंका न करना चाहिए, क्योंकि व्यापक सजातीयत्वका उपादान उपादेय नामका व्याप्य न होनेपर भी व्यवस्थाका अविरोध है। व्यापक कहलाता है वह जो अपने लक्षितमें पूरेमें रहे और जो उसके विषयमें पूरेमें न रहे वह कहलाता है व्याप्य तो इस नीतिके अनुसार अब परख लीजिए यहाँपर सजातीयत्व विशेषका उपादान उपादेय भावमें व्यापकपना असिद्ध नहीं है, क्योंकि विजातीय रूपसे माने गए जल और अग्निमें सत्त्वादिकके द्वारा सजातीय होनेपर भी उनमें उपादान उपादेयभाव नहीं माना गया है। सजातीयपना होकर भी उपादान उपादेयभाव उनमें हो ही हो ऐसा निर्णय नहीं किया जा रहा है किन्तु यदि उपादान उपादेयभाव हो सकता है तो वह सजातीयमें ही हो सकता है। इस ओरसे नियम है और सर्वथा सजातीयमें उपादान उपादेयभाव मान लिया जाय तो इससे कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। देखो ! चार्वाकोंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुको भिन्न–भिन्न तत्त्व माना है लेकिन वे सब हैं तो सत्। तो सत्त्व आदिक अनेक गुणोंकी दृष्टिसे वे चारों भूत सजातीय हो गए। इस दृष्टिसे सजातीय होनेपर भी उनमें परस्पर उपादान उपादेयभाव चार्वाकोंने नहीं माना है। और, देखिये ! कथंचित् विजातीय होनेपर भी मृतपिण्ड और घटाकारमें उपादान उपादेयभाव सिद्ध हो जाता है। वह कथंचित् विजातीय कैसे है कि उपादेय घटमें तो घटत्व है और मिट्टीमें मिट्टीपना है तब ये तीन दृष्टिसे विजातीय हो गए ना। तिसपर भी घटका उपादान मृतपिण्ड कहा गया है। अब क्यों है वह मृतपिण्ड घटका उपादेय कि पार्थिवत्व आदिक गुणोंसे दोनों सजातीय हैं। पार्थिवत्व एक विशिष्ट सामान्य है और सत्त्व अविशिष्ट सामान्य है। तो पार्थिवत्व आदिक विशिष्ट सामान्यके कारण तो वह मृत्पिण्ड और घटाकार पृथ्वीके हैं इस दृष्टिसे सजातीय हैं और उनमें उपादान उपादेयभाव सिद्ध हो जाता है।

सजातीयत्वमें उपादानोपादेयभावकी व्यवस्थाका विवरण–अब चार्वाक शंका करते हैं–तो फिर सजातीयपना कहाँ निश्चित रहा है ? सजातीयत्व विशेषका तत्त्वान्तर भावसे विरोध कैसे रहेगा ? यहाँ अब इसका समाधान करते हैं। प्रसंग यह है कि जब यह कहा गया कि पार्थिवत्व आदिक गुणके कारण मृतपिण्ड और घट ये सजातीय होगए तो जब सजातीयपना व विजातीयपना दृष्टियोंसे चलता है फिर सजातीय-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पनाका तत्त्वान्तर भावसे विरोध कैसे होगा ? ऐसी शंकाके समाधानमें आचार्य यह कह रहे हैं कि अन्तःगुप्त जो सजातीयपना उसके निमित्तसे उपादान उपादेय भाव बनता है क्योंकि तत्त्वान्तरभूत उन दो पदार्थोंमें सजातीयताकी उपलब्धि नहीं है। देखिये ! प्रतिक्षण पूर्व आकारका परित्याग होता और उत्तर आकारका उत्पाद होता, इतनेपर भी जो उनमें यह वही है, इस प्रकारका विषयभूत जो तत्त्व है उसमें उपादानपनाकी प्रतीति हो रही है। अथवा यों समझिए कि पूर्व आकारमें भी रहने वाले जिस तत्त्वका परित्याग नहीं हुआ और उत्तर आकारमें जो नहीं छूटा उसमें जो यह वही है, इस प्रकारके अन्वय ज्ञानके घटनेका जो विषय है वही तो उपादान है। जिसने पूर्व आकारका परित्याग किया ऐसे द्रव्यके द्वारा स्वीकार किया गया उत्तराकार उपादेय कहलाता है याने कोई कार्य बननेपर उसमें जो यह निरखा जा रहा है कि इससे पूर्व आकारमें रहने वाला तत्त्व झूठा नहीं है तब वह उपादान समझा जाता है । जैसे घड़ा बननेपर भी यह समझा जा रहा है कि पूर्व आकारमें जो मिट्टीपन था वह झूठ नहीं है। घड़ा बननेपर भी वह मिट्टीपन है तब वह उपादान समझा जाता है। और, पूर्व आकार जो एक पिण्ड लौंदा जैसा था वह मिट गया और उस मिट्टी द्रव्यने उत्तर आकारको अंगीकार कर लिया तो इससे यह जान लिया जाता है कि यह घड़ा उपादेय है। इस विधिसे यदि उपादान उपादेय भावकी प्रतीति न मानी जाय तो इसमें अतिप्रसंग आयेंगे। मेचक ज्ञानमें चित्र ज्ञानपनेका अभाव हो जायगा । इससे यह मानना होगा कि सजातीय होनेपर भी जहां यह देखा जाता है कि पूर्व आकारमें रहने वाले तत्त्वका त्याग नहीं हुआ और उत्तर आकारभी अंगीकार कर लिया, साथ ही पूर्वव्यक्त पर्यायको छोड़ दिया तब वहाँ यह समझा जाता है कि इसमें परस्पर उपादान उपादेय भाव है।

तत्त्वान्तरभूतके साथ भिन्नलक्षणत्वकी व्याप्तिके विवरणमें शंका समाधान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि तत्त्वान्तर भावके साथ भिन्न लक्षणपनेकी व्याप्ति किस तरह सिद्ध है ? अर्थात् जो अनुमान यह किया गया है कि चेतन भूतसे तत्त्वान्तर है भिन्न लक्षण वाला होनेसे तो इसमें हेतु तो कहा गया है भिन्न लक्षणपना और साध्य बताया गया है तत्त्वान्तर अर्थात् भिन्न-भिन्न होना। तो यहाँ साध्यके साथ इस हेतुकी व्याप्ति कैसे सिद्ध है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि हेतुकी व्याप्ति सब जगह साध्यके अभावमें साधनके न होनेसे माना जाता है । अर्थात् अन्यथानुत्पत्ति साध्य और साधनकी व्याप्तिको सिद्ध करती है। सो यह बात प्रसिद्ध ही है कि तत्त्वान्तरभावके अभावमें भिन्न लक्षणपना नहीं हुआ करता है। अर्थात् जो एक ही पदार्थ है—उसमें भिन्न लक्षणता नहीं होती है। अब शंकाकार कहता है कि देखिये—जिन चीजोंसे मदिरा बनाया जाता है धातकी, कोदो, गुड़ आदिसे, तो उन वस्तुवोंमें तत्त्वान्तरभाव तो नहीं है। चीज तो एक ही है। इस ही से तो मदिरा बनता है। लेकिन इसमें भिन्न लक्षणपना पाया जा रहा है। कोदो चीज अलग है, जिसे लोग खाया

http://sahjanandvarnishastra.org/

करते हैं, पर मदिरा शराब बोतलोंमें रहती है, जिसे पीकर लोग बेहोश हो जाते हैं, तो लक्षण तो जुदे पाये गये लेकिन तत्त्वान्तरपना नहीं है चीज एक ही है। मदिराका ही तो उपादान है यह धातकी कोदो वगैरह। तो इसमें तत्त्वान्तर भावके साथ भिन्न लक्षणपना देखा गया है। फिर व्याप्ति कैसे तत्त्वान्तरभावके साथ भिन्न लक्षणपनेकी सही हो सकती है? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यहाँ भी अव्याप्ति नहीं बता सकते क्योंकि इन दोनोंमें और मदिरा परिणमनमें भिन्नलक्षणपना सिद्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि वे कोदो आदिक पदार्थ मद उत्पन्न करनेकी शक्ति रख रहे हैं, मदिरा आदिक परिणमनकी तरह। यदि इन धातकी आदिक पदार्थोंमें सर्वथा ही मद उत्पन्न करनेकी शक्ति न मानी जाय तो ये धातकी आदिक पदार्थ फिर मदिरारूप परिणमनकी दशामें भी मद उत्पन्न करनेकी शक्ति न पा सकेंगे। सो यद्यपि इस समय कोदो आदिक पदार्थोंमें मद उत्पन्न करनेकी एकदम व्यक्त स्थिति नहीं है लेकिन शक्ति वहाँ भी मौजूद है। कारणकलापसे जब मदिरा परिणमन बन जाता है उन पदार्थोंका तो उनमें मद जनमकी शक्ति एकदम प्रकट हो जाती है। तो इस तरह उन पदार्थोंमें और मदिरा परिणमनमें भिन्न लक्षणपनेके साथ व्याप्तिका निराकरण नहीं किया जा सकता है।

धातकीमें मदशक्तिकी तरह भूतोंमें चैतन्यशक्ति मान लेनेकी चार्वाककी शंका—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जब यह मान लिया गया कि उन धातकी आदिक पदार्थोंमें मदजनम करनेकी शक्ति मौजूद है तो इस ही तरह भूत और अन्तस्तत्त्व अर्थात् चेतनमें भिन्न लक्षणपना मत हो। जैसे अभी बताया है कि कोदो धातकी गुड़ आदिक पदार्थोंमें और मदिरा परिणमनमें इन दोनोंमें भिन्न लक्षणपना नहीं है तो बस यहाँ बात यह मान लेना चाहिए कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भूतोंमें और चेतनमें भिन्न लक्षणपना नहीं है। यहाँ भी शरीराकार परिणत भूत विशेषोंकी अवस्थासे पहिले भी इन पृथ्वी आदिक भूतोंमें चैतन्य शक्तिका सद्भाव है अन्यथा याने यदि शरीराकार परिणत भौतिक अवस्थासे पहिले जो पृथ्वी आदिक रूपमें ही भूत रह रहे थे उनमें चेतनशक्ति न मानी जाय तो जब शरीर अवस्थासे परिणत हो जाते हैं ये भूत, फिर भी इनमें चेतनकी उत्पत्ति न होगी। इससे सिद्ध है कि जिन पृथ्वी जल आदिक स्कंधोंके मिलनेसे एक शरीरका आकार बना है उन पृथ्वी आदिकमें चेतन तत्त्वको उत्पन्न करनेकी शक्ति थी। और इस तरह भूतसे चेतनकी उत्पत्ति हो जायगी! तो चेतन कोई अलग तत्त्व नहीं है, और जब कोई अलग चीज चेतन सिद्ध न हुआ तो संसार क्या कहलाया? भवान्तरकी प्राप्ति कुछ न रही। तब तो जो अरहंत प्रभुने संसार तत्त्वका स्वरूप कहा है वह मिथ्या हो जायगा ना।

भूत और चैतन्यमें प्रबल प्रसिद्ध भिन्नलक्षणत्व होनेसे भूतमें चैतन्य शक्ति कल्पना करनेकी शंकाका निराकरण—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह भी धारणा रखना मिथ्या है, क्योंकि चेतन अनादि है, अनन्त है, यह प्रमाणसे सिद्ध है अतः चैतन्यकी भूतसे उत्पत्ति मानना प्रमाणसे विरुद्ध है। चेतनके अनादि अनन्तपना, 'आत्मा'वादी दार्शनिकोंने युक्ति व आगमसे भली प्रकार सिद्ध किया है। और फिर इस प्रकार भूतकी पर्याय चेतन है यह बात सिद्ध नहीं हो सकती। यदि चेतनको भूतकी पर्याय सिद्ध करने लगोगे तो कोई यह भी कह सकता कि पृथ्वी आदिक जो तत्व हैं वे चेतनकी पर्यायें हैं। क्योंकि अनादि अनन्तपना दोनोंमें समान है। चेतन भी अनादि अनन्त है और पृथ्वी आदिक स्कंध भी अनादि अनन्त हैं। और कोई दार्शनिक हैं भी ऐसे कि जो पृथ्वी आदिक समस्त विश्वको एक चिद्ब्रह्म की पर्याय मानते हैं। चार्वाकोंने चेतनको भूतकी पर्याय माना तो किन्हीं दार्शनिकोंने भूतोंको चेतनकी पर्याय मान लिया। न भूत चेतनकी पर्याय है न चेतनभूतकी पर्याय है क्योंकि इनमें भिन्न लक्षणपना बराबर पाया जा रहा है। और भिन्न लक्षणपना तत्वान्तरपनेसे व्याप्त है। इस तरह यह भिन्न लक्षणपना नामक हेतुभूत और चैतन्यमें तत्वान्तरपनेको सिद्ध करता ही है। इस प्रकार प्राणियोंका आद्य चेतन परिणाम अर्थात् गर्भावस्थामें प्राप्त चेतन चेतन परिणामके उपादानपूर्वक ही है। अर्थात् गर्भावस्थामें पाया गया चेतन पूर्वभवके चेतन उपादानसे सिद्ध है और इसी प्रकार अन्तिम चेतनका उपादेय भविष्यमें जो अन्य भवमें जन्म होगा उसका आद्य चेतन परिणाम उपादान याने मरनेके बाद फिर जो आगे भवमें जन्म होगा तो अगले भवकी जन्म अवस्थामें पाया गया चेतन इस चेतनके उपादानसे होगा। इस तरह चेतनके उपादानसे होगा। इस तरह इस जीवका पूर्वभव था, इस जीवका उत्तरभव होगा और पूर्वभवका परित्याग कर कर अन्य अन्य भवका परिग्रहण करना इस होका नाम संसार है। इस तरह संसारतत्व प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधा नहीं जाता।

भवान्तरावाप्तिरूप संसारतत्त्वकी आगमप्रमाणसे सिद्धि—देखिये! भवान्तरावाप्तिरूप संसारतत्त्वकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे अब कोई बाधा नहीं आई और न अनुमान प्रमाणसे बाधा आती है। जो पहले चार्वाकने अनुपलब्धि हेतु देकर चेतनेके अभावको सिद्ध करना चाहा था वह अनुमान अब युक्तिसंगत न रहा। इस विषयमें बहुत विवेचन किया जा चुका है। अब बताते हैं कि आगमके द्वारा ऐसे चेतन तत्त्वकी सिद्धिमें कोई बाधा नहीं है। आगम तो उस चैतन्यस्वरूपका प्रतिपादन करने वाला है। कहा भी है तत्वार्थमहासूत्रमें कि "संसारिणस्त्रसस्थावराः"—जीवके मुक्त और संसारी ऐसे दो भेद बताये गये। उनमें संसारी जीवका प्रतिपादक यह सूत्र है। संसारी जीव दो प्रकारके हैं—त्रस और स्थावर। संसारी जीवोंका सद्भाव भी इस सूत्रसे सिद्ध है और त्रस स्थावरोंके रूपमें ये बहुतसे जीव विदित भी हो रहे हैं। संसारी उसे कहते हैं जो एक भवसे दूसरे भवको ग्रहण कर रहे हों ऐसे जीव। और, ऐसे जीव दो प्रकारके पाये जा रहे हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर नाम है उन जीवों का जिन जीवोंके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है। और त्रस कहलाते हैं वे जीव जिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवोंमें स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये ५ इन्द्रियाँ हैं । इस प्रकारके संसारी जीवोंका वर्णन आगमसे सिद्ध है ।

संसारके उपायतत्त्वोंके स्वरूपकी प्रमाणसे अबाधितता—जैसे संसार-तत्त्व अबाधित है उस ही प्रकार संसारका उपाय तत्त्व भी प्रमाणसे बाधित नहीं होता, संसार हुआ परिभ्रमण और संसारका उपाय तत्त्व हुआ कारणभूत परिणाम—मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र । इन ही तीन परिणामोंके कारण यह जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहा है । अपने आपके चैतन्यस्वभावका श्रद्धान न होना और भौतिक शरीरादिकमें यह मैं हूँ, इस प्रकारका अनुभव करना, इसीका नाम मिथ्यादर्शन है और ऐसा ही ज्ञान बनाये रहना सो मिथ्याज्ञान है । शरीरको आत्मा समझकर शरीरके पोषणसे आत्माका पोषण होगा, ऐसी बुद्धि रखकर शरीरके पोषणके साधनमें ही रमना, शरीरके इन्द्रिय विषयोंमें ही रमना यह है मिथ्याचारित्र । याने जो आत्मा का शील स्वभाव है केवल ज्ञाता दृष्टा रहना, इसमें तो उपयोग लगता नहीं और स्वरूप से अत्यन्त भिन्न इन रूपादिक विषयोंमें उपयोग रमाना यह है मिथ्या चारित्र । ये संसारके विषय तत्त्व भी प्रमाणसिद्ध हैं, प्रमाणसे बांधे नहीं जाते । प्रत्यक्ष तो इस उपाय तत्त्वका बाधक होता ही नहीं है । तो संसार भी सिद्ध है और संसारका उपाय तत्त्व भी प्रमाणसे सिद्ध है । तो अरहंत प्रभुने जो इन पदार्थोंका उपदेश किया है वह प्रमाणसे बाधित नहीं होता ।

संसारकारणतत्त्वके स्वरूपको बाधित करनेका प्रयास व उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि संसार निर्हेतुक है अनादि अनन्त होनेसे आकाशकी तरह चूंकि संसार अनादि कालसे चला आ रहा है और और अनन्त काल तक रहेगा इस कारण यह संसार निर्हेतुक है । जैसे आकाश अनादि अनन्त है तो वह निर्हेतुक है ऐसे ही संसार निर्हेतुक है । इस अनुमानसे तो संसारकी सहेतुकतामें बाधा आती है । उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है । पर्यायार्थिक दृष्टिसे संसारका अनादि अनन्तपना सिद्ध नहीं है अर्थात् संसारका परिणाम संसारकी अवस्था का कोई एक एक होती रहती है उसका अन्त है फिर नवीन संसार पर्याय होती है । अथवा किसी जीवका संसार परिणमन सदाके लिये नष्ट होना भी देखा जाता है । जो जीवमुक्त हो गया उसके फिर संसार कहाँ रहा ? तो यों पर्यायार्थिकनयसे संसारमें अनादि अनन्तपना असिद्ध है । और जो संसारका निर्हेतुक सिद्ध करनेके लिये अनुमान दिया है कि संसार निर्हेतुक है अनादि अनन्त होनेसे आकाशकी तरह । इसमें जो दृष्टान्त दिया है आकाश वह साध्य साधनसे विकल है । कोई भी वस्तु हो उसका परिणमन अनादि अनन्त नहीं हो सकता । आकाशका प्रतिक्षण स्वभावपरिणमन है, अगम्य है, फिर भी है ही । सो पर्यायार्थिक दृष्टिसे आकाशको अनादि अनन्त नहीं कह सकते । हाँ द्रव्यार्थिक नयसे संसारको अनादि अनन्त माननेमें नित्यपना माननेमें तो सही बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। सिद्ध साधन है जो बात सही है वह बराबर सिद्ध होती है। किन्तु सुख दुःख आदिक भवोंरूप जो संसार है वह तो निर्हेतुक नहीं है याने प्रत्येक परिणति सहेतुक है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भवविशेषके निमित्तसे संसार होनेकी प्रतीति है। इस तरह संसारको अहेतुक सिद्ध करने वाला अनुमान निर्दोष नहीं है। यों कोई भी अनुमान संसारके कारण तत्त्वका बाधक नहीं है जब संसार सहेतुक सिद्ध हो रहा है तो जो हेतु है वही संसारका कारण है। तो जैसे संसार तत्त्वकी सिद्धिमें कोई प्रमाण बाधा नही दे पाता इसी प्रकार संसारके कारणतत्त्वकी सिद्धिमें भी किसी प्रमाणसे बाधा नहीं आती।

संसारतत्त्वके कारणतत्त्वोंकी आगम प्रमाणसे अबाधितता—संसार तत्त्वके कारणोंका बाधक आगम प्रमाण भी नहीं है। आगम तो संसारके कारण तत्त्वोंका साधक है। तत्त्वार्थ महासूत्रमें कहा है कि "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाय-योगा बन्धहेतव:" इस सूत्रके अनुसार बंधके हेतु मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग बताये गए हैं। जो बंधके हेतु हैं वे ही तो संसारके हेतु हैं। तो इस तरह मोक्ष और मोक्षका कारण तत्त्व संसार और संसारका कारणतत्त्व जो भगवानका अभिमत है वह प्रसिद्ध प्रमाणसे युक्ति शास्त्रसे बाधित नहीं होता, यह बात सिद्ध हो रही है। तब अबाधित इन तत्त्वोंके स्वरूपके सम्बन्धमें अर्हन्तका जो उपदेश है वह युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध है, इस बातको सिद्ध करता है और युक्ति शास्त्रका अवि-रोधीपना निर्दोषपनेको सिद्ध करता है। चूंकि प्रभुके वचन युक्ति शास्त्रसे अविरुद्ध हैं अतएव प्रभु निर्दोष हैं। यों हे प्रभो! तुम ही वह सर्वज्ञ हो और वीतराग हो! तुम ही स्तवनके योग्य हो अन्य कोई नहीं। यह बात जो कारिकामें कही गई है पूर्ण-तया वह युक्त है।

विप्रकर्षी पदार्थोंकी प्रत्यक्षविषयताकी सिद्धि—सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थ ये विप्रकर्षी हैं, फिर भी ये किसीके प्रत्यक्ष हैं। जैसे परमाणु आदिक ये स्वभाव विप्रकर्षी हैं। दृश्य जो पदार्थ हैं, उनमें जो लक्षण पाया जाता उससे भिन्न लक्षण है परमाणु आदिकका। घट आदिक हैं दृश्यस्वभाव तो परमाणु आदिक हैं अदृश्यस्वभाव, इस अदृश्य स्वभावके सम्बन्धीपनेसे विप्रकर्षी हैं परमाणु आदिक तथा रावण, शङ्ख आदिक किस प्रकार भिन्न लक्षणसे सम्बन्धित हैं सो सुनो! वर्तमान काल जैसा जो कुछ है सब जानते ही हैं। उससे भिन्न है अतीत और अनागतकाल। जो वर्तमानकाल का लक्षण है उससे भिन्न है अतीत और अनागत कालका लक्षण। उस भिन्न लक्षणसे सम्बन्धित होनेसे रावण आदिक ये विप्रकर्षी पदार्थ हैं। विप्रकर्षीका अर्थ यह है कि जो अविप्रकर्षी नहीं है, जो हम आप सब सद्मस्थोंके जाननेमें आते हैं उनसे भिन्न लक्षण होना वह विप्रकर्षी और रावण शंख आदिक हुए कालविप्रकर्षी और कुछ होते हैं दूरवर्ती। जो दर्शन योग्य साधनसे भिन्न देश है तो वह भिन्न लक्षण वाला है। जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षेत्र यहाँ हम आप छद्मस्थोंका दिखता है वह तो है उपलब्धि योग्य और उससे भिन्न देश जो दृष्यमान नहीं, अति दूर है वह है अनुपलब्धि योग्य। तो अनुपलब्धि योग्यके सम्बन्धीपनसे समुद्र पर्वत द्वीप आदिक क्षेत्र ये सब दूरवर्ती पदार्थ अनुपलब्धि योग्य विप्रकर्षी हैं। तो यों भिन्न लक्षणसे सम्बन्धीपना होनेसे स्वभाव विप्रकर्षी काल-विप्रकर्षी होनेपर भी ये सब किसीके प्रत्यक्ष सिद्ध होते ही हैं और जिनके ये सब प्रत्यक्ष हैं वे हुए अरहंत, अन्य कोई आप्त नहीं है।

अवीतरागोंके न्यायागमविरुद्धभाषी होनेसे वीतराग अर्हन्तके ही सर्वज्ञत्वकी सिद्धि—यहाँ कोई शंका करता है कि यह कैसे निश्चित् किया कि जिस के ये समस्त विप्रकर्षी पदार्थ प्रत्यक्ष हैं वे भगवान अरहंत ही हैं ? उत्तरमें कहते हैं कि इस हेतुसे निश्चित है कि वे न्याय और आगमके अविरुद्ध भाषी हैं और इनसे भिन्न अन्य अवीतराग पुरुष न्याय और आगमसे विरुद्ध कहने वाले हैं। तो जो न्या-यागमसे अविरुद्ध भाषण करने वाले होते हैं वे निर्दोष नहीं होते। जैसे कि खोटे वैद्य-आदिक। वे न्याय और आगमके विरुद्ध भाषण करते हैं अतएव निर्दोष नहीं हैं। इस प्रकारसे अन्य सराग ऋषिजन भी न्याय और आगमसे विरुद्धाभाषी हैं अतएव वे निर्दोष नहीं हैं। भगवान जो न्याय और आगमके अविरुद्ध कहने वाले हैं उनमें ही निर्दोषता निश्चित होती है। शंकाकार कहता है कि यह तुमने कैसे समझा कि अन-र्हन्त न्याय और आगमके विरुद्धाभाषी हैं ? सो उत्तरमें कहते हैं कि अनर्हन्त न्यायागम के विरुद्धाभाषी हैं यह बात असिद्ध नहीं है। क्योंकि उनके द्वारा अभिमत माने गए मोक्ष और मोक्षके कारण तत्त्व संसार और संसारके कारणतत्त्वमें प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधा आती है। अब किस तरहसे प्रसिद्ध प्रमाणसे उन चार तत्वोंमें बाधा आती है उनको क्रमशः सुनो !

अनार्हत मोक्षस्वरूपमें न्यायागमविरुद्धताका कथन—देखिये ! मोक्षके स्वरूपके सम्बन्धमें किन्हींने माना है कि चैतन्यमात्र स्वरूपमें आत्माके अवस्थान होने का नाम मोक्ष है। वह प्रमाणसे बाधित होता है। चैतन्य विशेष जो अनन्त ज्ञाना-दिक हैं उस स्वरूपमें अवास्थित होनेको मानना युक्ति संगत है उन अनन्त ज्ञाना-दिकोंको छोड़कर चैतन्यमात्र स्वरूप और कुछ क्या है ? अर्थात् पर्यायोंको छोड़कर निष्पर्यायरूपमें क्या स्वभाव रहा करता है इसकी क्या कल्पना की जा सकती है ? अनन्तज्ञानादिक उस चैतन्य मात्र स्वरूपके परिणमन हैं। परिणमन रहित कोई चैतन्यमात्र स्वभाव है और उस स्वभावमें अवस्थित होनेका नाम मोक्ष है यह बात युक्त नहीं बनती। अनन्त ज्ञानादिक आत्माके अस्वरूप नहीं हैं। वे आत्माके स्वरूप ही हैं। यदि अनन्त ज्ञानादिक आत्माके स्वरूप न माने जायें तो सर्वज्ञपनेका विरोध आता है। फिर सर्वज्ञता ही क्या रही ? और सर्वज्ञताकी सिद्धिके सम्बन्धमें काफी प्रकाश डाला जा चुका है सर्वज्ञकी सिद्धि अबाधित होती है तो तथ्य यों स्वीकार करना चाहिए कि चैतन्यमात्र तो आत्माका शाश्वत स्वरूप है। पर वह चैतन्यमात्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणतियोंसे रहित निष्परिणाम कुछ हो सो बात नहीं। उसका विशेष है और वह विशेष है ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक, तो शुद्ध ज्ञान दर्शन आनन्द आदिकमें आत्माके अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है, यह बात तो संगत बनती है। पर जिसका कुछ परिणाम हो नहीं, केवल कथन मात्र है, ऐसे चैतन्यमात्रमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष नहीं बनता।

प्रधानमें सर्वज्ञत्व माननेकी प्रधानवादीकी शंका व उसका समाधान—यहाँ प्रधानवादी शंका करते हैं कि सर्वज्ञपना तो आत्माका स्वरूप नहीं है सर्वज्ञत्व तो प्रधानका स्वरूप है प्रकृतिका है। पुरुष सर्वज्ञ नहीं हुआ करता, क्योंकि आत्मा तो अचेतन है। सांख्य सिद्धान्तमें दो तत्त्व माने गये हैं पुरुष और प्रकृति। तो पुरुष तो अचेतन है और प्रकृतिमें महान् धर्म आता है, अर्थात् एक बुद्धि नामका धर्म आता है। फिर उससे अहंकार बनता है। अहंकारसे गण आदिककी उत्पत्ति होती है। फिर यहाँ रूप विषय इन्द्रिय ये सब सृष्टि बनते हैं। तो यों सारी सृष्टिका मूल कारण प्रकृति है और प्रकृतिसे सर्वप्रथम ज्ञान प्रकट होता है तो ज्ञान प्रकृतिका धर्म है। अतएव पुरुष सर्वज्ञ नहीं बनता। जिसके ज्ञान प्रकट हो वही तो सर्वज्ञ कहला सकता है। ज्ञान प्रकृतिसे ही प्रकट होता है इस कारण आत्माको सर्वज्ञ नहीं बताया जा सकता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रकृति स्वरूपतः अचेतन है अतएव प्रकृति सर्वज्ञ नहीं बन सकती। जैसे कि आकाश स्वरूपतः अचेतन है तो आकाश सर्वज्ञ नहीं हो सकता यों ही प्रकृति भी सर्वज्ञ नहीं हो सकती।

प्रकृतिवादियों द्वारा ज्ञानादिकको अचेतन सिद्ध करनेका प्रयास व उसका समाधान—यहाँ सांख्यसिद्धान्तानुयायी शंका करता है कि ज्ञानादिक तो अचेतन हैं इस कारण ज्ञानादिक भी अचेतन प्रधानके स्वभाव हैं यह बात युक्तिसंगत है। और तब ज्ञानादिकका प्रधानसे उत्पन्न होना और प्रधानका स्वरूप बनना यह सिद्ध हो जायगा। उत्तरमें पूछते हैं कि यह ज्ञान अचेतन है, यह सिद्ध किस तरह होगा? ज्ञानकी अचेतनता सिद्ध नहीं है। इस आक्षेपके उत्तरमें शंकाकार कहता है कि सुनो! ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे। जो जो वस्तुवें उत्पन्न होती हैं वे सब अचेतन हैं जैसे घट पट मकान वस्त्र आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं अतएव वे अचेतन हैं। ऐसे ही ये ज्ञानादिक भी उत्पन्न होते हैं इस कारण अचेतन हैं। यों अनुमान प्रयोगसे ज्ञानादिकका अचेतनपना सिद्ध हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि इस अनुमान ज्ञानादिककी अचेतनता यदि सिद्ध करोगे तो इस हेतुका अनुभवके साथ व्यभिचार आयगा, अर्थात् अनुभव उत्पन्न तो होता परन्तु अचेतन नहीं है। जहाँ हेतु पाया जाय और साध्य न पाया जाय उसे व्यभिचार दोष कहते हैं। तो इस अनुमानमें कि ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे। व्यभिचार दोष यों आता है कि अनुभव उत्पत्तिमान तो है किन्तु अचेतन नहीं है, चेतन है। शंकाकारने भी अनुभवको चेतन माना है। शंकाकार पूछता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि अनुभव उत्पत्तिमान कैसे है ? उत्तरमें कहते हैं कि अनुभव उत्पत्तिमान है सापेक्ष होनेसे। जो जो वस्तुवें परापेक्ष होती हैं वे सब उत्पत्तिमान हैं, जैसे बुद्धि आदिक। सांख्यसिद्धान्तानुयायी मानते हैं कि बुद्धि अचेतन है और बुद्धिको ही अचेतन सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास हैं। तो जैसे बुद्धि परापेक्ष है, प्रकाश, इन्द्रिय मन आदिक अनेककी अपेक्षा रखता है इस कारणसे वह उत्पत्तिमान है। यों ही अनुभव भी परकी अपेक्षा रखता है, बुद्धिकृत अध्यवसायकी अपेक्षा रखता है यह बात शंकाकारके सिद्धान्तसे भी सिद्ध होती है। देखिये ! अनुमान प्रयोग अनुभव परापेक्ष होता है क्योंकि बुद्धिके अध्यवसायकी अपेक्षा रखनेसे। शंकाकार स्वयं यह मानता है कि बुद्धिके द्वारा प्रतिनियत अर्थसे पुरुष जानता है ऐसा उनका सूत्र है बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते। इस सूत्रके अनुसार यह सिद्ध होता है कि अनुभव बुद्धिके अध्यवसाय की अपेक्षा रखता है, जिसका तात्पर्य यह है शंकाकारके सिद्धान्तके अनुसार कि जानन-हार चेतने वाला तो आत्मा है, किन्तु जब बुद्धि द्वारा कोई पदार्थ अध्यवसित हो जाय बुद्धि जब पुरुषको समर्पण करदे किसी पदार्थको तब पुरुष चेतन करता है, जानता है। तो इस तरह यहाँ यह बात प्रकट होती है कि चेतना, जानना, अनुभवना आदि जो पुरुषको हो रहे हैं वे बुद्धिके अध्यवसायकी अपेक्षा रख रहे हैं। और, जब बुद्धिक अध्यवसायकी अपेक्षा रखता है अनुभव तो उत्पत्तिमान सिद्ध हो ही गया। जब उत्पत्ति-मान सिद्ध हो गया तो इस अनुभवके साथ आपके अनुमानका व्यभिचार आयगा ही। देखिये ! यदि अनुभवको बुद्धिके द्वारा अवसित अर्थकी अपेक्षा न रखने वाला माना जाय तो फिर सब जगह सब समय सब जीवोंके अनुभवका प्रसंग आ जायगा और जब सभी जीव सब समय सब पदार्थोंका अनुभव करने लगे तो इससे सिद्ध हुआ कि संसार के सभी जीव सर्वदर्शी बन गए और जब सभी जीव सर्वदर्शी बन गए तो सर्वदर्शी बननेके जो उपाय बताये गए हैं शंकाकारके सिद्धान्तमें भी कि ध्यान रखे, योग रखे तो इन सब उपायोंका करना व्यर्थ हो जायगा। फिर ये सब कारण क्यों किए जायें ? सभी पुरुष सदा ही सर्वज्ञ बन गए, फिर सर्वज्ञ बननेके उपाय मिलनेकी आवश्यकता ही क्या है ? इससे सिद्ध है कि अनुभव बुद्धिकृत अध्यवसायकी अपेक्षा न रखे यह न होगा और, जब अनुभवने बुद्धिके अवसायकी अपेक्षा रखी तो परापेक्षा हुई। परापेक्षी होनेसे अनुभव उत्पत्तिमान हुआ और उन उत्पत्तिमान अनुभवोंके साथ ज्ञानादिककी अचेतनता सिद्ध करने वाले उत्पत्तिमत्व हेतुमें दोष आ गया, तब ज्ञानादिक अचेतन सिद्ध न हो सकेंगे।

ज्ञानादिको अचेतन सिद्ध करनेके लिये शंकाकार द्वारा दिये गए हेतुमें व्यभिचारिताका निराकरण करनेके सम्बन्धमें चर्चा समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि भाई आत्माका जो अनुभव सामान्य है वह तो नित्य है, अनु-त्पत्तिमान है उसके साथ व्यभिचार न आयगा। उत्तरमें कहते हैं कि जैसे अनुभव सामान्यको नित्य और अनुत्पत्तिमान मानते हैं इसी प्रकार ज्ञानादिक सामान्य भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्य होनेसे अनुत्पत्तिमान ही सिद्ध होगा और जब अनुत्पत्तिमान सिद्ध हो गया तो यह अनुमान बनाना कि ज्ञानादिक अचेतन है उत्पत्तिमान होनेसे तो यहाँ हेतु असिद्ध हो गया। शंकाकार कहता है कि ज्ञानादिक विशेष तो उत्पत्तिमान हैं ना! फिर तो हेतु असिद्ध न बना। ज्ञानादिक सामान्यको भले ही नित्य और अनुत्पत्तिमान कह लो, लेकिन ज्ञानादिक विशेष तो उत्पत्तिमान हुआ करते हैं। तब यहाँ हेतु असिद्ध न रहा अर्थात् ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे, इस अनुमानमें ज्ञानादिक कहनेसे ज्ञानविशेषका ग्रहण करियेगा तब इसमें साधन भी आ गया और साध्य भी आ गया। तब तो असिद्ध न कहलायेगा। अनुमान सही बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो इस तरह अनुभव विशेष भी उत्पत्तिमान है। अतएव अनुभव विशेषके साथ आपके हेतुमें अनैकान्तिक दोष आ ही जायगा। याने अनुभव विशेष उत्पत्तिमान तो है लेकिन अचेतन नहीं है, चेतन माना गया है। तो यों हेतु तो घटित हो गया अनुभव विशेषमें कि वह उत्पत्तिमान है, किन्तु साध्य नहीं आ पाया। साध्य है शंकाकारके सिद्धान्तमें अचेतनपना सो अनुभवमें तो अचेतनपना नहीं आया। अनुभव विशेष हो गया विपक्ष और विपक्षमें हेतु देखा जाय तो अनैकान्तिक दोष होता है। अनुभवको विपक्ष यों कहा कि साध्य बनाया है शंकाकारने अचेतन और साध्यमें विपरीत है अनुभव, इस कारण अनैकान्तिक दोष तो हो ही जायगा। यहाँ यह नहीं कह सकते कि अनुभवके विशेष हुआ ही नहीं करते, अनुभव तो केवल सामान्यरूप रहता है। यह बात यों नहीं कह सकते कि यदि अनुभव विशेष न हुआ करे तो अनुभव वस्तु नहीं ठहर सकता फिर तो अनुभवको कुछ चीज सिद्ध करनेके ही लाले पड़ जायेंगे क्योंकि विशेष रहित अनुभवको माननेपर अनुमान प्रयोगसे अवस्तुपना सिद्ध होगा। अनुभवके जब कोई विशेष ही नहीं माने जाते तो अनुभव वस्तु नहीं रहता, क्योंकि जो विशेषरहित हुआ करता है वह खरविषाणवत् असत् है जो वस्तुरहित है ऐसी कल्पना की जाय तो वह सामान्य खरविषाणवत् असत् है। अनुभव विशेष न माना जाय और केवल अनुभव सामान्य माना जाय तो विशेषरहित होनेसे अनुभव विशेष न ठहरेगा।

सकलविशेषरहितके अवस्तुत्वप्रसंग निवारणके प्रयासमें शंकाकारकी शंका व उसका समाधान—शङ्काकार कहता है कि इस अनुमान प्रयोगमें हेतुका आत्माके साथ अनैकान्तिक दोष होगा। जो अनुमान प्रयोग किया गया है कि अनुभव विशेष नहीं है समस्त विशेषोंसे रहित होनेसे। तो देखिये! आत्मामें हेतु तो पाया गया, पर साध्य नहीं पाया गया। हेतु तो है समस्त विशेषोंसे रहित होनेसे, सो आत्मा समस्त विशेषोंसे तो रहित है, पर अवस्तु नहीं है, वस्तुभूत पदार्थ है। तब उस अनुमानमें दिए गए हेतुमें अनैकान्तिक दोष आता है। उत्तरमें कहते हैं कि समस्त विशेष रहित होनेसे अनुभवको अवस्तु सिद्ध करने वाले अनुमानमें हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित नहीं है क्योंकि आत्मा भी सामान्य-विशेषात्मक है। वहाँ हेतु रहता हो, साध्य न रहता हो, यह बात घटित नहीं होती। याने समस्त विशेषों रहितपना हो आत्मामें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और फिर भी आत्मा वस्तु हो, ऐसी बात नहीं। आत्मा वस्तु भी है और विशेषसहित भी है। आत्मा भी सामान्य-विशेषात्मक है। यदि आत्मा सामान्य-विशेषात्मक न हो तो खरविषाणकी तरह वह भी अवस्तु बन जायगा। साथ ही यह भी समझें कि ज्ञान आदिक अचेतन सिद्ध करनेके लिए जो उत्पत्तिमान हेतु दिया है वह उत्पत्तिमान हेतु कालात्ययापदिष्ट है अर्थात् प्रत्यक्षवाधित पक्ष हुआ और पक्षके प्रत्यक्षवाधित होनेके बाद उसमें कोई अनुमानका प्रयोग बने तो वह हेतु कालात्ययापदिष्ठ कहलाता है। देखिये—शंकाकारके अनुमानमें पक्ष बनाये गए हैं कि ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे। तो ज्ञानादिक अचेतन है ही नहीं। स्वसम्वेदन प्रत्यक्षरूप होनेसे ज्ञानादिकमें चेतनता की प्रसिद्धि है ज्ञानादिक अचेतन हैं ही नहीं। तो ज्ञानादिककी अचेतनता स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे वाधित है और प्रत्यक्षवाधित पक्षमें यह हेतु देकर साध्य सिद्ध किया जा रहा है। तो प्रत्यक्ष वाधित पक्षमें जो हेतुका प्रयोग होगा वह हेतु कालात्ययापदिष्ठसे दूषित है। तो इस प्रकार भी ज्ञानादिककी अचेतनता सिद्ध नहीं की जा सकती। और, जब ज्ञानादिक अचेतन न ठहरे तो वे प्रधानके स्वरूप नहीं कहे जा सकते। जब प्रधानके स्वरूप न रहे तो वे आत्माके स्वरूप कहलाये। और, यों आत्माका स्वरूप सिद्ध होनेसे फिर मोक्ष तत्त्व, संसारतत्त्व और उनका कारणतत्त्व ये सब अवाधित सिद्ध होते हैं।

ज्ञानको चैतन्य स्वभाव न मानकर चेतनात्मसंसर्गसे अचेतन ज्ञानमें चेतनताकी प्रतीति माननेपर दोषापत्तियाँ—अब सांख्य कहते हैं कि चेतन आत्मा के संसर्गसे अचेतन होनेपर भी ज्ञानादिककी चेतनपनेके रूपसे प्रतीति होती है सो वह प्रत्यक्षसे तो भ्रान्त ही है। इसी बातको सांख्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि चूंकि आत्मामें चेतनता सिद्ध है इस कारणसे इस चेतनके संसर्गसे अचेतन ज्ञानादिक भी चेतनकी तरह होते हैं। बस यही ज्ञानादिककी चेतनता लगनेकी बात जाननी चाहिये। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बिना सोचे विचारे कही हुई बात है। यदि चेतनके संसर्गसे अचेतन चेतनकी तरह लगे तो शरीरादिकका तो चेतनसे संसर्ग है। तब शरीरादिकमें भी चेतनताकी प्रतीतिका प्रसंग आ जायगा। इस कारण यह बात कहना अयुक्त है कि चेतनके संसर्गसे अचेतन ज्ञान चेतनकी तरह जचता है। ज्ञान स्वयं स्वभावसे चेतन है। सम्बन्ध होनेपर भी जिसका जो स्वरूप है उस स्वरूपको तजता नहीं है। यहाँ सांख्य कहते हैं कि शरीरादिकमें आत्माका संसर्ग विशेष असंभव है, बुद्धि आदिक भी शरीरादिकमें हो ही नहीं सकते। अतएव बुद्धि आदिकका आत्माके साथ संसर्ग विशेष है। शरीरमें बुद्धि होती ही नहीं और तब न शरीर चेतनकी तरह जच सकेगा और न आत्माके बुद्धि आदिकके संसर्ग विशेषमें कोई बाधा आयगी। समाधानमें पूछते हैं कि यदि यह बात मान रहे हो कि आत्माका शरीर आदिकमें संसर्गविशेषकी असंभवता है बुद्धि आदिकमें सम्भवता है सो बुद्धिका आत्मासे ही संसर्ग विशेष है। तो फिर वह संसर्ग विशेष कहलाया क्या? सिवाय एक कथंचित् तादा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

त्म्य माननेके । जब आत्माके क्षेत्रमें शरीर भी है और आत्माके संसर्गसे शरीर चेतन की तरह जचता नहीं और बुद्धि ही चेतनवत जचती है तो इसमें जो संसर्ग विशेष हैं वह भी कथंचित् तादात्म्य ही तो है और कथंचित् तादात्म्य होनेका भाव यह है कि ज्ञान चैतन्यस्वरूप है। अब यहाँ सांख्य यह मनमें सोच सकते हैं कि बुद्धि तो पुण्य पाप आदिकके द्वारा रची गई है। तो अदृष्टकृत होनेके कारण आत्माके साथ बुद्धिका संसर्ग विशेष बनेगा। इसमें तादात्म्य माननेकी जरूरत ही नहीं। तो समाधानमें कहते हैं कि जैसे यह कह रहे हो कि पुण्य पाप आदिकके द्वारा किया गया होना यह विशेषता शरीरादिकमें नहीं है तो यह बात अपने सिद्धान्तसे ही विरुद्ध है। जैसे बुद्धि पुण्य पाप आदिकके द्वारा रचित मानते हो उसी प्रकार शरीरादिक भी पुण्य पाप आदिकके द्वारा रचित माने गए हैं, इस कारण ज्ञानादिक अचेतन नहीं हैं। क्योंकि ज्ञानादिकमें स्व सम्विदितपना है। जैसे कि अनुभव अचेतन नहीं है। सांख्य सिद्धान्तके अनुसार भी अनुभव अचेतन नहीं है क्योंकि वह स्वसम्विदित है। तो इसी प्रकार ये ज्ञानादिक भी स्वसम्विदित है फिर ज्ञानादिक अचेतन नहीं हो सकते।

परसंवेदनान्यथानुपपत्तिसे ज्ञानमें स्वसंवेदनताकी सिद्धि और अनन्तज्ञानादि स्वरूपमें अवस्थान होनेमें मोक्षस्वरूपकी सिद्धि—यदि कोई यहाँ यह जानना चाहे कि ज्ञानादिक स्वसम्वेदन कैसे हैं तो इस विषयमें तो बहुत कुछ वर्णन किया है। सामान्यतया इतना ही समझलो कि वे ज्ञानादिक स्वसम्विदित हैं अन्यथा परसम्वेदनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती थी। ज्ञान चूंकि परपदार्थका सम्वेदन करता है सो यह परकी जानकारी तभी ज्ञानमें बनती है जबकि ज्ञान स्वसम्विदित हो। और, जब ज्ञान स्वसम्विदित सिद्ध हो गया कि ज्ञानादिक आत्माके स्वभाव हैं चेतन होनेसे, जैसे कि अनुभव। अनुभव चेतनरूप है अतएव अनुभवको आत्माका स्वभाव माना है। इसी प्रकार ज्ञानादिक भी चेतनरूप हैं। अतएव ये भी आत्माके स्वभाव हैं। इस तरह जब ज्ञानादिक आत्माके स्वभाव बन गए तब यह कहना कि चैतन्यमात्रमें अवस्थान होना मोक्ष है याने ज्ञानादिक विशेषोंसे रहित केवल चैतन्यमात्रमें ठहरना इसका नाम मोक्ष है, सो यह बात युक्त नहीं बनती, क्योंकि ज्ञानादिक विशेषोंसे रहित चैतन्यमात्र कुछ वस्तु ही नहीं है। तब अनन्तज्ञान आदिक जो चैतन्य विशेष हैं उनमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है, यह बात सिद्ध होती है।

बुद्ध्यादि गुणोच्छेदरूप मुक्तिस्वरूपके मन्तव्यकी मीमांसा—अब इस प्रकरणको सुनकर वैशेषिक और नैयायिक सिद्धान्तके अनुयायी कहते हैं कि बात ठीक ही कही गई कि चैतन्यमात्रमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष नहीं है। बात यह है कि बुद्धि आदिक जितने भी विशेष गुण हैं जब उनका उच्छेद हो जाय तब आत्मस्वभावमें अवस्थान होनेका नाम मुक्ति है। न तो वहां चैतन्यमात्र कुछ है और न अनन्त ज्ञानादिक चैतन्यविशेष कुछ है। समग्र गुणोंका विनाश हो जानेसे जो आत्मस्वरूपमें अव-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थान होता है उसका नाम मोक्ष है। सो उत्तरमें कहते हैं कि यह मंतव्य तो स्पष्ट बाधित है। इस विषयमें पहिले भी खूब वर्णन किया जा चुका है और जब कि आत्मा अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप है और इसीसे यह सिद्ध होता है कि आत्माके स्वरूपकी उपलब्धिका नाम मुक्ति है और वह उपलब्धि है अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त आनंद, अनन्त शक्तिरूपमें। तब गुणोंके उच्छेदका नाम मुक्ति नहीं है किन्तु गुणोंके शुद्ध पूर्ण विकासका नाम मुक्ति है।

विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुसे ज्ञानादिकको आत्मासे भिन्न बताकर आत्माके ज्ञानस्वभावताकी सिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन—अब यहाँ योग और वैशेषिक कहते हैं कि बुद्धि आदिक आत्माके स्वरूप ही नहीं हैं, फिर उनके विकासका नाम मोक्ष है यह कथन कैसे युक्त हो सकता है? देखिये—अनुमान प्रयोगसे यह बात सिद्ध है कि बुद्धि आदिक आत्माके स्वरूप नहीं है क्योंकि आत्मासे भिन्न होनेसे। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये एक दूसरेसे भिन्न हैं तो घटका स्वरूप पट नहीं है, पटका स्वरूप घट नहीं है, इसी प्रकार बुद्धि आदिक गुण भी आत्मासे भिन्न हैं अतएव बुद्धि आदिक पुरुषके स्वरूप नहीं हैं। ये ज्ञानादिक पुरुषसे भिन्न हैं यह बात भी अनुमान प्रमाणसे सिद्ध होती है। अनुमान प्रयोग है कि ज्ञानादिक गुण आत्मासे भिन्न हैं, क्योंकि आत्मासे विरुद्ध धर्मका आधार होनेसे, घट पट आदिककी तरह। जैसे घटका धर्म है मिट्टीपन, पटका धर्म है तंतुवोंसे जैसा निर्माण हुआ है ऐसा पटत्व धर्म तो घटसे विरुद्ध धर्म है ना पटमें। तो घट और पट ये दोनों परस्पर भिन्न है, इस ही प्रकार आत्माका स्वरूप तो है उत्पादविनाश न होनेका, अनुत्पन्न अविनाशीपना रहनेका और बुद्धि आदिक गुणोंका धर्म है उत्पादविनाश धर्म वाला होना, तब ये विरुद्ध धर्मके अधिकरण हैं ना! अतएव सिद्ध है कि ज्ञानादिक गुणोंमें आत्मासे विरुद्ध धर्मों की अधिकरणता है और इस कारण ज्ञानादिक गुण आत्मासे भिन्न हैं।

शंकाकार द्वारा प्रस्तुत विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुकी व्यभिचारिता बताकर कथंचित् विरुद्ध धर्मादिकरणत्व होनेपर भी भिन्नवस्तुत्वकी सिद्धिका अनियमन—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि उक्त कथन अयुक्त है। विरुद्ध धर्मों का अधिकरणपना होनेपर भी सर्वथा भेद सिद्ध नहीं होता। जैसे कि मेचक ज्ञान और मेचक ज्ञानके विभिन्न आकार। मेचक ज्ञान उसे कहते हैं कि समस्त पदार्थोंको एक साथ जाननेके कारण जो ज्ञानका एक मिश्र स्वरूप हुआ, सारे पदार्थ प्रतिबिम्बित होनेसे जैसे यहाँ मेचक ज्ञानमें एकपना मानते हैं तो है एक और उसमें जिन आकारों की प्रतिबिम्बितता हुई है या इस मेचक ज्ञानकी जो व्यक्तियाँ बनी हैं वे हैं अनेक, जैसे नील पीत आदिक पदार्थ प्रतिभासमें आये तो मेचक ज्ञान एक है और उस ज्ञानके आकार अनेक हैं। तो इसमें विरुद्ध धर्मकी अधिकरणता बन गयी ना। मेचक ज्ञानमें एकत्व धर्म है और ज्ञानाकारमें अनेकत्व धर्म है, सो विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेपर भी मेचक ज्ञानमें और उस ज्ञानमें जो आकार प्रतिबिम्ब विशेष होते हैं उनमें भेद नहीं माना गया है। शंकाकारने मेचक ज्ञान और उस ज्ञानका प्रतिभास विशेष इनमें भेद नहीं माना क्योंकि यदि यहाँ भेद मान लेते हैं तो मेचक ज्ञानका स्वरूप ही नहीं बन सकता है। तो देखो—विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना है ना मेचकज्ञानमें और ज्ञानान्तरमें फिर भी भेद वहाँ सिद्ध नहीं है, इस ही प्रकार ज्ञान आदिक विशेष गुणों में उत्पादव्यय धर्मका आधार है और आत्मामें अनुत्पन्न अविनाशी धर्मका आधार है इतनेपर भी इनमें भेद सिद्ध नहीं होता कारण यह है कि वे सब एक वस्तु है।

आत्मा और ज्ञानादिक गुणोंमें भेद सिद्ध करनेके लिये शंकाकार-प्रयुक्त विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुकी व्यभिचारिता दूर करनेका विफल प्रयास—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि एक साथ अनेक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला मेचक ज्ञान एक ही है। वहाँ अनेक प्रतिभास विशेषोंका होना नहीं है जिससे कि विरुद्ध धर्मका अधिकरण बताया जाय और यह सिद्ध किया जाय कि देखो मेचक ज्ञानमें विरुद्ध धर्मोका अधिकरण हो गया है और ऐसा कहकर विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना अभेदमें भी बता दिया जाय याने मेचक ज्ञानमें भी बता दिया जाय और ज्ञानादिक गुणोंमें अभेद सिद्ध करनेका प्रयास किया जाय। अब इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यदि ऐसा मानते हो कि एक साथ अनेक पदार्थोंका ग्रहण करने वाला मेचक ज्ञान एक ही है तो यह बतलावो कि वह मेचक ज्ञान अनेक पदार्थोंका एक साथ जो ग्रहण कर रहा है सो क्या अनेक शक्तियोंसे ग्रहण कर रहा है अथवा एक शक्तिसे ग्रहण कर रहा है? यदि कहो कि मेचक ज्ञान एक साथ अनेक पदार्थोंका अनेक पदार्थोंको अनेक शक्तियोंसे ग्रहण कर रहा है तो यहाँ अब देखिये कितना विरुद्ध धर्म का समावेश हो रहा कि वह एक ज्ञान अनेक शक्तियात्मक है। तभी तो एक मेचक ज्ञान अपनी अनेक शक्तियोंके द्वारा एक साथ अनेक पदार्थोंको ग्रहण कर रहा है। तो विरुद्ध धर्मोका अधिकरणपना बन गया ना और यही तो कहा जा रहा था कि मेचक ज्ञान और तदाकार अर्थात् ज्ञान विशेष इनमें विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना है अर्थात् मेचक ज्ञान तो एकत्व धर्मका अधिकरण है और प्रतिभास विशेष अनेकत्व धर्मका अधिकरण है, मेचक ज्ञान एक है प्रतिभास विशेष अनेक हैं। यों विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना होनेपर भी इनमें भेद नहीं माना गया है। इस ही प्रकार आत्मा और ज्ञान आदिक गुण विशेषोंमें विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना होनेपर भी भेद सिद्ध नहीं होता है। तब वे ज्ञानादिक आत्माके स्वरूप ही हैं यह सिद्ध हो जाता है।

अनेक शक्तियोंको मेचकज्ञानसे पृथक मानकर प्रसंगपरिहारका विफल प्रयास—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि मेचक ज्ञानसे अनेक शक्तियाँ पृथक् हैं। जो अनेक शक्तियाँ अनेकात्व धर्मके आधारभूत हैं वे हैं मेचक ज्ञानसे भिन्न। सो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेचक ज्ञान तो है पृथक् चीज और शक्तियाँ जो कि अनेकत्व धर्मके आधारभूत हैं वे हैं पृथक्। तब एक वस्तुमें विरुद्ध धर्मकी उपलब्धि कैसे हुई, और जब एक वस्तुमें विरुद्ध धर्म नहीं पाये गए तो भिन्नत्व साध्यमें प्रयुक्त धर्माधिकरणत्व हेतुको दोष देना और दोष देकर फिर यह सिद्ध करना कि आत्माके अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप हैं, यह कैसे युक्त हो सकता है ? इस प्रश्न पर उत्तरमें पूछते हैं कि यदि उस मेचक ज्ञानमें अनेक शक्तियाँ मेचक ज्ञानसे पृथक हैं तो वे अनेक शक्तियाँ इस मेचक ज्ञानकी हैं ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ? मेचक ज्ञानका अर्थ है चित्रज्ञान याने ऐसा ज्ञान जिसमें विभिन्न अनेक पदार्थ एक साथ प्रतिबिम्बित होते हैं और वे चित्रविचित्र रूपवाले ज्ञान बन जाते हैं, ऐसे चित्रज्ञानका नाम है मेचक ज्ञान। अब मेचक ज्ञानमें जो अनेक पदार्थोंको एक साथ ग्रहण करनेकी बात बन रही है उस सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि जब ये अनेक शक्तियाँ जिनके द्वारा यह मेचक ज्ञान समस्त पदार्थोंको प्रतिबिम्बित कर रहा था वह है भिन्न तो अब यहाँ यह कैसे कहा जायगा कि ये अनेक शक्तियाँ इस मेचक ज्ञानकी हैं क्योंकि अब वे अनेक शक्तियाँ तो मेचक ज्ञानसे पृथक् हैं, जैसे कि घट पट आदिक अनेक पदार्थ मेचक ज्ञानसे पृथक् हैं ना, तो उनमें यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ज्ञानके ये घट पट आदिक पदार्थ हैं, उनमें कोई सम्बन्ध ही नहीं, भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। तो इस ही प्रकार जब मेचक ज्ञानकी अनेक शक्तियाँ उस ज्ञानसे भिन्न मान ली गई तो वे अनेक शक्तियाँ इस चित्रज्ञानकी हैं यह कैसे कहा जा सकेगा ?

अनेक शक्तियोंका मेचकज्ञान सम्बन्धित्व सिद्ध किये जानेकी अशक्यता की नौबत—शंकाकार कहता है कि ये शक्तियाँ मेचक ज्ञानकी हैं यह बात समवाय सम्बन्धसे कही जायगी। मेचक ज्ञानका इन शक्तियोंके साथ है समवाय सम्बन्ध इस कारण यह कहा जा सकता है कि ये अनेक शक्तियाँ मेचक ज्ञानमें हैं। इसपर उत्तरमें पूछते हैं कि अनेक शक्तियोंके साथ जो मेचक ज्ञानका सम्बन्ध माना जा रहा है तो जो इस मेचक ज्ञानका अनेक शक्तियोंके साथ जो समवाय सम्बन्ध बनाया जा रहा है सो वह क्या एक रूपसे बनाया जा रहा है या अनेक रूपसे बनाया जा रहा है ? यदि कहो कि मेचक ज्ञानका अनेक शक्तियोंके साथ समवाय सम्बन्ध एक रूपसे बनाया जा रहा है तब तो वह मेचक ज्ञान अनेक रूप कैसे कहा जा सकता है। जब एक रूपसे अथवा अनेक शक्तियोंके साथ चित्रज्ञानका सम्बन्ध है तो एकरूपसे है ना, तब मेचक ज्ञान अनेक रूप कैसे हो जायगा ? यदि कहो कि चित्रज्ञान सम्बन्धी जो अनेक रूप हैं अर्थात् अनेक विभिन्न पदार्थोंको ग्रहण करनेसे चित्रज्ञानमें जो अनेकाकारता आयी है वह अनेक रूप भी उस चित्रज्ञानसे भिन्न है इस कारण चित्रज्ञान एक ही कहलायेगा। यदि ऐसा कहते हो तब फिर यह भी बताओ कि अनेक रूप चित्रज्ञानका है यह कैसे व्यपदेश किया जा सकता है ? जब वह अनेक रूप भी चित्रज्ञानसे पृथक् मान लिया गया तो वह अनेक रूप चित्रज्ञानका है ऐसा कैसे कहा जायगा ? और, जब न कहा जायगा तो चित्रज्ञान ही क्या रहा ? चित्रज्ञान तो तब कहलाता है जब कोई ज्ञान नाना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आकारोंमें प्रतिबिम्बित होता हो। अब ये अनेक रूप भी चित्रज्ञानके न माने जायें तो चित्रज्ञानका अर्थ ही क्या रहा ? और, माना जाता है तो किस तरह माना जायगा ? क्योंकि अब ये अनेक रूप भी चित्रज्ञानसे पृथक् मान लिए गए। यदि कहो कि यह भी सम्बन्धसे मान लिया जायगा याने चित्रज्ञानमें जो अनेकरूपता है वह भी समवाय सम्बन्धसे है तब तो इसमें वही दोष लगेगा जिस दोषकी चर्चा की जा रही है और फिर उसमें विकल्प उठाते जायें, कभी समाधान ही नहीं हो सकता। इस कारण अनेक शक्तियोंके साथ मेचक ज्ञानका समवाय सम्बन्ध एक रूपसे होता है यह तो नहीं कह सकते।

एक ही रूपसे अनेक शक्तियोंका मेचकज्ञानसे सम्बन्ध माननेमें दोषापत्ति—अब यदि यह मानोगे कि अनेक शक्तियोंके साथ मेचक ज्ञान एक ही रूपसे सम्बन्धित होता है तब तो फिर मेचक ज्ञानका अनेक विशेषणत्व कहना विरुद्ध है। अर्थात् यह मेचक ज्ञान अनेक शक्तियों वाला है, अनेक शक्तियोंसे एक साथ अनेक पदार्थोंका ग्रहण करता है। यह सारा कथन विरुद्ध बन जायगा। देखिये ! पीत पदार्थ को ग्रहण करनेकी शक्तिके साथ यह मेचक ज्ञान जिस स्वभावसे सम्बन्धित होता है यदि उस ही स्वभावसे नील आदिक अनेक पदार्थोंको ग्रहण करनेकी शक्तिके साथ मेचक ज्ञान सम्बन्धित होता है तब तो पीतका ग्रहण करने वाला है मेचक ज्ञान यह विशेषण ही रहेगा, किन्तु यह मेचक ज्ञान नील आदिक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला है यह विशेषण न बन सकेगा तब तो यह मेचक ज्ञान एक पीत ज्ञान ही हुआ, किन्तु मेचक न रह सका क्योंकि वह तो एक पीले पदार्थको ही ग्रहण कर रहा है, अन्य पदार्थका तो ग्रहण हो ही न हो सका तो अनेक शक्तियोंके साथ मेचक ज्ञानका सम्बंध अनेक रूपसे भी न बन सका।

मेचक ज्ञानको एक शक्तिके द्वारा अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाला माननेरूप द्वितीय विकल्पका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि वह मेचक ज्ञान एक शक्तिसे अनेक अर्थोंका ग्रहण करता है ऐसा दूसरा विकल्प मान लीजिए। तो इसपर उत्तर देते हैं कि यदि ऐसा मान लिया जाता है कि मेचक ज्ञान अनेक शक्तियोंके द्वारा अनेक अर्थोंको ग्रहण करता है तो भी यह प्रसंग आ जायगा ही कि मेचक ज्ञान समस्त पदार्थोंको ग्रहण करले। फिर तो कोई असर्वज्ञ न रहेगा। मेचक ज्ञान नील पीत आदिक किसी प्रतिनियत केवल पदार्थको ही ग्रहण नहीं करता किन्तु समस्त पदार्थोंको ग्रहण करने वाला हो जायगा। किस तरह सो सुनो ! जैसे कि पीत को ग्रहण करने वाले शक्तिके द्वारा नील आदिक अनेक पदार्थोंका ग्रहण कर लिया उसी प्रकार उस ही एक पीत ग्रहण करने वाली शक्तिके द्वारा अतीत अनागत वर्तमान समस्त पदार्थोंको ग्रहण करले इसका कैसे निवारण किया जायगा ? और, फिर इस तरह देखिये ! उस एक मेचक ज्ञानके द्वारा विश्वके समस्त अर्थोंका ग्रहण करनेका

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रसंग आ गया नो, तो यह भी बात नहीं बन सकती कि मेचक ज्ञान एक शक्तिके द्वारा अनेक अर्थोंको ग्रहण करले यह भी विकल्प नहीं बन सकता।

मेचकज्ञानमें अर्थग्राहिता सिद्ध करनेका शंकाकारका अन्तिम कथन और उसका समाधान व निष्कर्ष—अब यहां शंकाकार कहता है कि बात यह है कि न तो हम लोग यह मानते हैं कि पीत पदार्थोंको ग्रहण करने वाला मेचक ज्ञान है, और न हम यह मानते हैं कि नीलको ग्रहण करनेकी शक्तिके द्वारा पीत नील आदिक अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाला मेचक ज्ञान है तो फिर क्या माना है ? यह माना है कि नील पीत आदिक प्रतिनियत अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाली एक शक्ति के द्वारा अनेक अर्थोंको मेचक ज्ञान ग्रहण करता है। इस चर्चाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो कार्यभेद न रहा। कार्यभेद होता है कारण शक्तिकी भेद व्यवस्थाके हेतुसे। अर्थात् जहाँ कारण शक्तियां भिन्न हैं वहाँ ही तो कार्यका भेद बताया जा सकता है। अब मेचक ज्ञानमें शक्ति तो एक ही मानी, समस्त पदार्थों को ग्रहण करनेके लिये। शक्तियाँ वहाँ अनेक है नहीं। तब कारण शक्तिका भेद न माननेपर घट, पट आदिक कार्यभेद कैसे बन जायेंगे ? याने इस मेचक ज्ञानने घटको जाना, पटको जाना, इस प्रकारका विभिन्न कार्यभेद बन कैसे जायगा ? और, जब कार्यभेद न बना तब सारा विश्व समस्त विश्वरूप हो जायगा, क्योंकि हेतु एक है। अब वहाँ यह निर्णय कैसे हो कि यह घड़ा है यह कपड़ा है तब तो सब कुछ सब रूप हो जायगा। वहाँ कुछ भी भिन्नता न रहेगी। और, जब सब कुछ सब रूप हो जायगा, तब यह कथन करना कि समस्त कार्योंकी उत्पत्तिमें ये सब भिन्न-भिन्न कारण हुआ करते हैं, यह विरुद्ध हो जायगा। यौग मतमें जो इसका कथन है कि जितने भी कार्य होते हैं उतने ही कारण हुआ करते हैं। अब यह सिद्धान्त कहाँ रहा ? तब इस सिद्धान्तको माननेके लिये यह मानना होगा कि मेचक ज्ञान अनेक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला है और वह नाना शक्त्यात्मक है।

शंकाकारतप्रस्तु विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुकी मेचकज्ञानके साथ व्यभिचारिता होनेसे भेद सिद्धि करनेमें अक्षमता—शंकाकारके द्वारा माना गया मेचक ज्ञान अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाला और नाना शक्त्यात्मक सिद्ध हुआ है तब देखिये ना कि विरुद्ध धर्मके अधिकरण रूप एक इस मेचक ज्ञानके द्वारा प्रकृत हेतुमें अनैकान्तिक दोष आ ही गया। हेतु है शंकाकारका विरुद्ध धर्मका अधिकरण होनेसे। उसकी मीमांसामें अभी यह बताया था कि विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना अभेदमें भी हो सकता है तब उस प्रसंगमें यह सब विवरण चल रहा है। देखिये— विरुद्ध धर्मका अधिकरण होनेपर यदि भेद ही रहे तो विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना मेचक ज्ञानमें आ गया पर शंकाकारने मेचक ज्ञान और ज्ञानाकारविशेषोंमें भेद नहीं माना है। इसी प्रकार ज्ञानादिकका आत्माके साथ भेद एकान्तकी सिद्धि नहीं होती है। और जब आत्माका ज्ञानादिकके साथ भेद सिद्ध न हुआ तो ऐसा कहा जा सकता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि आत्मा अनन्तर ज्ञानादिक रूप नहीं होता। आत्मा अनन्त ज्ञानादिक रूप है। और गुण गुणीमें भिन्नताकी शंका तो आगे कारिकामें निराकरण किया जायगा। जब यह कारिका आयगी, एक स्यानेकवर्तिन, आदिक वहाँ इसका निराकरण किया जायगा तो गुण गुणीमें भेद नहीं है किन्तु समझनेके लिये उसमें भेद व्यवहार किया जाता है। ज्ञानादिक गुण आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं ऐसा कहा नहीं जा सकता। तब फिर विशेष गुणोंकी निवृत्ति होनेका नाम मुक्ति है यह कैसे युक्त होगा? यहाँ वैशेषिक और नैयायिक बुद्धि आदिक समस्त गुणोंके उच्छेद को भी मोक्ष मान रहे हैं। उसकी असंगतता दिखाई जा रही है। आर्हत उपदेशमें जो अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप के लाभका नाम मोक्ष कहा है उसके विरुद्धमें यह शंका थी कि गुणोंका लाभ तो क्या गुणोंके उच्छेद होनेको मोक्ष कहते हैं। उसके निराकरणमें यह सिद्ध किया है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। और जब उस ज्ञानस्वभावका शुद्ध विकास होता है तब वह अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप बन जाता है, उस हीका नाम मुक्ति है।

मुक्तिमें धर्म अधर्मका अभाव होनेसे व मुक्त आत्माके मनका संयोग न रहनेसे ज्ञानादिगुणोंके उच्छेदमें ही मुक्तिकी सिद्धिका योग द्वारा कथन—
अब यहां योग कहते हैं कि देखिये— धर्म और अधर्मकी, पुण्य और पापकी पूर्णतया निवृत्ति मुक्तिमें मानी ही जानी चाहिए जिस आत्माकी मुक्ति हुई है उस आत्माके धर्म अधर्म रंच मात्र भी नहीं रहते, यह तो मानना ही पड़ेगा, अन्यथा अर्थात् मुक्तिमें भी धर्म और अधर्मका सद्भाव माना जाय तो मुक्ति बन ही नहीं सकती, क्योंकि धर्म अधर्म याने पुण्य पाप मुक्तिमें माननेसे वहां पुण्य पापका फल भी होगा और उससे पुण्य पाप फिर बँधेंगे तब मुक्ति कहां रही? वह तो संसार ही रहा। तो इतना तो अवश्य करके मानना ही पड़ेगा कि मुक्तिमें धर्म और अधर्मकी पूर्णरूपसे निवृत्ति होती है। और जब धर्म अधर्मकी निवृत्ति हो गई तो उनका फल जो ज्ञानादिक हैं उनकी भी निवृत्ति अवश्य होगी ही। क्योंकि निमित्तके हटनेपर नैमित्तिककी कभी उत्पत्ति नहीं होती। ज्ञानादिक उत्पन्न होनेका निमित्त है धर्म और अधर्म। जब धर्म और अधर्म ही न रहे तो ज्ञानादिक गुण कैसे ठहर सकते हैं? और भी समझिये! मुक्त जो आत्मा हो गया है उसके अब अन्त:करणका संयोग नहीं रहा मन और आत्माका वियोग हो जानेसे ही तो मुक्ति होती है। क्या मुक्त आत्माके साथ भी मन लगा रह सकता है? इसे कोई नहीं मान सकता। आत्मामें जब तक मनका संगर्ग है तब तक तो उसका संसार ही है। तो अंत:करणके वियोग हो जानेका नाम मुक्ति है। मुक्त आत्मामें मनका संयोग नहीं रहा। जब मनका संयोग नहीं है तो अंत:करण और आत्माके संयोगसे ही तो ज्ञानादिक कार्य उत्पन्न होते थे। अब वे ज्ञानादिक कार्य किसी भी प्रकार उत्पन्न नहीं हो सकते। इस तरह जब मुक्त जीवमें धर्म अधर्म है नहीं और मन और आत्माका संयोग है नहीं तो बुद्धि आदिक भी न होंगे, फिर तो समस्त विशेष गुणोंकी निवृत्ति मुक्तिमें सिद्ध होती ही है। ऐसी योग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्धान्तके अनुसार शंका की जा रही है।

मुक्तिमें कथंचित् गुणोच्छेद व कथंचित् गुणानिवृत्तिके प्रतिपादन द्वारा उक्त शंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि देखिये ! यदि ऐसी बुद्धि आदिक भी मुक्तिमें हो जाना बताया जा रहा है जो कि पुण्य पापके कारण बनते हैं अथवा आत्मा और मनके संयोगमें बनते हैं तो ऐसी बुद्धि आदिकके हो जानेका हम निवारण नहीं कर सकते वह सही बात है, किन्तु जो कर्मके उदय उपशम क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई बात है वह तो विनाशीक है, नैमित्तिक है। यों ही आत्मा और मनके संयोगके समय इस संयोगके कारण जो भाव उत्पन्न होते हैं वे भी विनाशीक हैं। उनकी तो मुक्तिमें निवृत्ति है इसका तो निराकरण नहीं किया जा रहा है। अदृष्ट हेतुक बुद्धि आदिकका मुक्तिमें न होनेका निवारण नहीं करते परन्तु जो कर्म क्षयके कारण उत्पन्न हुए हैं ऐसे आनन्द शान्ति अनन्तज्ञान इनकी निवृत्तिको यदि कोई कहे तो वे विवेकहीन हैं, उनकी बुद्धि काबूमें नहीं है। कर्मक्षयके कारणसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानादिककी निवृत्ति मानना प्रमाणसे विरुद्ध है। इस सम्बन्धमें यह प्रयोग किया जा सकता है कि मुक्त आत्मा गुणवान है, आत्मत्व होनेसे मुक्त आत्मा की तरह। सो गुणोंका निराकरण नहीं किया जा सकता है। हाँ जो गुण ऐसे हैं जो औदयिक हैं, कर्मोंके उदय क्षयोपशम आदिकसे हुए हैं उनकी निवृत्ति तो स्वीकार की ही गई है। तब इस प्रकार कथंचित् तो बुद्धि आदिक विशेष गुणोंकी निवृत्ति मुक्ति में है और कथंचित् बुद्धि आदिक विशेष गुणोंकी मुक्तिमें निवृत्ति नहीं है, यह सिद्ध होता है। जो निरुपाधि स्वाभाविक गुण हैं उनकी निवृत्ति मुक्तिमें नहीं है ? जो औपाधिक विनाशीक गुण प्रकट हुए हैं उनकी मुक्तिमें निवृत्ति है।

कथंचित् गुणनिवृत्ति व कथंचित् गुणानिवृत्तिकी आगम प्रमाणसे भी प्रसिद्धता—गुणोंकी कथंचित् निवृत्ति और अनिवृत्ति माननेमें सिद्धान्तसे कोई विरोध नहीं है। तत्त्वार्थ महाशास्त्रमें कहा गया है कि "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः" बंधके कारणोंका अभाव होनेसे कर्मोंके छूट जानेका नाम अलग हो जानेका नाम मोक्ष है। इसी प्रकरणमें वहां खुलासा किया गया है दो सूत्र देकर एकतो सूत्र है "औपशमिकादिभव्यत्वानां च"—और दूसरा सूत्र है "अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः" इन दोनों सूत्रोंका भाव यह है कि मुक्त अवस्थामें औपशमिक आदिक भावोंका और भव्यत्व भावका तो अभाव होता है अर्थात् निवृत्ति हो जाती है, पर केवल ज्ञान, सम्यक्त्व, केवल दर्शन सिद्धत्व, इन गुणोंकी निवृत्ति नहीं होती। इन स्वाभाविक गुणोंके अतिरिक्त अन्य जो औपाधिक भाव हैं उनकी निवृत्ति हो जाती है। इस आगम वाक्यसे यह सिद्ध होता है कि मुक्तमें ज्ञानादिक गुणोंकी कथंचित् निवृत्ति है और कथंचित् अनिवृत्ति है। जो औपाधिक गुण हैं उनकी तो निवृत्ति हो जाती है किन्तु जो स्वाभाविक हैं उनकी निवृत्ति नहीं होती। इन औप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शमिक आदिक भावोंमें क्या क्या आया, जिनकी निवृत्ति मानी है ? औपशमिक, औदयिक और अशुद्ध परिणामिकभाव। अभव्यत्व तो पहिलेसे ही न था जो मुक्त हुए हैं उन आत्माओंमें। अब भव्यत्वभाव और दस प्राणोंपर जीवनेरूप जीवत्वभाव इनका अभाव हो जाता है। तो जैसे औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षायोपशमिक ज्ञानोपयोग और औदयिक कषाय आदिक भाव इनका मोक्ष अवस्थामें सद्भाव नहीं है और पारिणामिक भावमेंसे भव्यत्व भावका भी सद्भाव नहीं है। भव्यत्वभाव उसे कहते हैं जो अप्रकट रत्नत्रय है उसके प्रकट होनेकी योग्यता रूप फल होना सो भव्यत्व है। जब रत्नत्रय पूर्णतया प्रकट हो चुका, मोक्ष हो गया तो भव्यत्वभाव पक गया, अब नहीं रहा। जैसे किसी चौथी क्लासमें पढ़ने वाले बालकको कहा जाय कि यह चौथी क्लासके योग्य है तो ठीक है। जब चौथी क्लास अच्छे नम्बरसे पास कर चुके तब तो उसे यों न कहा जायगा कि वह चौथी क्लासके योग्य है। ऐसे ही रत्नत्रयके प्रकट होनेके योग्यको भव्यत्वभाव कहते हैं। जहाँ रत्नत्रय प्रकट हो चुका वहाँ भव्यत्वभावका व्यपदेश नहीं किया जा सकता है यह बात तो निवृत्तिकी बतायी। अब दूसरे सूत्रमें तुरन्त ही यह बात बता रहे हैं कि केवल ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, सिद्धत्व उनके सिवाय अन्यकी निवृत्ति है। अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, सिद्धत्वभाव और क्षायिक सम्यक्त्व इनकी निवृत्ति मुक्तिमें नहीं होती ऐसा आगममें भी कहा गया है। अतः विशेष गुणोंके उच्छेदका नाम मुक्ति नहीं है। यहाँ कोई यदि यों शंका करे कि फिर अनन्त सुखका सद्भाव मुक्तमें कैसे सिद्ध होगा ? तो उत्तर यह है कि इस ही सूत्रमें सिद्धत्व शब्द भी तो दिया है। सिद्ध हो गए प्रभु। तो जहाँ समस्त दुःखोंकी निवृत्ति है पूर्णतया वही तो भगवानका सिद्धपना है और जो सिद्धपना है, सकल दुःखोंकी निवृत्ति है वही अनन्त आनन्द है। तो आनन्दकी भी निवृत्ति नहीं है मगर सांसारिक सुखोंकी निवृत्ति भी मुक्तिमें मानी गई है। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि औपाधिक गुणोंके उच्छेदका नाम मुक्ति है और स्वाभाविक गुणोंके पूर्ण विकासका नाम मुक्ति है।

ज्ञानरहित आनन्दाभिव्यक्तिरूप मोक्षस्वरूपकी मीमांसा--अब वेदान्ती कहते हैं कि मुक्तिका स्वरूप मात्र अनन्त सुख ही है, ज्ञानादिक नहीं है और इसके मोक्षका लक्षण यह बना—आनन्दमात्र एक स्वभावकी अभिव्यक्ति होनेको मोक्ष कहते हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यद्यपि आनन्दस्वभावकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है, इसमें बाधा नहीं है किन्तु मात्र आनन्दकी ही अभिव्यक्ति हुई, ज्ञान स्वभावकी अभिव्यक्ति नहीं है ऐसी आनन्दकी अभिव्यक्तिको मोक्षस्वरूप माननेमें युक्ति और आगमसे बाधा आती है। भला मात्र आनन्दस्वरूपकी व्यक्तिको मोक्ष मानने वाले बतायें कि वह अनन्त सुख जो मुक्तिमें बताया गया है वह सम्वेद्यभाव वाला है या असम्वेद्य स्वभाव वाला है याने वह सुख जो मुक्तिमें मिला वह वहाँ ज्ञेयस्वभाव है अथवा अज्ञेय स्वभाव है, उस सुखका वे अपने आप सम्वेदन कर पाते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं अथवा वे उस सुखका सम्वेदन नहीं करते हैं ? यदि कहा जाय कि वह सुख सम्वेद्यस्वभाव है, तो अनन्त सुखका सम्वेदन करनेके लिए अनन्त सम्वेदनकी सिद्धि होती ही है। जब विषयरूप सुख अनन्त है तो सुखको विषय करने वाला, अनुभवने वाला उस सुखका सम्वेदन भी अनन्त है। यदि प्रभुमें सम्वेदन न हो तो अनन्त सुख सम्वेदन बन ही नहीं सकता। जब मुक्तिमें सुखका सम्वेदन माना है तो वह अनन्त सुख है, तो अनन्त ही सम्वेदन बना। सुख तो हो अनन्त और सम्वेदन अनन्त न हो तो वह सुख सम्वेद्य नहीं हो सकता। यदि यह विकल्प कहोगे कि मुक्तात्माओंको वह अनन्त सुख असम्वेद्य ही है ज्ञेयस्वभाव नहीं, ज्ञानमें आता नहीं। तो जब सुख असम्वेद्य है तो सुख नाम किसका रहा ? आत्माका सम्वेदन होनेमें ही तो सुखपनेकी प्रतीति की जाया करती है। जब सम्वेदन ही नहीं, सुख सम्वेदन ही नहीं, ज्ञानमें आता ही नहीं तो सुखकी मुद्रा और क्या होगी ?

बाह्यार्थके अभावसे परमात्माके संवेदनका अभाव माननेके मन्तव्य की मीमांसा—अब यहां वेदान्तवादी कहते हैं कि परमात्माके अनन्त सुखका सम्वेदन माना ही है। केवल बाह्य पदार्थोंका ज्ञान हम मुक्त आत्माके नहीं मानते हैं। मुक्तात्माके सम्वेदन तो है, जिसके कारण वे अपने अनन्त सुखका अनुभव कर सकते. किन्तु लोकालोकवर्ती बाह्य पदार्थोंका ज्ञान भी मुक्त आत्माके हो जाय ऐसा हम नहीं मानते। इस शंकापर उनसे पूछा जा रहा अथवा इस प्रकारसे उन्हें विचार करना चाहिए कि यह बताओ कि उस मुक्त आत्माके जो बाह्य पदार्थोंके सम्वेदनका अभाव माना जा रहा है तो क्या बाह्य पदार्थोंके अभाव होनेसे बाह्य पदार्थोंके ज्ञानका अभाव माना जा रहा है या इन्द्रियके विनाश हो जानेसे बाह्यपदार्थोंके ज्ञानका अभाव माना जा रहा है ? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि यह कहो कि बाह्यपदार्थोंका अभाव होनेसे मुक्त आत्माके बाह्य अर्थसम्वेदनका अभाव कहा गया है। जैसे कि अद्वैतवादकी प्रकृति है। जब केवल अद्वैत ही पदार्थ है, बाह्य कुछ द्वैत है ही नहीं तो बाह्यपदार्थोंका सम्वेदन भी क्या होगा ? यदि यह पूर्व पक्ष लेते हैं तब तो मुक्त आत्माके सुखका भी सम्वेदन नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि सुख तत्त्व भी तो बाह्य पदार्थोंकी तरह असत् हो जायगा। अर्थात् जिस तरह पुरुषाद्वैतवादमें बाह्यपदार्थोंका अभाव मान लिया गया है उसी प्रकार सुखका भी अभाव मानना चाहिए। क्योंकि यदि सुख नामक कोई पदार्थ माना जाता है तो द्वैतका प्रसंग आ गया। लो पुरुष हुआ और सुख हुआ। और सुखके सम्वेदनके लायक सम्वेदन भी माना तब वहाँ द्वैत प्रसंग आता है। सुखके माननेपर भी जो द्वैत मानते हो, सुख मानते हो फिर समस्त बाह्य अर्थ भी मान लेने चाहिएं क्योंकि जिस प्रकार ज्ञानमें सुख सम्वेद्य होता है उसी प्रकार ज्ञानमें इन सब बाह्य पदार्थोंका भी सम्वेदन हो रहा है।

इन्द्रियके अपायसे बाह्यार्थका संवेदन न माननेके मन्तव्यकी मीमांसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और अतीन्द्रियज्ञान परमात्माके बाह्यार्थ व अनन्त आनन्दके संवेदनका निष्कर्ष—अब यदि यह द्वितीय पक्ष स्वीकार करते हो कि मुक्त आत्माके इन्द्रियका विनाश होनेसे बाह्यअर्थका सम्वेदन नहीं होता है। जैसे कि द्वैतवादका आश्रय करने वाले भाट्ट आदिक दार्शनिकोंका सिद्धान्त है कि मुक्त आत्माके इन्द्रियके अपाय होनेसे बाह्य अर्थोंका अभाव है। तो यह विकल्प भी असंगत है, क्योंकि जिस हेतुसे तुम बाह्य अर्थोंका असम्वेदन मान रहे हो उस ही हेतुसे अर्थात् इन्द्रियके उपायसे ही सुख सम्वेदनके अभावका भी प्रसंग आ जायगा। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि मुक्त आत्माके अंत:करणका तो अभाव है। मनका संयोग तो रहा नहीं, तब उनके अतीन्द्रिय ज्ञानसे ही सुखका सम्वेदन होता है। अतएव सुख सम्वेदनके अभावका प्रसंग नहीं आता। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर इस ही प्रकार तो बाह्य अर्थका भी सम्वेदन मुक्त आत्माके होता है यह मानना चाहिये। जैसे कि अतीन्द्रिय सम्वेदनसे मुक्त आत्माके सुखका सम्वेदन होता है ठीक ऐसे ही अतीन्द्रियज्ञानसे ही बाह्य अर्थका सम्वेदन होता है। क्योंकि सुख सम्वेदनमें संवेदनत्वके नाते अविशेषता है। अर्थात् सम्वेदन यह भी है सम्वेदन वह भी है। तो जैसे अतीन्द्रिय संवेदनसे सुखका सम्वेदन होता है, वैसे ही बाह्य अर्थ भी सम्वेदनमें आया मानना चाहिए। यहाँ माना जा रहा है कि अतीन्द्रिय ज्ञानसे सुख सम्वेदन होता है तो ऐसे बाह्य अर्थका भी सम्वेदन अतीन्द्रिय ज्ञानसे होता है यह मान लेना चाहिए। तो यों अनर्हत सिद्धान्तमें मुक्तिका स्वरूप नहीं बनता केवल आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है यह भी न बना। उस आनन्दस्वभावकी अभिव्यक्तिके साथ ही ज्ञानस्वभावकी भी अभिव्यक्ति माननी होगी तब यही तो निष्कर्ष निकला कि अनन्त ज्ञानादि स्वरूपमें आत्माके अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है।

चित्रसंततिच्छेदरूप मुक्तिस्वरूपकी न्यायागम विरुद्धता—अब जो कोई भी दार्शनिक निरास्रव-चित्त संतानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष मानते हैं जैसा कि क्षणिकवादमें माना गया है तो उनके भी यहाँ ऐसा परिकल्पित मोक्षतत्त्व युक्ति और आगम से बाधित होता है। प्रदीपके निर्वाणकी तरह और उसे जैसे कि शान्ति निर्वाण माना है उसकी तरह यह युक्ति और आगमसे बाधित होता है। देखिये! सो जितने भी ज्ञान हैं वे सब सान्वय हैं, अपना अन्वय रखते हैं। उन सब ज्ञान परिणतियों का आधारभूत जो एक शाश्वत स्वभाव है वह अन्वय रूपसे रहता है। तब संतानके उच्छेदकी उपपत्ति ही नहीं हो सकती। निरन्वय क्षणिक एकान्तके आगमसे भी मोक्ष के माननेमें भी बाधा आती है यह बात स्वयं इस ग्रन्थमें भी कहेंगे। मोटेरूपसे यहाँ इतना मान लेना चाहिए कि कोई भी वस्तु जो भी सद्भूत है उसका निरन्वय विनाश नहीं होता, न किसी असत्की उत्पत्ति होती है और न किसी सत्का समूल विनाश हो सकता है। अन्यथा कुछ युक्तिसे सिद्ध करके बताये कोई! जो कुछ है ही नहीं, असत् है, अभावरूप है वह आ कहाँसे जायगा? कुछ है, उसीका तो रूपान्तर बना करता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ वस्तु अव्यक्त रूपसे भी सत् हैं और कोई व्यक्त रूपसे आ जाते हैं, यह भी सम्भव है लेकिन किसी भी रूपमें कुछ भी न हो और एकदम बात बने यह नहीं हो सकता। और जब ऐसा हो नहीं सकता तब क्षणिकता सिद्ध हो ही नहीं सकती। क्षणिकता माननेके लिए न तो पूर्वसंतान माना जा सकेगा, न उत्तरसंतान माना जा सकेगा। जब पूर्वसंतान नहीं मानी तो उसका अर्थ यह हुआ कि असत्की उत्पत्ति हुई। सो किसी भी प्रकार सिद्धि नहीं हो सकती। और जब उत्तरसंतान नहीं माना तो इसका अर्थ हुआ कि समूल नाश हो गया। पर ऐसा नहीं है। यों सिद्ध करनेके लिए जो क्षणिकवादमें दीपकका दृष्टान्त दिया है वह भी युक्तिसंगत नहीं है। जैसे तेलबूंदोंसे दीपक जला और वायुके वेगसे वह दीपक बुझ गया तो बुझ जानेपर धुवेंके रूपमें किसी परमाणुके रूपमें वह अब भी रहा। और जो तेल जल रहा था अब नहीं जल रहा तो वह तेल भी रहा है और जो प्रकाशरूप परमाणु थे वे अब अन्धकाररूप हो गए। स्कन्धोंका समूल नाश तो वहाँ भी नहीं होता। तो जब निरन्वय नाश कभी भी किसीका है ही नहीं तो ज्ञानका जो अन्वय है, ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व है उसकी संतानका उच्छेद हो जाय, यह कभी भी नहीं हो सकता। अतः यह भी मोक्ष स्वरूप न बना कि निरास्रव ज्ञानकी संतान बनना अथवा ज्ञानसंतति मिट जाना, ज्ञानका सिलसिला टूट जाना अथवा चित्तसंतति नष्ट हो जाना सो मोक्ष है।

आर्हत तत्त्वकी युक्तिशास्त्राविरोधिताके प्रतिपादनका प्रकरण—इस कारिकाकी उत्थानिकामें यह प्रश्न किया गया था कि सर्वज्ञ तो कोई हो सकता है, पर यह कैसे निश्चित किया गया कि वह सर्वज्ञ अरहंत प्रभु ही है। उसके उत्तरमें इस कारिकामें यह कहा गया कि विप्रकर्षी पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष होते ही हैं और जिसके समस्त विप्रकर्षी पदार्थ भी साक्षात् प्रसिद्ध हो रहे हैं ऐसे सर्वज्ञ हे अरहंत प्रभु आप ही हो क्योंकि आप निर्दोष हो। आप निर्दोष हो, यह बात यों समझी जा रही है कि आप युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध उपदेश करने वाले हो। तो युक्ति और आगमके अविरुद्ध प्रभुका उपदेश किस प्रकार है इस सम्बन्धमें चार तत्त्वोंकी बात बतायी गई है। जीवको शान्तिके लिये इन चार तत्त्वोंका ही ज्ञान अच्छी प्रकार कर लेना पर्याप्त है अतएव यहाँ चार तत्त्वोंकी बात कही है। आर्हत शास्त्रमें मोक्ष, मोक्षका कारण संसार और संसारका कारण इन चार बातोंका जिस प्रकार विवरण किया गया है वह न युक्तिसे बाधित होता है और न आगमसे। इस बातकी सिद्धि करनेके बाद जब यह प्रश्न हुआ कि यह कैसे निश्चित किया जाय कि अरहंतके सिवाय अन्य संतोंका भाषण युक्ति और आगमके विरुद्ध है। इस प्रसंगको लेकर अभी बताया गया था कि कुछ लोग मोक्षका स्वरूप चैतन्यमात्रमें अवस्थित होना मानते हैं, कुछ लोग मोक्षका स्वरूप केवल आनन्द मात्रकी अभिव्यक्तिको मानते हैं और कोई ज्ञान संतानके उच्छेदका नाम मोक्ष मानते हैं। वह सब न्याय और आगमके विरुद्ध बताया गया है। तो जिस प्रकार अनार्हत मोक्षतत्त्व न्याय और आगमके विरुद्ध कहा गया है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसी प्रकार अनार्हत मोक्ष कारण तत्त्वका जो कथन है, वह भी न्याय और आगमके विरुद्ध है।

अनार्हत मोक्षकारणतत्त्वकी न्यायागमविरुद्धताका दिग्दर्शन—कोई पुरुष मानते हैं कि विज्ञानमात्रसे ही परममोक्ष होता है। परम मोक्षका अर्थ यह है कि जिसके बाद फिर कुछ भी और श्रेयोलाभके लिये बाकी नहीं रहता। यहां विज्ञान मात्रसे कहनेका उनका अर्थ यह है कि श्रद्धान और चरित्रसे कुछ सम्बन्ध नहीं। दर्शन और चारित्रसे मोक्ष नहीं किन्तु केवल ज्ञानमात्रसे मोक्ष है। तो यों मोक्षका कारण केवल ज्ञानमात्रको माना है, यह युक्तिसंगत नहीं बैठता। क्योंकि जो ज्ञानमात्रको मोक्षका कारण मानते हैं उनके यहां भी जब वे किसीके सर्वज्ञकी अवस्था मानते हैं, समस्त पदार्थोंके साक्षात्कार करनेकी अवस्था मानते हैं उस समय शरीरके साथ आत्मा का अवस्थान है, तब परनिश्रेयस कहां रहा मिथ्याज्ञानकी तरह ? किन्तु जैसे कि मिथ्याज्ञान, मिथ्यामात्र है तो उस विज्ञानमात्रसे परनिश्रेयस तो न रहा और शरीरके साथ अवस्थान है तो यों ही जब तक विज्ञानमात्र है शंकाकारके द्वारा माने गए सर्वज्ञों में और शरीरके साथ उनका अवस्थान है तभी तो उनको उपदेश किया है। तो अब यह बात कहाँ रही कि ज्ञानमात्र होनेसे परनिश्रेयस हो जाता है। अभी कहाँ हुआ परनिश्रेयस ?

दर्शनचारित्ररहित विज्ञानमात्रसे परनिश्रेयस माननेकी असंगतता—यहां यह अनुमान प्रयोग किया गया है कि विज्ञानमात्र परनिश्रेयसका कारण नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अवस्थामें भी अर्थात् सर्वज्ञताकी अवस्थामें भी आत्मामें तत्त्वज्ञानका, विज्ञानमात्रका शरीरके साथ अवस्थान पाया जाता है मिथ्याज्ञानकी तरह, तो इस अनुमानमें दिया गया हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि शंकाकाराभिमत कपिल आदिक सर्वज्ञोंके भी स्वयं प्रकर्ष पर्याप्त अवस्था प्राप्त होनेपर भी अर्थात् उनका सर्वज्ञत्व और मोक्ष माननेपर भी अभी ज्ञानका शरीरके साथ अवस्थान माना गया है। साक्षात् समस्त अर्थोंके ज्ञानकी उत्पत्तिके बाद यदि शरीर न रहे तो फिर आप्तका यह उपदेश कहाँसे चल सकेगा ? क्योंकि जब शरीर न रहा तो आप्त सर्वज्ञका उपदेश बन जाय यह नहीं हो सकता। जैसे शरीर रहित आकाश क्या कुछ उपदेश कर सकता है ? तो यों ही शरीररहित आप्त क्या कुछ उपदेश कर सकता है ? और उपदेश माना ही है शंकाकारने। तो शंकाकारने जिनको सर्वज्ञ माना है उनका उपदेश भी जरूर है। तो उससे सिद्ध है कि वे अभी तक शरीरमें रहे थे। और, जब विज्ञानमात्र हो जाने पर भी उनके माने गए सर्वज्ञको शरीरसे सहित स्वीकार किया गया है तो इससे सिद्ध है कि विज्ञानमात्रपर निश्रेयसका कारण नहीं हो सकता।

अनुत्पन्नसकलतत्त्वज्ञानके आप्तत्व माननेमें उसके उपदेशमें प्रामाणिकताका अभाव—अब सांख्य कहते हैं कि जिसको समस्त अर्थोंका ज्ञान नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न हुआ है ऐसे आप्तका उपदेश चला करता है। अतएव विज्ञानमात्र परनिःश्रेयस का कारण है इसमें कोई बाधा नहीं आती। जब समस्त ज्ञान उस सर्वज्ञके उत्पन्न हो लेंगे तो परनिश्रेयस हो जायगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो बिल्कुल ही विरुद्ध है, क्योंकि जिसमें समस्त अर्थोंका ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ ऐसे पुरुष का उपदेश सत्य कैसे हो सकता है। पहिले समस्त अर्थोंका ज्ञान करले तब तो उसका उपदेश सत्य माना जायगा। और जहाँ ही समस्त अर्थोंका ज्ञान उत्पन्न कर लिया गया बस वहाँ विज्ञानमात्र हो जानेसे परनिश्रेयस हो जायगा फिर उपदेशकी परम्परा चल ही न सकेगी और यों शंकाकारके जितने भी आगम और उपदेश हैं वे सब अप्रमाण हो जायेंगे। क्योंकि समस्त अर्थोंका ज्ञान जिसके नहीं हुआ ऐसे आप्तके उपदेशमें अप्रमाणताकी शंका बराबर बनी रहेगी। जैसे कि अन्य अज्ञानी पुरुषोंके उपदेशकी अप्रमाणताकी शंका रहती है ना, तो बतलाओ अन्य अज्ञानी पुरुषोंके उपदेशोंमें अप्रमाणताका संदेह क्यों रहता? यों ही रहता ना, कि उनको समस्त पदार्थोंका ज्ञान नहीं है। और अब मान लिया अपने आप्तको ही ऐसा कि उसके समस्त पदार्थोंका ज्ञान नहीं है और उस आप्तके उपदेश चलते रहते, तो उस उपदेशसे प्रमाणता आ ही नहीं सकती।

गृहीतशरीरनिवृत्तिमें मोक्षस्वरूपका अभाव और शरीरान्तरानुत्पत्ति को मोक्षस्वरूप माननेरूप शंका—अब शंकाकार कहता है कि बात यह है कि अन्य शरीरकी अनुत्पत्तिका नाम निश्रेयस है, किन्तु गृहीत शरीरकी निवृत्तिका नाम निश्रेयस नहीं है। याने अब आगे कोई शरीर उत्पन्न न हो इस निश्चितिका नाम है मोक्ष, परन्तु जो शरीर ग्रहण किया गया था, जो जन्मसे है और जिस संतने आत्म-योग साधनासे निश्रेयसकी प्राप्ति की है तो गृहीत शरीरकी निवृत्ति तो फलोपयोगसे होगी, अतः गृहीतशरीरकी निवृत्तिका नाम निश्रेयस नहीं। वह शरीर जब तक रहे, रहे, पर मोक्ष नाम है इसका कि अन्य शरीर उत्पन्न न हो और शरीरान्तर उत्पन्न न हो, इस प्रकारके लक्षण वाला मोक्षका कारण है साक्षात् सकल तत्त्वका ज्ञान, किन्तु सकल तत्त्वका ज्ञान ग्रहण किए गए शरीरकी निवृत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि गृहीत शरीरकी निवृत्ति तो फलके उपभोग करनेसे मानी गई है। ग्रहण किए गए शरीरकी निवृत्तिमें समस्त तत्त्वज्ञान कारण नहीं है, किन्तु गृहीत शरीरकी निवृत्तिमें पूर्वजन्ममें कमाये हुए कर्मोंके फलोंका उपभोग कर लेना कारण है। ऐसा शंकाकारका सिद्धान्त है कि ग्रहण किए गए शरीरकी निवृत्ति तो फल भोगनेसे ही होगी। समस्त कर्मोंका फल भोगा जा चुकनेपर अब वह शरीर छूटेगा। इस कारण पूर्व ग्रहण किए गए शरीरके साथ ठहर भी रहा है तत्त्वज्ञान तो ठहरे, उस तत्त्वज्ञानसे आप्तका उपदेश बन जाया करता है।

उक्त शंका समाधान और जीवनमुक्ति व परनिश्रेयसके स्वरूपका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समर्थन—शंकाकारके उक्त कथनपर समाधानमें कहते हैं कि तुमने बहुत ठीक कहा कि शरीरके साथ अभी ठहरा हुआ है तत्त्वज्ञान और उससे ही सर्वज्ञका उपदेश बनता है तो यह बात तो स्याद्वादियोंको भी स्वीकार है कि प्रकर्षपर्यन्त अवस्थामें अर्थात् निर्मलता, निर्दोषता, सर्वज्ञता प्रकट हो जानेकी अवस्थामें भी आत्मामें ज्ञानका शरीरके साथ-साथ अवस्थान रहता है। जैसे कि सकल परमात्मा अरहंत कहे गए हैं। उन सकल परमात्माके निश्रेयस, जीवन्मुक्ति, कैवल्यकी प्राप्ति हो गई है। केवल एक सर्व प्रकारसे द्रव्यकर्मसंमुक्ति और शरीरनिवृत्तिकी बात शेष रही है। तो वहाँ शरीर रहता हुआ भी अरहंत भगवानका उपदेश, दिव्यध्वनि बराबर चलती है। सो अब यह सिद्ध हुआ ना, कि लो अब तत्त्वज्ञान मात्र पर निश्रेयसका कारण न रहा। पर निश्रेयस तो शरीररहित कर्मरहित पूर्णतया निर्दोष आत्मामें स्थित होनेका नाम है, सकल परमात्मा के परनिश्रेयस नहीं है। शरीर सहित सर्व देवके निश्रेयस है, कैवल्य है, किन्तु पर-निश्रेयस नहीं है। जब भावी शरीरकी तरह प्राप्त किया हुआ शरीर भी न रहे तब परनिश्रेयसकी बात कही जाती है याने जैसे शंकाकारने यह कहा कि आगे शरीर न मिले उसका नाम परनिश्रेयस है तो दोनों ही बातें हुई तो परनिश्रेयस हुआ। अन्य शरीर न मिले और पाया हुआ शरीर भी निवृत्त हो जाय उसको परनिश्रेयस कहा है, सो देखो तत्त्वज्ञान हो जानेपर भी, सर्वज्ञता प्रकट हो जानेपर भी अब निश्रेयसपना तो न हुआ। इससे यह सिद्ध है कि केवल विज्ञानमात्र मोक्षका कारण नहीं है, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता मोक्षका कारण है। साक्षात्कार करने वाले सर्वज्ञके सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता तो हो गई लेकिन अभी योग होनेसे शरीरके कारणभूत कर्मका सद्भाव होनेसे अभी परनिश्रेयस नहीं हुआ है। तो सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता हो जानेपर भी सम्यक्चारित्रकी पूर्णताके अभावमें जब परनिश्रेयस नहीं है तो आर्हत शासनमें जो यह कहा है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी परिपूर्णता मोक्षका कारण है, यह पूर्ण सत्य है।

फलोपभोगकृतकर्मक्षयसहित तत्त्वज्ञानमात्रको परनिश्रेयसकारण बतानेका प्रयास व उसका समाधान— सांख्य कहते हैं कि कर्मोपभोग होनेसे जो कर्मक्षय बनता है उसकी अपेक्षा रखता हुआ तत्त्वज्ञान परनिश्रेयसका कारण होता है। शुभ अशुभ जो भी कर्म बाँधा था उन कर्मोंका जब उपभोग होता है उससे बनता है उपार्जित किए हुए कर्मोंका क्षय, उस कर्मक्षयसे सहित तत्त्वज्ञान परनिश्रेयसका कारण है इस कारण तत्त्वज्ञान मात्र, विज्ञानमात्र अनुभवका कारण है, इस बातमें विरोध नहीं आता। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बिना विचारे हुए कही हुई बात है। भला बताओ—जो फलका उपभोग बताया है तत्त्वज्ञानियोंके कर्मक्षयके लिए, सर्वज्ञ भगवानके अवशिष्ट कर्मक्षयके लिये जो फलोपभोगकी बात कही है वह फलोप-भोगकी बात कही है वह फलोपभोग वहाँ उपक्रमसे होता है या बिना उपक्रमके याने कुछ पुरुषार्थ करके बनता है या बिना पुरुषार्थके अपने आप ही होता है। यदि कहो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि वहाँ फलोपभोग उपक्रमसे होता है तो यह बतलाओ कि वह उपक्रम कैसे हुआ और वह है भी क्या सिवाय तपश्चरणके अतिशयके । जब अतिशयरूपसे तपश्चरण होता है तो उससे अटूट निर्जरा होती ही है, यह बात मानी ही गई है। और, जब यह सिद्ध हो गया कि तत्त्वज्ञान और तपश्चरणका अतिशय इन कारणोंसे परनिश्रेयस होता है तब भी यह बात तो न रही कि विज्ञानमात्र परनिश्रेयसका कारण है। यह तपका अतिशय भी कारण हुआ।

समाधिबलसे उपात्तकर्मफलोपभोगके उपगमसे उपदेश व्यवस्था व परनिश्रेयसव्यवस्था माननेकी मीमांसा—अब सांख्य कहते हैं कि समाधि विशेष से समस्त कर्मोंके फलका उपभोग मान लिया गया है इस कारण यह दोष न आयगा। सिर्फ तत्त्वज्ञान व तपोतिशयके हेतुसे नहीं है मोक्ष वह तो हुआ ही है ज्ञानके कारण, किन्तु कैसे ज्ञानसे, सो इसपर कुछ विवेक करना होगा। क्या, कि वह तत्त्वज्ञान स्थिरीभूत हो जाय बस यह परनिश्रेयसका कारण है और यही है समाधि विशेष। तो जब समाधिविशेष होता है तब समस्त कर्मोंका फल क्षणमात्रमें ही भोग लिया जाता है। और, फिर परनिश्रेयस हो जाता है। ऐसी शंकापर समाधान किया जाता है कि फिर यह बतलाओ कि वह समाधि विशेष है क्या ? यदि कहो कि ज्ञान स्थिरीभूत हो गया इस हीका नाम समाधिविशेष है तो देखो तो सही विडम्बना कि ज्ञान स्थिरीभूत हो गया और स्थिरीभूत ज्ञान होनेपर बन गया परनिश्रेयस, अब स्थिरीभूत ज्ञान होनेपर परनिश्रेयस होनेपर आप्तका उपदेश कैसे हो सकेगा ? फिर तो शंकाकारके सिद्धान्तसे उनके ही आगमकी परम्परा न चल सकेगी। अब सांख्य कहते हैं कि समस्त तत्त्वज्ञानोंकी जब अस्थिरताकी अवस्था होती है चलित अवस्था होती है तो वहाँ असमाधि उसके उत्पन्न हो जाती है और उस सकल तत्त्वज्ञानीके असमाधि दशा होनेपर उस योगीके तत्त्वका उपदेश करना युक्त बन हो जाता है। जब वह योगी, सकल तत्त्वज्ञानी असमाधि अवस्थामें है तब वह उपदेश किया करता है। समाधान करते हैं कि यह बात भी युक्त नहीं है क्योंकि जो सकल तत्त्वज्ञानी भगवान है उसके ज्ञानमें अस्थिरता का विरोध है। जो सर्वज्ञ है उसकी अस्थिरता हो ही नहीं सकती। क्योंकि सर्वज्ञज्ञान हो और अस्थिरता हो इसमें विरोध है कारण कि सर्वज्ञका तत्त्वज्ञान कभी भी चलित नहीं हो सकती है। वह क्यों नहीं चलित न बन सकेगा क्योंकि सकल तत्त्वज्ञान तो अक्रमसे है। क्रमपूर्वक नहीं होता। जो क्रमपूर्वक ज्ञान बने उनमें तो चलितपना सम्भव है, पर जो एक साथ ही समस्त विश्वका ज्ञान होता है उसमें चलितपनेका अवसर ही कहाँ है ? और वह ज्ञान अक्रमसे होता है यह कैसे सिद्ध है सो सुनो। सर्वज्ञका ज्ञान अक्रमसे होता है क्योंकि अन्य विषयोंमें संचरणका अभाव है। जब सकल तत्त्वज्ञानीने एक ही साथ समस्त तत्त्वोंको जान लिया, जब कोई तत्त्व अज्ञेय रहा ही नहीं तब विषयान्तर ऐसा है ही क्या जो सर्वज्ञके विषयमें न आया हो। तो विषयान्तर ही कुछ नहीं और उसमें फिर ज्ञान चलेगा ही क्या ? तो विषयान्तरमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संचरणका अभाव होनेसे सकल तत्त्वज्ञान अक्रमसे है यह सिद्ध होता है। सकल तत्त्वज्ञान अक्रमसे है इस कारणसे वह ज्ञान कभी चलित नहीं होता। और, जो ज्ञान कभी चलित नहीं हो सकता वह अस्थिर कैसे माना जायगा। अन्यथा अर्थात् सकल तत्त्वज्ञान भी विषयान्तरमें चलने लगे अतएव अक्रम हो जाय तो फिर समस्त तत्त्वोंका ज्ञान होना असम्भव है। सर्वज्ञ सकल तत्त्वको जाने भी और फिर अन्य अन्य विषयोंमें लगे भी यह कैसे सम्भव है ? जैसे हम लोगोंका ज्ञान विषयान्तरोंमें लग रहा है तो सकल तत्त्वका ज्ञान तो नहीं है। तो प्रभु सकल तत्त्वज्ञानी है तो उसमें अस्थिर अवस्था नहीं आ सकती। फिर उस योगीके तत्त्वोपदेश कैसे होगा ? यह शंकाकारके यहाँ प्रसंग ज्योंका त्यों बना रहता है।

तत्त्वोपदेशकालमें सर्वज्ञके ज्ञानको असमाधिरूप व पश्चात् समाधान रूप माननेकी मीमांसा—अब सांख्य कहते हैं कि तत्त्वोपदेशकी दशामें उस योगीका भी ज्ञान शिष्यजनोंके समझानेके लिये व्यापार करता हुआ असमाधिरूप अस्थिर हो जाता है। पश्चात् जब समस्त व्यापार निवृत्त हो जाता है शिष्यको समझानेके लिये योगीकी जो चेष्टायें हो रही थीं, जब वे सब चेष्टायें निवृत्त हो जाती हैं तो वह ज्ञान स्थिर होता है और वह समाधि नामसे पुकारा जाता है। ऐसी आशंकापर समाधान किया जाता है कि ठीक है तब तो उस समाधिका ही नाम चारित्र रख लीजिए, और यों फिर नाममात्रमें ही तो फर्क आया। अर्थ और अभिप्रायमें भेद न निकला। याने तत्त्वज्ञान होनेपर भी जब तक समस्त व्यापार दूर नहीं होता। व्यापार बना रहता है तब तक भी उपदेश चलता है और जहाँ समस्त व्यापारकी निवृत्ति हुई, परम समाधि कहलायी फिर उपदेश नहीं होता सो ठीक है। तत्त्वज्ञानका तो यह फल है कि समस्त अज्ञान दूर हो जायें और तत्त्वज्ञानसे भिन्न जो चारित्र है उसका लक्षण है परम उपेक्षा हो जाय। सो यद्यपि सर्वज्ञ आप्तमें परम उपेक्षा हो गयी है फिर भी योग की दृष्टिसे चूंकि अभी व्यापार चल रहा है बिहार दिव्य ध्वनि उपदेशका व्यापार चल रहा है। बिहार दिव्य ध्वनि उपदेशका व्यापार चल रहा है अतएव समझिये कि अभी व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामका परम शुक्लध्यान नहीं हुआ। उस हीका नाम रख लीजिये तपश्चरणका अतिशय अथवा समाधि। जब तक यह अतिम शुक्ल ध्यान नहीं होता, तब तक भगवान आत्माका परनिश्रेयस न होगा और उससे पहिले सर्वज्ञताके पश्चात् उनका उपदेश सम्भव है। तब यही बात तो हुई कि जिसमें तत्त्वार्थ श्रद्धान गर्भित है ऐसे चारित्र सहित तत्त्वज्ञान परनिश्रेयस हुआ अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका एकीभाव परनिश्रेयसका कारण बना। तो अब न चाहते हुए भी उन सभी दार्शनिकोंको यह बात मानना ही पड़ेगी और ये उनके ही अनेक कथन समाधान आदिकके पश्चात् यह बात सामने आ ही गई कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकीभाव परनिश्रेयसका कारण है तब स्पष्ट हो गया ना, कि सर्वथा एकान्तवादियोंके द्वारा माना गया मोक्ष कारण तत्त्व भी न्यायके विरुद्ध है। जैसे कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभी यह माना गया था कि विज्ञानमात्र मोक्षका कारण है। मात्रसे मतलब है कि श्रद्धान और आचरणसे रहित केवल ज्ञानमात्र हो गया वह मोक्षका कारण है, सो यह बात बन तो न सकी। तो सर्वथा एकान्तवादियोंका यह मोक्ष कारण तत्त्व कि विज्ञानमात्र ही मोक्षका कारण है यह न्याययुक्तिसे विरुद्ध सिद्ध हो गया।

एकान्तवादाभिमत मोक्षकारणतत्त्वकी आगमविरुद्धता—सर्वथा एकान्तवादियोंका अभिमत मोक्ष कारणतत्त्व उनके ही खुदके आगमसे विरुद्ध है, क्योंकि सभी दार्शनिकोंके आगममें दीक्षा आदिक क्रियाओंका और भीतर समस्त रागद्वेषादिक दोषोंके उपशम हो जानेको विधान किया गया है। सभीके ग्रन्थोंमें किसी न किसी रूप में यह उपदेश है ही कि वह दीक्षा ले, तपश्चरण करे यही तो बाह्य चारित्र हुआ और रागद्वेषादि समस्त दोषोंका अभाव करे, यही हुआ अन्तरङ्ग चारित्र। तब उन सब आगमोंसे यह दिशा तो सिद्ध हो ही जाती है कि बाह्य चारित्र और आभ्यंतर चारित्र मोक्षका कारण है, ऐसी श्रुति सभीके आगममें पाई जाती है। इस कारण एकान्तवादियोंका अभिमत "विज्ञानमात्र मोक्ष कारण है" यह आगमविरुद्ध भी है।

अनार्हत संसारतत्त्वस्वरूपकी भी न्यायागमविरुद्धता--जिस प्रकार मोक्षतत्त्व और मोक्षका कारणतत्त्व अनार्हत सिद्धान्तमें न्याय और आगमके विरुद्ध बताया गया है उसी प्रकार अनार्हत सिद्धान्तके अनुसार अभ्युपगत संसार तत्त्व भी न्याय और आगमके विरुद्ध है। वहाँ इस प्रकारका अनुमान प्रयोग है कि नित्यत्व आदिक एकान्तमें विक्रिया हो नहीं बन सकती अर्थात् अर्थक्रिया परिणति ही नहीं बन सकती। यदि कोई सर्वथा नित्य है अर्थात् उसमें कुछ परिणमन होता ही नहीं है तो उसमें परिणमन तो नहीं हुआ, फिर ससार कैसे बना? संसार तो तब बनता है कि कोई जीव है और उसको सुख दुख रागद्वेष जन्म मरण आदिक होते रहें। तो जब जन्म मरण राग द्वेष आदिकका नाम संसार है तो वह तो नित्य एकान्त नहीं हो सकता। अनित्य एकान्तमें भी यही बात है। जब सब पदार्थ क्षण–क्षणमें नष्ट होने वाले हैं तो जीव भी क्षण–क्षणमें नया नया बना। अब हुआ, दूसरे क्षण मिट गया। उस जीवका संसार क्या हुआ? तो नित्यत्व आदिक एकान्तमें संसारके स्वरूपकी सिद्धि नहीं बनती। तो अनार्हत सिद्धान्तमें ससार तत्त्व भी न्यायसे विरुद्ध पड़ता है और इस बातका समर्थन आगे भी करेंगे जिससे यह सिद्ध होगा कि उनके एकान्तमें माने हुए संसार आदिक तत्त्वोंमें उनके आगमसे भी विरोध आता है और स्वयं ऐसा कहा भी है कि पुरुष न प्रकृति है, न विकृति है, केवल एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, ऐसा बोलने वाले पुरुषोंने स्वयं स्वीकार किया है कि पुरुषके संसारका अभाव है। उनके इस प्रसगमें दो तत्त्व माने गए हैं—प्रकृति और पुरुष। तो पुरुष न तो विकार करता है, न उसमें कुछ परिणमन होता है। एक अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप माना है तब उसके संसारका सद्भाव कैसे हो सकता है? और फिर उस ही सिद्धान्तमें ससार अगर बना तो गुणोंका संसार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बना क्योंकि प्रकृति भी मूलत: पुरुषकी तरह अपरिणामी है। जब सत्व, रज, तम या अहंकार आदिक इन गुणोंका ही संसार बन सकता है। और, कुछ लोग ऐसे हैं कि जो संसार मानते ही नहीं। केवल कल्पनासे संसारकी व्यवस्था करते हैं। तो वह कल्पना भी नहीं बन सकती है। यों किसी भी एकान्तमें जैसे मोक्ष और मोक्ष कारण तत्वकी व्यवस्था न बन सकी इसी प्रकार संसार और संसार कारणतत्वकी भी व्यवस्था नहीं बनती। तो यहाँ इसमें यह कहा है कि उनके यहाँ संसार तत्वका स्वरूप भी न्याय और आगमके विरुद्ध हैं जो अनेकान्तवादसे विमुख चलकर एकान्तवादको अंगीकार करते हैं।

अनार्हत संसारकारणतत्त्वके स्वरूपकी भी न्यायागमविरुद्धता—अब कहते हैं कि जिस प्रकार अनार्हत सिद्धान्तमें मोक्ष, मोक्ष कारणत्व व संसार तत्व सिद्ध नहीं हो सकता इसी प्रकार संसारकारण तत्व भी अनेकान्तवादसे विमुख दार्शनिकोंके न्याय और आगमसे विरुद्ध पड़ता है। संसार कारण तत्व माना है एकान्तवादमें मिथ्याज्ञान मात्र। सो देखिये मिथ्याज्ञान मात्रके कारणसे संसार नहीं होता, क्योंकि जिस जीवके मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है, न रहा मिथ्याज्ञान फिर भी तदनन्तर मोक्ष नहीं देखा गया, उसके संसारकी निवृत्ति न बननेसे यह सिद्ध होता है कि संसार मिथ्याज्ञान कारणपूर्वक नहीं है। अनुमान प्रयोग भी है कि जिसकी निवृत्ति होनेपर भी जो निवृत्त नहीं होता है वह तन्मात्रकारणक नहीं है। महलके निर्माणमें बढ़ई आदिक बहुतसे काम करने वाले हैं तो बढ़ई आदिककी कभी निवृत्ति हो जाय, वे न रहें तो घर, महल, देवालय आदिक तो निवृत्त नहीं होते। इससे सिद्ध है कि वे देव गृहादिक तक्षादिमात्रके कारणसे नहीं हैं। वहाँ जैसे कारीगर बढ़ई आदिक एक निमित्त कारण हुए हैं, अन्य निमित्त भी हैं। तो केवल तक्षादिमात्र कारणक महलों को नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उनकी निवृत्ति होनेपर भी महलकी निवृत्ति नहीं देखी गई। यों ही यहाँ भी परखिये कि मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी संसार निवृत्त होता हुआ नहीं देखा गया। जीवोंको जब तत्वज्ञान उत्पन्न होता है उसके बाद भी बहुत कुछ समय तक वे लोकमें रहते हैं, उनका संसार बना हुआ है। तो इससे सिद्ध है कि संसारका कारणतत्व केवल मिथ्याज्ञान मात्र नहीं है। इस अनुमान प्रयोग में जो हेतु दिया गया है कि मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी संसारकी निवृत्ति न होनेसे यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर मिथ्याज्ञान तो अलग हट हो गया है, इसमें कोई विवाद नहीं। लेकिन सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर मिथ्याज्ञानकी तो निवृत्ति हुई, किन्तु मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी अभी रागद्वेष आदिक दोष निवृत्त नहीं हुए हैं और इसी कारण अभी संसार भी निवृत्त नहीं हुआ है, ऐसा सांख्य आदिक दार्शनिकोंने स्वयं भी कहा है और युक्तिसे भी यह बात प्रसिद्ध होती है कि सम्यग्ज्ञान होनेपर मिथ्याज्ञान ही तो दूर हुआ। अभी जो वासनावश रागद्वेषादिक चल रहे हैं उनकी निवृत्ति नहीं हुई, उनकी भी पूर्णतया निवृत्ति हो जाय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और परम समाधि भाव बने जहाँ कि योग परिस्पंद भी न रहे, तब जाकर परनिश्रेयस होता है। तो देखिये ! मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी रागद्वेषकी निवृत्ति न होनेसे संसारकी निवृत्ति न हुई तब केवल मिथ्याज्ञानमात्र ही संसारका कारण हो सो बात नहीं। दोषोंको भी संसारका कारण बताने वाले आगम हैं, सो आगममें भी यह स्वीकार किया गया है अर्थात् रागद्वेष संसारके कारण हैं, ऐसा भी तो शंकाकारके आगम में उपदेश बना हुआ है। तब संसार कारणतत्त्वको केवल मिथ्याज्ञानमात्र मानना यह न्याय और आगमके विरुद्ध सिद्ध होता है। इस प्रकार अनार्हतोंके न्याय और आगमके विरुद्धाभाषी होनेसे अरहंत प्रभु ही युक्तिशास्त्रके अविरोधी वचन वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं यह निश्चित होता है और इस ही कारण ये सर्वज्ञ प्रभु, यह मोक्ष मार्गका नेता, समस्त विश्वको ज्ञाता, सकल शास्त्रोंके आदिमें याने तत्त्वार्थ महाशास्त्रके प्रारम्भ में प्रेक्ष्यवान पुरुषोंके स्तवन करनेके योग्य वे हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं रहता।

सामान्यतया सर्वज्ञत्व सिद्ध होनेपर भी ये ही सर्वज्ञ हैं ऐसा निश्चय करनेकी अशक्यता बतानेकी शंका व उसका समाधान—अब इस प्रसंगमें क्षणिकवादी कहते हैं कि भले ही यथार्थदर्शी हैं, वीतराग हैं, उनका निषेध नहीं करते पर वे ऐसे ही हैं, अरहंत ही हैं आदिक रूपसे निश्चय न किया जानेसे यह कथन, यह निर्देश ... किया गया है यह ठीक नहीं जँचता। देखिये ! उन सर्वज्ञ अरहंतके कार्यव्यापारादिकमें व्यभिचार देखा जाता है अर्थात् जिस तरह विहार अरहंत का मानते हैं लोग, वैसे ही अन्य लोग भी विहार करते हैं। जो वीतराग नहीं हैं उन पुरुषोंमें भी उस प्रकारका व्यापार देखा जाता है। तब यह निश्चय कैसे किया जा सकता है कि जो ऐसे वीतराग सर्वज्ञ अरहंतदेव हैं वे ही स्तुत्य हैं, क्योंकि सराग पुरुषोंको भी वीतराग पुरुषोंकी तरह चेष्टा होती है, उनका निवारण नहीं किया जा सकता। तब किसी एकके विषयमें कहना कि वह आप्त तुम ही हो, यह निर्णय कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? ऐसा कथन करने वाले क्षणिकवादियोंके प्रति समाधान किया जाता है कि ... ! शंका तो कर दी गई, लेकिन उनके यहाँ भी यही बात घटित कर देनेके कारण फिर उनके अभिमत प्रभुके लिए कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? फिर किस बातपर यह विशेष मान्यता दी जा सकती है कि उनका ही गुरु गुरु है, क्योंकि विचित्र अभिप्राय होनेके कारण व्यापार और वचनालाप आदिककी संकरता जब बताई जा रही है तो फिर किसीमें भी अतिशयका निर्णय नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वीतरागकी तरह सराग पुरुष भी चेष्टा करने वाले होते हैं, मायावी पुरुष भी होते हैं। अपनेको देव और महान गुरु सिद्ध करनेकी मायावियोंकी अभिलाषायें भी रहती हैं। तो उनके भी नाना प्रकारके परिणाम होनेसे गमन वचन आदिक में संकरता होनेके कारण किसी भी पुरुषमें महत्ताका निश्चय नहीं किया जा सकता, फिर यह कहना कि सुगत ही गुरु है आदिक रूपसे दूसरोंका प्रतिषेध करके अपने अभिमतके लिए गुरुत्व सिद्ध करनेकी बात कैसे घटित हो सकती है ? जब एक नीति बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दी है कि वीतरागकी तरह सराग भी चेष्टा करता है तो कैसे यह निश्चय किया जाय कि यह ही प्रभु है ? अब तो ज्ञानवान पुरुषोंके भी विसम्वाद डाल दिया गया, फिर कहां हम विश्वासको प्राप्त करें कि यह ही गुरु हैं। देखिये—ज्ञानवान वीतराग पुरुषके विसम्वाद कहीं भी किसी भी विषयमें सम्भव नहीं होता। यदि ज्ञानवान वीतराग पुरुषसे विसम्वादकी सम्भावनाकी जाने लगे तो सुगत आदिक अपने-अपने अभिमत गुरुजनोंमें भी अविश्वासका प्रसंग आ जायगा। और, फिर अपने-अपने अभिमत गुरुवों को अन्य अन्य गुरुवोंसे एक विशेषरूपसे माननेकी अनर्थकता हो जायगी। सिद्ध ही नहीं कर सकते हैं। इससे विवेक करना होगा व्यापार और वचनालाप और आकार विशेषोंका ज्ञानवान पुरुषोंमें सांकर्य सिद्ध नहीं होता। क्योंकि उनमें विचित्र अभिप्राय की उत्पत्ति नहीं है। विचित्र अभिप्राय होना है तो रागादिमान अज्ञानी जनोंके प्रसिद्ध है, निर्दोष भगवानमें विचित्र अभिप्रायकी निवृत्ति है। तब इस ज्ञानवान आप्त सर्वज्ञदेव के यथार्थ प्रतिपादन करनेका अभिप्राय है अथवा यथार्थ प्रतिपादन है इस बातका निश्चय हो जाता है। तब यह निर्णय करना होगा कि यह चेष्टा विशुद्ध है, यह चेष्टा खोटे अभिप्रायसे है। ऐसा विवेक लिए बिना तो कुछ भी सत्य सिद्ध नहीं कर सकते।

शरीरित्व हेतु विचित्राभिप्रायताका निर्णय करनेमें शंकाकारके मत में स्वयंमें विडम्बना—यहाँ क्षणिकवादी विचित्र अभिप्रायपनेका हेतु बताकर सर्वज्ञ से भी व्यापार वचन आदिककी सरागियोंके साथ संकरता, सदृशता दिखाकर अरहंत में सर्वज्ञताके अनिश्चयकी बात कह रहे हैं। तो वे यही बतायें कि किस हेतुसे वे सभी पुरुषोंमें चाहे वे सर्वज्ञ हों अथवा असर्वज्ञ हो, विचित्र अभिप्रायपनेको किस तरह निश्चित करते हैं जो कि अदृश्य है और व्यापारादिककी संकरताका हेतु बनता हो। इस प्रकारका विचित्र अभिप्राय सबमें किस प्रकार निश्चय करोगे ? यदि कहो कि शरीरित्व हेतुसे हम सबके विचित्र अभिप्रायका निर्णय कर लेंगे ऐसा अनुमान प्रयोग बनाकर कि सर्वज्ञ वीतरागमें विचित्र अभिप्राय है शरीरी होनेसे हम लोगोंकी तरह। जैसे कि हम लोग शरीरी हैं, तो हम लोगोंमें विचित्र अभिप्राय पाये जा रहे हैं, सर्वज्ञ भी शरीर है सकल परमात्मा तो शरीर सहित माना ही गया है। अतएव उनमें विचित्र अभिप्रायकी सिद्धि हो जाती है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो शरीरी है इस ही हेतुसे सुगतमें भी असर्वज्ञताका निश्चय हो जाय। वह भी शरीरी है अतएव वह भी विचित्र अभिप्राय वाला हुआ। तो जैसे कोई मायावी पुरुष अपना विचित्र अभिप्राय रख सकता है इसी प्रकारके विचित्र अभिप्रायकी वहाँ भी सिद्धि मान लीजिए।

स्वेष्ट गुरुमें आपत्तिनिवारणार्थ शरीरित्व हेतुको संदिग्धविपक्ष व्यावृत्तिक कहनेपर इसी कारण विचित्राभिप्रायताके भी अनिश्चयकी सिद्धि—अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि सुगतमें तो शरीरित्व हेतुका संदिग्ध विपक्ष व्या-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वृत्तिपना है अर्थात् शरीरित्व हेतु सुगतमें है और उससे असर्वज्ञताका ही निश्चय हो, यह बात नहीं बनती, क्योंकि शरीरी भी रहे सुगत और सर्वज्ञ भी रहा आवे, कुछ विरोध नहीं। सो सुगतमें तो इस हेतुकी विपक्ष व्यावृत्ति निश्चित नहीं है, संदिग्ध है इस कारण सुगतमें असर्वज्ञत्वका निश्चय नहीं बनता। कारण यह है कि ज्ञान खूब प्रकर्ष अवस्थाको प्राप्त हो जाय फिर भी सुगतमें शरीरादिकका अप्रकर्ष नहीं देखा जाता है। ज्ञान खूब बढ़ गया और शरीर मिट गया ऐसी बात नहीं देखी जाती, इस कारण सुगतमें यह बात नहीं कह सकते कि वह शरीरी होनेके कारण असर्वज्ञ है। इस शंका के समाधानमें कहते हैं कि बस फिर इस ही कारण तो सर्वज्ञमें विचित्र अभिप्रायपनेका भी निश्चय मत हो याने जैसे शरीरित्व हेतुको सुगतमें संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक बताया है तो यही बात तो पुरुषत्व हेतुमें भी घटेगी अर्थात् पुरुष होनेके कारण उन्हें विचित्र अभिप्राय वाला बताया जारहा था, लेकिन पुरुष विशेषत्व भी रहे और विचित्र अभिप्राय वाला न रहे यह भी तो सम्भव है। तो पुरुषत्व हेतुसे सर्वज्ञकी विचित्राभिसन्धिताका निर्णय न बनेगा। विचित्राशयत्व साध्यमें पुरुषत्व हेतु संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक हो गया और फिर यह विडम्बनाकी बात तो देखिये कि यह क्षणिकवादी विचित्र व्यापारादिक कार्योंको देखकर सभीमें विचित्र अभिप्रायपनेका तो निश्चय कर रहा है, पर किसी पुरुषके वचनादिक कार्योंको अतिशयताका निश्चय नहीं करके सर्वज्ञत्व निर्दोषत्व वीतरागत्व जैसे अतिशयोंका निश्चय नहीं करता है तो उसे कैसे बुद्धिमान कहा जायगा? और फिर यह भी बतायें कि किस चिन्हका आधार लेकर वे इन बातोंको सिद्ध कर सकेंगे? जैसे स्वसंतान स्वर्गमें पहुचनेकी शक्ति रखता है या सतानान्तर अन्य अन्य शरीरोंमें रहने वाले ज्ञानोंकी संतान क्षणक्षयी है, क्षण-क्षणमें नये-नये बनते हैं अथवा उनमें स्वर्ग प्राप्त करानेकी शक्ति है या अपने शरीरमें जो ज्ञानोंकी संतानें चलती हैं वे क्षणिक हैं, इस विशेषताको कैसे वे मान सकेंगे, क्योंकि विप्रकृष्ट स्वभावपना सर्वत्र है, जो प्रत्यक्षसे परे है, आखोंसे जो दिख नहीं सकता वह विप्रकृष्ट स्वभावी कहलाता है। तो स्वर्ग प्राप्त करानेकी शक्ति क्षण-क्षणमें नष्ट हो जानेकी बात ये सब विप्रकृष्ट स्वभाव हैं। इनको किस चिन्हका आधार लेकर निर्णय करेंगे? और, फिर ऐसे ज्ञानाद्वैतको कैसे मान सकेंगे? जो वेद्याकार व वेदकाकारसे रहित है याने वेद्यवेदकाकाररहित ज्ञानाद्वैतको किस चिन्हसे निरख करके मान सकेंगे? अथवा ये शंकाकार अपने यहाँ प्रमाणभूतरूप माने गए सुगतको कैसे महत्त्वरूपसे मान सकेंगे? जिसके सम्बन्धमें ऐसी स्तुति की है कि यह प्रमाणभूत हैं, जगतके हितेषी हैं, उपदेश करने वाले हैं और सुगत हैं, शोभाको प्राप्त हैं या सम्पूर्ण श्रेयको प्राप्त हैं। इस तरहसे जो क्षणिकवादियोंने सुगतके सम्बन्धमें स्तवन किया है, उनको अन्य संतोंसे अधिक, विशेष रूपमें माना है, सो किस चिन्हका आधार लेकर मान सकेंगे, क्योंकि अब तो सभी बातोंमें विप्रकर्षिता होनेसे अनिर्णय बन गया। जैसे सर्वज्ञत्व आदिकके अतिशयमें अनिर्णय होनेसे निश्चय नहीं मानते हो ऐसे ही ज्ञानाद्वैतके गुणमें भी और सुगतके गुणमें भी निर्णय न होनेसे अनिश्चय ही रहा, कहीं भी विश्वास न हो सकेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बिना लिङ्गके स्वेष्टविशेष्टि मानने वालोंके यहां अनुमानकी असिद्धि

अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि सुगतकी विशेषताका मानना अनुमानसे बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि पहिले विचित्र अभिप्राय दिखाकर कार्योंकी संकरता बताने वाले क्षणिकवादी लोग अनुमानको ही तो सिद्ध करलें कि अनुमान भी कुछ हो सकता है क्या? इस तरह संदिग्ध अभिप्राय वालोंके अनुमानकी सिद्धि नहीं हो सकती। अभी ऊपर तो एक चेतनके सम्बन्धमें बात कही, किन्तु जो चेतन नहीं है, जिसके कोई अभिप्राय नहीं है ऐसी अग्नि आदिकके भी कार्यहेतुपना स्वभावहेतुपनेका नियम नहीं बन सकता। किस प्रकार? सो सुनो! काष्ठ आदिक ईंधन सामग्रीके होनेपर कहीं अग्नि प्राप्त होती देखी गई है और कहीं काष्ठ आदिक सामग्रीके अभावमें प्रायः करके अग्नि उपलब्ध होती हुई नहीं देखी गई ऐसी भी बात हो सकी है, पर यह भी होजाता है कि काष्ठादिक सामग्री विशेष नहीं है और मणि आदिककी जो अग्नि है याने सूर्यकांत मणिमें अग्नित्व सम्भव देखा गया है तो अभी तो आप चेतनकी बातमें शंका कर रहे थे कि भाई सर्वज्ञ भी पुरुष है। तो विचित्र अभिप्राय पुरुषोंमें हुआ करता है। जैसे कि हम लोगोंमें नाना प्रकारके विचित्र अभिप्राय हो जाया करते हैं तो वहाँ भी विचित्र अभिप्राय होगा, फिर वह ही सर्वज्ञ है यह निर्णय कैसे होगा? उक्त प्रकार तो तुमने चेतनमें संदेह किया, किन्तु अब अचेतनमें भी संदेह बनने लगा कि देखो अग्नि काष्ठ आदिक सामग्रीसे उत्पन्न होती है और धूम होनेसे अग्निका अनुमान करते हैं, लेकिन अब तो वहाँ सूर्यकान्त मणिमें भी अग्नित्व पाया जा रहा और धूम है नहीं, तब अनुमान कुछ बन ही न सकेगा इस विधिमें। यदि कहो कि जिस जाति वाली जो बात जिससे होती हुई देखी गई है उस जाति वाली वह बात उस जातिसे ही होती है। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी तुम्हारा कठिन नियम है, इसमें भी अभी निर्णय होनेकी गुंजाइस नहीं है। देखिये! धुवाँ और अग्नि, इनमें जातिपनेका कहाँ निर्णय हो सकेगा? तब इसमें व्याप्य व्यापक भावका किस प्रकार निर्णय किया जा सकेगा? अथवा कोई अनुमान बनाया गया कि यह वृक्ष है आम्र होनेसे तो यह अनुमान भी न बन सकेगा। अनुमान तो किया कि यह वृक्ष है आम होनेसे, किन्तु आम नाम एक वृक्षका भी है और आम नामकी लता भी होती है। तो आम्रत्व तो लतामें भी पाया गया लेकिन वह वृक्ष तो नहीं है। तो इस तरह कहीं भी चित्त निःशंक नहीं होसकता, तो यों अहन्तमें संशय मानने वाले एकान्तवादियोंके यहाँ तो अपना ही विघात हो जाता है उनके ही कथनसे, इस कारण पुरुषत्व हेतु देकर विचित्र अभिप्रायका निर्णय बनाना सर्वज्ञमें और उनकी सर्वज्ञतामें संदेह करना, अनिश्चय करना यह हठ क्षणिकवादीके सभी सिद्धान्तोंका विघात कर देने वाली है। अतः उन्हें मानना ही चाहिए कि जब साधारण पुरुषोंसे विशेषता नजर आ रही है सर्वज्ञ पुरुषमें तब अन्य पुरुषोंकी भाँति असर्वज्ञत्व सदोषत्वकी वहाँ शंका नहीं की जा सकती है।

अतरवित्त अनुमानमें व्याप्ति बनानेका शंकाकारका प्रयास व उसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निराकरण— शंकाकार कहते हैं कि काष्ठ आदिक सामग्रीसे उत्पन्न हुई अग्नि जिस प्रकारकी देखी गई है, उस प्रकार मणि आदिक सामग्रीसे उत्पन्न हुई अग्नि नहीं देखी गई इस कारण जिस जातिकी जो जितनी देखी जाती है वह उस ही जातिके पदार्थसे हो सकती है, अन्य प्रकारके पदार्थसे नहीं हो सकती। तब फिर धूम और अग्निमें व्याप्य व्यापक भावका निर्णय कैसे न होगा। और भी देख लीजिये कि जिस प्रकारका आम्रपना वृक्षत्व व्याप्त है उस प्रकारका आम्रपना लतारूपसे व्याप्त नहीं है, सो आम्रत्वका वृक्षत्वके साथ व्याप्य व्यापक भावका नियम कैसे दुर्लभ हो जायगा? वह भी सिद्ध हो जायगा। तब यह दोष देना कि विचित्र अभिप्रायका हेतु बताकर किसी पुरुष विशेषमें सर्वज्ञत्वमें संदेह करनेकी सिद्धिमें व्यभिचार आता है, सो व्यभिचार नहीं आता। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहने वाले क्षणिकवादी प्रत्यक्षका भी अपलाप करते हैं। देखिये—काष्ठादिक सामग्रीसे जन्य होनेके कारण यद्यपि वह अग्नि कार्य काष्ठ सामग्री जन्य रूपसे प्रतीयमान हो रहा है, तो होओ, लेकिन वह कारणविशेषका उल्लंघन भी कर देता है इसमें कारण विशेष है काष्ठादिक सामग्री। उसका भी उल्लघन है। अन्य प्रकारकी अग्नि भी उस प्रकारसे पायी जाती है। तब विचित्र अभिप्रायकी बात कहकर जैसे सर्वज्ञत्वमें सन्देह डाला है इसी प्रकार प्रत्येक अनुमानमें व्याप्य व्यापक भावका अभाव घटित करलें, फिर अनुमानकी सिद्धि कैसे हो जायगी।

यत्नतः परीक्षित कार्यमें कारणसाधकता माननेपर सुव्यवस्थाकी सम्भतता—शंकाकार कहते हैं कि बड़े यत्नसे प्रयोगसे परीक्षित किए गए कार्य कारणका उल्लंघन नहीं करता है सो उस अग्निके सम्बन्धमें परीक्षा करनेके बाद तो वहाँ कार्य कारणकी व्यवस्था सही बन जाती है। इसके समाधानमें कहते हैं कि ठीक है। तुमने जो कहा उसे हो तो हम कह रहे हैं। जैसे यत्नसे परीक्षा किए गए कार्य कारणका उल्लघन नही करता इसी प्रकार यत्नसे पुरुषत्व आदिक स्वभावका निर्णय कर लेनेपर पुरुष विशेषत्वका सर्वज्ञत्वके साथ व्याप्य व्यापक भाव बन जायगा। उस का भी उल्लंघन न होगा। हाँ यत्नसे, परीक्षासे करनेकी बात जैसे सभी अनुमानोंमें बतायी जा रही है उसी प्रकार परीक्षा करनेकी बात यहां भी प्रधान है। जो व्यापार व्याहार आदिक विशेष है अल्पज्ञ रागादिमानमें जो सम्भव न हों ऐसे व्यापारादिक विशेषकी यत्नपूर्वक परीक्षा कीजिए। यत्नसे परीक्षित व्यापार व्यापार आदिक विशेष भगवानमें ज्ञानादिक उत्कृष्टताका उल्लंघन नहीं करते। परीक्षा करनेके बाद कि ऐसा अनुमान व्यापार व्यवहार अल्पज्ञ और बुद्धिमान जीवोंमें सम्भव नहीं होता। इससे सिद्ध है कि ऐसा व्यापार विशेष जहाँ पाया जाय वहाँ ज्ञानकी प्रकर्षता है। तब यों कहने वाले दार्शनिकोंके कि यत्नसे परीक्षित हुए व्याप्य व्यापकका उल्लंघन नहीं करता, यों कहने वालोंने यह बात सिद्ध कर दिया कि पुरुषविशेषत्व स्वभाव है, व्याप्य है और उससे सिद्ध किया जा रहा है सर्वज्ञता व्यापक। तो यह पुरुष विशेषत्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिसकी यत्न और युक्तिसे परीक्षा की गई है वह सर्वज्ञको सिद्ध करता है। उसका उल्लंघन नहीं करता क्योंकि जैसे अन्य अनुमानमें व्याप्य व्यापक भावको परीक्षा करके मान रहे हो इसी प्रकार इस प्रकृत अनुमानमें भी व्याप्य व्यापक भावकी परीक्षा करके मान लीजिए।

यत्नतः परीक्षित अतिशायी व्याहारसे न्यायागमाविरुद्ध भाषित्वकी सिद्धि—प्रयत्नपरीक्षित साधन साध्य साधक ही है, फिर भी यदि कोई गलती होजाय तो यह जानने वालेका अपराध है कि उसने परीक्षा भली प्रकारसे नहीं की। पर अनुमावका अपराध नहीं है। और इस तरह जो यत्नसे परीक्षित व्याप्यको व्यापक सिद्ध करने वाला मानते हैं वे हमारे अनुकूल ही आचरण कर रहे हैं। कोई अगर अत्यन्त मंद बुद्धि वाला पुरुष हो जो धूम आदिककी परीक्षा करनेमें भी समर्थ है तो उस धूम आदिकसे अग्नि आदिकके ज्ञान किए जानेमें व्यभिचार देखा जायगा। पर जो बुद्धिमें बड़ा अतिशयवान है, जो सर्वत्र परीक्षा करनेमें समर्थ हैं वे जैसे धूम आदिक, अग्नि आदिकको नहीं दूषित करते हैं उसी प्रकार जो परीक्षा करनेमें समर्थ हैं ऐसे बुद्धिमान पुरुष भी व्यापार व्यवहार आकार विशेष देखकर यह सिद्ध कर ही लेंगे कि इस जगह विज्ञानका पूर्ण प्रकर्ष है, इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है। सो आर्हत शासनमें युक्ति और शास्त्रका अविरोधी कथन है और इसके मूलप्रणेता भगवान अरहंत युक्तिशास्त्रके अविरोधसे वचने वाले हैं अतएव वे निर्दोष हैं, अतएव वही सर्वज्ञ हैं, इस प्रकारकी बात सिद्ध हो ही जाती है। "युक्तिशास्त्रके अविरोधी वचनपना होनेसे" यह हेतु इस बातको सिद्ध करता है कि अरहंत भगवानमें सर्वज्ञता है और अब कोई भी बाधक प्रमाण उसमें सम्भव नहीं है। इसी बातको स्वामी समंतभद्राचार्यने इस कारिकामें स्पष्ट किया है क्योंकि जिस कारण युक्ति शास्त्रसे अविरुद्ध वचन हैं, उस ही कारणसे यह सिद्ध है कि सर्वज्ञताकी सिद्धिमें बाधक प्रमाण असम्भव है और यों सर्वज्ञत्वबाधकप्रमाणलोका अभाव है भगवान तुम हीमें है अतएव तुम ही निर्दोष और सर्वज्ञ हो। आर्हत शासनमें अविरोध है यह कैसे सिद्ध करनेके लिये इस कारिका में यह शब्द दिया है कि "अविरोधोपदिष्टं ते प्रसिद्धेन नबाध्यते" जो आपका इष्ट है याने शासन है वह प्रमाणसे बाधित नहीं होता है।

प्रणष्टमोह निरीह सर्वज्ञ प्रभुके शासनको इष्ट शब्दसे कहनेकी उपचाररूपता—अब इस प्रसंगमें थोड़ी यह बात विचारी जाती है कि यहां जो इष्ट शब्द दिया है आपका जो इष्ट है वह बाधित नहीं है तो यहाँ इष्ट शब्द देना उपचार से है। भगवानमें इच्छा नहीं है। इच्छाके अभाव पूर्वक भगवान आगमका कथन करते हैं और इष्ट कहते हैं इच्छाके विषयभूत तत्त्वको। तो भगवानका उपदेश भव्य जीवोंके भाग्यसे और वचन योगके कारण होता है लेकिन इच्छा न होनेसे भगवानमें इष्ट शासनका उपचार किया गया है। जो पुरुष ऐसा सन्देह करे कि इच्छाके बिना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रवृत्ति तो होती ही नहीं तो उन्हें वह समझ लेना चाहिए कि कहीं कहीं पर बिना अभिप्रायके भी वचन होते हैं इसका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। प्रकरणमें यह बात कही जा रही है कि इष्ट कहते हैं इच्छाके विषयभूतको सो जिसका मोह प्रक्षीण हो गया है ऐसे भगवानमें मोह पर्यायात्मक इच्छा सम्भव ही नही है, क्योंकि इस विषयमें अनुमान प्रयोगसे ऐसा निश्चय कर लिया जाता है सर्वज्ञ भगवानके शासन प्रकाशनके लिए इच्छा नहीं होती क्योंकि वह क्षीण मोह है। उनका मोह समस्त निष्क्रान्त हो गया है। मोह उत्पन्न होनेका कारण भी नहीं रहा। जिस प्रकार कि अल्पज्ञ लोगोंके शासनको प्रकाशित करनेके लिए इच्छा उत्पन्न होती है ऐसा भी है प्रशस्त राग नहीं हो सकता। जो सर्वज्ञ है, प्रणष्ट मोह उनमें मोह अब रंच भी नहीं रहा। शासन प्रकाशननिमित्त भी सर्वज्ञके इच्छा नहीं है, प्रणष्टमोह होनेसे। यह बात अनुमानप्रयोगसे सिद्ध है। अतएव सर्वज्ञ भगवानके शासनको प्रकट करनेके अर्थ इच्छा सम्भव नहीं है। इस प्रकार वह केवल व्यतिहेकी हेतु निरभिप्राय वचनको सिद्ध करता है अर्थात् अभिप्रायके बिना भी वचन खिर सकते हैं।

निरभिप्राय वचनवृत्तिकी संभवता—यहाँ कोई शंका करता है कि सर्वज्ञ भगवान इच्छाके बिना बोल नहीं सकते वक्ता होनेसे, हम लोगोंकी तरह। जैसे कि हम लोग वक्ता हैं, वचन बोलने वाले हैं, तो हमारे वचन इच्छाके बिना तो नहीं होते। ऐसे ही सर्वज्ञ भगवानका भी वचन है। तो वह भी इच्छाके बिना नहीं हो सकता। उत्तरमें कहते कि यह नियम नहीं है कि बिना अभिप्रायके वचन निकले ही नहीं। यदि ऐसा ही माननेका हठ करेंगे बिना इच्छा अभिप्रायके वचन निकलते ही नहीं तो उसमें यह दोष है कि जो मनुष्य सो रहा है और सोते हुएमें भी वह कुछ वचन बोल रहा है तो वहाँ भी इच्छा और अभिप्रायके बिना वचन प्रवृत्ति है सो यह कैसे हो गई ? सोती हुई हालसमें व कुछ शब्द स्खलित हो रहे हैं उस समयमें वचन व्यवहार आदिकका कारणभूत इच्छा तो नहीं है। तो इच्छाके बिना भी जब कोई बड़ा प्रवर्तन हो जाता है तो यह नियम कैसे रहा कि इच्छाके बिना वचन निकल ही नहीं सकते ? प्रभु सर्वज्ञ के इच्छाके बिना वचन इस कारण चलते हैं कि पहिले लोक कल्याण भावनासे जो पुण्य उपार्जित किया था उसके उदयमें वचन योगके कारण भव्य जीवोंके पुण्यके उदय के कारण उनकी प्रवृत्ति होती है। तो वचन बोलनेकी बात कहकर रागियोंको समानता देकर सर्वज्ञपनेका निषेध करना युक्तिसंगत नहीं है।

सुषुप्तिदशामें हुए वचन प्रवर्तनका पश्चात् स्मरण न होनेसे प्रतिसंविदिताकारा इच्छाके अभावका निर्णय—सोती हुई अवस्थामें वचन व्यवहार जो निकलते हैं जहाँ कि स्खलित रूपसे शब्द आदिक बोलनेमें आते हैं ऐसे वचन व्यवहार होकर भी उसके कारणभूत इच्छा नहीं है। उस समय इच्छा क्यों सम्भव नहीं है ? यों कि इच्छा होती है प्रतिसम्विदिताकार अर्थात् प्रत्येक वचनके साथ नियतरूपसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्विदत आकार इच्छासे होता है। तभी तो लोग बड़े सम्बन्धसहित बड़े व निड़ेबंधी में वचन बोलते हैं। जैसे कोई आधा घंटा तक धारा प्रवाहसे भाषण करता है तो वहाँ प्रत्येक वचनके साथ ज्ञान चल रहा है और इच्छा भी चल रही है। तो इच्छा हुआ करती है प्रतिसम्विदिताकार। वह यदि सोई हुई अवस्थामें मान लिया जाय तब तो फिर उसका स्मरण होना चाहिए अन्य अभावकी तरह। जैसे अन्य काम करनेकी इच्छा होती है और उन इच्छाओंपूर्वक कार्य किया जाता है तो उस समयमें उसके पश्चात् उसका स्मरण भी होता है। यह कार्य किया था, ऐसे ही सोई हुई अवस्थामें यदि इच्छा प्रतिसम्विदिताकार बने उन वचनोंके साथ साथ इच्छा चल रही है तो बादमें भी स्मरण होना चाहिए लेकिन सोई हुई हालतमें कोई कुछ बड़बड़ा जाय तो जगनेपर उसका स्मरण नहीं होता। इच्छा अप्रतिसम्विदिताकार सम्भव ही नहीं होती। और तभी उस इच्छाका व कार्यका बादमें स्मरण नहीं रहता। न तब ही स्मरण है न उत्तरकालमें स्मरण है। इससे सिद्ध है कि वहाँ इच्छा नहीं है। सोई हुई हालतमें इच्छाके न होनेपर भी वचन व्यवहार होता है उससे ही सिद्ध है कि वचन व्यवहार कहीं इच्छाके बिना भी हुआ करता है।

सुषुप्तवचनवृत्तिको इच्छापूर्वक सिद्ध करनेमें दिये गए वाक्प्रवृत्तित्व हेतुकी अप्रयोजकता—शंकाकार कहते हैं कि सोई हुई अवस्थामें जो वचनादिक प्रवृत्ति होती है उसका कारण पूर्वकालमें की गई इच्छा है। जागृत अवस्थाके जो इच्छा की गई थी वह इच्छा वचनादिक प्रवृत्तिका कारणभूत है और फिर उस वचनात्मक प्रवृत्तिसे अप्रतिसम्विदिताकार इच्छा अनुमेय हो जायगी। याने वहाँ पर यद्यपि प्रत्येक वचनके साथ ज्ञानाकार नियत नहीं हुआ लेकिन इच्छा है ऐसा अनुमान से सम्भव हो जाता है। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि फिर तो वह अनुमान है क्या सो बताओ। तब यहां शंकाकार अनुमान दे रहा है कि देखिये वह अनुमान है कि विवादापन्न यह वचनादिक प्रवृत्ति, सोई हुई अवस्थामें होने वाला वचन व्यवहार इच्छापूर्वक है, क्योंकि वचनादिक प्रवृत्ति होनेसे। प्रसिद्ध इच्छापूर्वक वचनादिक प्रवृत्तिकी तरह। अब इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह हेतु अप्रयोजक है। किस प्रकार कि जागृत पुरुषके व एकचित्त वाले पुरुषके वचनादिककी प्रवृत्ति इच्छापूर्वक होती हुई जानी गई है अन्य देशमें, अन्य कालमें भी उस ही प्रकार जागृत और एकचित्त वाले पुरुषकी वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वक सिद्ध की जा सकती है न कि अन्य प्रकारके पुरुषकी। सोई हुई अवस्था वाले पुरुषके अथवा किसी अन्य जगह किसीका मन लगा हुआ है ऐसे पुरुषके जो वचनादिक प्रवृत्ति होती है उसे इच्छापूर्वक नहीं मान सकते, क्योंकि इस तरह माननेमें अतिप्रसंग आयगा। कोई मायी घटका भी धूम निकल रहा हो वह भी अग्निका गमक बन जायगा कोई यों ही अनुमान बनाने लगे कि देखिये! वचन सींग वाले होते हैं, क्योंकि गो शब्दके द्वारा वाच्य होने से। शब्दके अनेक अर्थ हैं—गाय, किरण, वचन आदिक, तो चूंकि गो शब्दके द्वारा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाच्य ये दूध देने वाले पशु हैं और वे सींग वाले देखे गए हैं यों वचन भी चूंकि गो शब्दके द्वारा वाच्य हैं अतएव वचन भी सींग वाले बन बैठे। यों अनेक प्रकारके विचित्र अति प्रसंग आ जाते हैं।

वाक्यप्रवृत्तिकी इच्छापूर्वकत्वसे व्याप्तपनेकी असिद्धि—सोई हुई अवस्था वाले पुरुषके अथवा अन्य विषयमें जिसका मन लगा हुआ है ऐसे पुरुषकी जो वचन आदिक प्रवृत्ति है वह इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्त नहीं है, अनुमानमें जो साध्य साधन बताया गया है कि सुषुप्त पुरुषके वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वक है वचनादिक प्रवृत्ति होनेसे। तो साध्य बनाया गया है इच्छापूर्वक और हेतु बताया गया है वचनादिक प्रवृत्ति होनेसे। तो साधन और साध्यकी व्याप्ति जागृत अवस्था वाले और एक चित्त वाले पुरुषमें तो लगायी जा सकती है लेकिन सोए हुए या अन्य विषयमें जिसका चित्त पड़ा हुआ है ऐसे पुरुषके वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्त नहीं है, क्योंकि ऐसे स्थलमें उस व्याप्तिकी अवगति असम्भव है। बतलाओ उस व्याप्तिको कौन जान सकेगा, स्वसंतान या परसंतान ? उस व्याप्तिकी समझ क्या यह इस ही शरीरमें उत्पन्न होने वाले ज्ञान संतानमें सम्भव है या व्याप्तिका ज्ञान दूसरेके शरीरमें उत्पन्न होने वाले ज्ञानोंकी संतानमें सम्भव है ? ज्ञानको या आत्माको नित्य तो माना नहीं क्षणिकवादियोंने, ज्ञान संतान माना है। तो जो देह सोया हुआ है उस देहका ज्ञान संतान उस व्याप्तिको जानता है या दूसरे देहमें होने वाले ज्ञानोंकी संतान इस सोये हुए की वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वक है, इस प्रकार व्याप्तिको जानता है ? स्वसंतान में व्याप्तिका ज्ञान सम्भव नहीं है अर्थात् सुषुप्तके वचनादिक प्रवृत्तिका इच्छापूर्वकपनेके साथ व्याप्ति हो ऐसा ज्ञान स्वसंतानमें सम्भव नहीं है। स्पष्ट ही है उसका कारण कि ऐसा ज्ञान अगर बना हुआ हो सोये हुएमें तो सोई हुई हालत ही क्या कहलायेगी ? सोया हुआ है या अन्य विषयमें मन लगा हुआ है। ऐसा पुरुष यह जान जाय कि यह प्रवृत्ति इच्छापूर्वक हो रही है यह बात स्पष्ट असंगत है ? यदि कहो कि पीछे जब उठता है, जगता है तब जान जाता है। तो यह बात भी असंगत है। देखिये—स्वयं नहीं सोया हुआ है याने जगा हुआ है या अन्यमें मन वाला नहीं अर्थात् एक जगह चित्त वाला होता हुआ है। ऐसे सुषुप्त और अन्यमनस्ककी प्रवृत्ति यह इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्त है ऐसा जाना जाता है, यों बोलने वाला कोई कैसे निर्वाध वचन वाला बुद्धिमानके द्वारा समझा जा सकता है ? यदि कहो कि उस समय अनुमानसे उस व्याप्तिका ज्ञान हो जायगा। सोई हुई अवस्थामें जो वचनादिक प्रवृत्ति होती है वह इच्छापूर्वक है यह सिद्ध करनेके लिए व्याप्तिका ज्ञान तो करना ही होगा कि सुषुप्त की वचन प्रवृत्तिको इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्ति है। यह जाने बिना वह अनुमान निर्दोष तो न हो सका। उस व्याप्तिके जानेकी बात यदि अनुमानसे बतावेंगे तो अनवस्था दोष होगा। उस व्याप्तिके ज्ञान करनेके लिए जो अनुमान बनाया जायगा उसमें भी व्याप्तिका ज्ञान तो करना ही होगा। व्याप्तिका ज्ञान किए बिना अनुमान तो नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनता। तब और अन्य अनुमानकी अपेक्षा बनेगी। इस तरह नवीन अनुमानकी व्याप्तिका ज्ञान करनेके लिये नवीन नवीन अनुमान बनाये जाते होंगे। बहुत दूर भी जाकर कोई अवसर नहीं मिलता कि किसी अनुमानकी व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे बन जाय। तो सुषुप्त और अन्यमनस्ककी वचन प्रवृत्तिका इच्छापूर्वकपनेके साथ व्याप्ति का ज्ञान लेना स्वसंतानमें तो बना नहीं और जैसे स्वसंतानमें उसकी व्याप्तिका ज्ञान नहीं बना उसी प्रकार संतानान्तरसे भी इस साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान नहीं बन सकता, क्योंकि अनुमानसे उस व्याप्तिका ज्ञान करनेपर अनवस्था दोष आता है।

इच्छा बिना भी वाग्वृत्तिकी सभवता होनेसे वीतराग प्रभुकी उपदेश परम्परामें अनापत्ति—अब देखिये! प्रत्यक्षसे वाग्वृत्तिका इच्छापूर्वकत्व साध्यके साथ व्याप्तिका ज्ञान हो नहीं रहा। सोई हुई हालतमें या अन्य विषयमें मन पड़ा हो ऐसी हालतमें अनुमेय इच्छा नहीं है, न उस समय इच्छा है और न पूर्वकाल वाली इच्छा है उस वचन प्रवृत्तिसे इस अनुमानकी सिद्धि ही नहीं है। यहाँपर शंकाकारने सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें बाधा देनेके लिए यह बात कही थी कि सर्वज्ञकी प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक होती है क्योंकि वक्ता होनेसे, अथवा जब यह कहा गया कि हे अरहंत तुम्हीं सर्वज्ञ हो क्योंकि तुम्हारा जो इष्ट मत है वह प्रसिद्ध प्रमाणसे किसीसे बाधा नहीं जाता। इस सम्बन्धमें इष्ट मतका उपचारसे अर्थ करना बताया था क्योंकि भगवानके इच्छा ही नहीं होती, और इष्ट कहते हैं उसे जो इच्छाका विषयभूत हो। तो उस उपचारकी सिद्धिके प्रसंगमें शंकाकारने यह आपत्ति दी थी कि भगवानमें इच्छा क्यों न होगी? वक्ता हैं इस कारण उनकी वचन प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक ही होती है। इसके समाधानमें यह दोष दिया गया था कि यदि सर्वथा यह एकान्त मान लिया जाय कि वचन प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक ही होती है तब सोये हुए मनुष्यके या अन्य विषयमें जिसका मन जा रहा है उस मनुष्यकी जो वचनवृत्ति है वह फिर न होना चाहिए क्योंकि वहाँ पर इच्छा है ही नहीं। इसपर शंकाकारने यह सिद्ध करनेका प्रयास किया था कि सुषुप्त अवस्थामें भी इच्छा अनुमेय है। इस ही सम्बन्धको लेकर विस्तारपूर्वक अभी वर्णन आयगा कि सुषुप्त पुरुषकी इच्छा अनुमेय नहीं है। तो जब इच्छा अनुमेय भी न रही सुषुप्तमें, तब जो अनुमान प्रयोग किया था शंकाकारने कि सर्वज्ञकी प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक है वक्ता होनेसे तो अब यह वक्तृत्व सुषुप्त पुरुषमें तो देखा गया लेकिन उसके अभिप्राय या इच्छा कुछ नहीं है। तो शंकाकारके द्वारा प्रयुक्त हेतुका सुषुप्त आदिकके साथ व्यभिचार होनेसे सर्वज्ञत्वमें बाधा देनेका प्रयास विफल हो गया। वक्तृत्व और इच्छा पूर्वकपना इनमें न तो स्वभाव स्वरूप नियम बनता है न कार्य स्वरूप नियम बनता है, अतएव प्रभुकी वचनवृत्ति बिना इच्छाके ही होती है। यह तो मुख्य वार्ता है और उसको इष्ट शासन कहा गया है सो उस शासनको उपचारसे इष्ट कहा गया है। सुषुप्ति में जो वचनवृत्ति देखी जाती है, वह वचन प्रवृत्ति तालू आदिक संयोग पूर्वक देखी गई है, और फिर चैतन्य और तालु आदिक संयोग बाह्य आदिक प्रयत्न इन्द्रियकी समर्थता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसको तो वाक्प्रवृत्तिमें साधकतम कहा जा सकता है, पर इच्छाको वचनवृत्ति में साधकतम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सोई हुई आदि अवस्थामें इच्छा पूर्वकपना तो है नहीं और वचनप्रवर्तन देखा जाता है।

विवक्षाको अपेक्षणीय सहकारी कारण माननेकी सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि चेतन भी हो और इन्द्रियकी समर्थता भी हो तो भी किसी किसीकी वचन प्रवृत्ति देखी ही नहीं जाती। जैसे कई योगी मौनका नियम लिए हुए हैं, अथवा उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं है सो वे चुपचाप विराजे हैं। चेतन और इन्द्रियकी समर्थता होनेपर भी वचन प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है इस कारण यह मानना चाहिए कि विवक्षा भी (बोलनेकी इच्छा भी) वचन प्रवृत्तिमें सहकारी कारण है। इसके समाधानमें कहते हैं कि भले ही सहकारी कारण विवक्षा और अन्य कुछ भी हो जाय, पर सहकारी कारण विवक्षादिकको नियत कारण नहीं माने जा सकते जिसकी अपेक्षा करनी वचन प्रवृत्तिमें आवश्यक होता है। देखो रात्रिमें चलने वाले कुत्ता, बिल्ली आदिक जानवर और जिन्होंने अपनी आँखोंमें एक विशिष्ट अञ्जन लगाया है, उनसे जिनकी आखोंका संस्कार कर दिया गया है ऐसे पुरुष आलोकके अभिधानकी अपेक्षा न रखकर रूपका दर्शन करते रहते हैं, तो जैसे कुछ देखनेमें प्रकाश सहकारी कारण है ना, सब लोग समझते हैं, अंधकारमें मनुष्योंको कुछ दिखता नहीं लेकिन आलोक सहकारी कारण तो है, पर उसे नियत अपेक्षणीय कारण नहीं कहा जा सकता याने प्रकाश न हो तो किसी भी प्रकार रूप देखा ही नहीं जा सकता, यह नियमनहीं बनाया जा सकता। रात्रिको चलने वाले कुत्ता बिल्ली आदिक जानवरोंके और जिनके चक्षु सुसंस्कृत हो गए हैं ऐसे पुरुषोंके प्रकाशकी अपेक्षा किए बिना भी रूपकी उपलब्धि पायी जाती है। इसी प्रकार जैसे कि प्रकाश आदिक सहकारी कारण नियत अपेक्षनीय नहीं हैं इसी प्रकार वचन प्रवृत्तिमें भी विवक्षा सहकारी कारण नियत नहीं है।

ज्ञान और इन्द्रियसामर्थ्यके अभावमें विवक्षा होनेपर भी वचनवृत्ति न देखी जानेसे यहां मनुष्योंमें ज्ञान और कारणपाटवकी वाक्वृत्तिहेतुता—देखिये! विवक्षाके अभावमें भी वचन प्रवृत्ति देखी गई तो वहाँ कोई यों नहीं कह सकता कि जैसे विवक्षाके बिना वचन प्रवृत्ति देखी गई तो विवक्षाको वचनमें कारण न माने तो ज्ञान और इन्द्रियकी सामर्थ्यका अभाव होनेपर विवक्षा मात्रसे किसीकी वचन प्रवृत्ति हो जाय ऐसा प्रसंग नहीं किया जा सकता है कारण यह है कि ज्ञान और इंद्रिय की सामर्थ्य न होनेपर कितना ही बोलनेकी इच्छा कोई करे किन्तु वचनप्रवृत्ति उन्हें नहीं हो पाती। शब्दसे और अर्थसे जिसने शासनका परिज्ञान नहीं किया और दूसरेके शास्त्र व्याख्यानको निरखकर ऐसा ही व्याख्यान करनेकी इच्छा भी करे कोई तिसपर भी क्या वह बोल सकता है? उसके वचन प्रवृत्ति नहीं देखी जाती इस कारण विवक्षा को वचन प्रवृत्तिका हेतु नहीं कहा जा सकता। और, भी देख लो! इन्द्रियकी सामर्थ्य न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेपर स्पष्ट शब्दका उच्चारण नहीं देखा जाता। जैसे जो लोग बहुत तोतला बोलते हैं वे क्या यह चाहते हैं कि मैं ऐसा तोतला ही बोलूँ, लेकिन उनकी जिह्वा आदिकमें कोई दोष है, इन्द्रियकी निर्दोषता नहीं है इसलिए स्पष्ट शब्दका उच्चारण नहीं कर पाते। तब यही सिद्ध हुआ ना कि विवक्षा वचनप्रवृत्तिका नियत कारण नहीं है, अन्यथा बच्चे गूंगे आदिकमें भी वचन प्रवृत्ति हो जाना चाहिए, वे भी बोलनेकी इच्छा रखते हैं लेकिन बोल नहीं पाते। इससे यह निर्णय समझना कि चेतन और इन्द्रियकी पटुता वचन प्रवृत्तिमें कारण है नियमसे पर विवक्षा, इच्छा वचन प्रवृत्तिमें नियमित कारण नहीं है। विवक्षाके बिना भी सोई हुई हालतमें वचन प्रवृत्ति देखी जाती है।

दोषजातिमें भी वचनहेतुत्वकी असिद्धि—यहाँ शंकाकार कहता है कि वचनप्रवृत्तिका कारण तो रागद्वेषका होना है जितने भी पुरुष वचन बोलते हुए देखे जाते हैं प्रायः रागवश या द्वेषवश बोला करते हैं। दोषोंका समूह वचनप्रवृत्तिका कारण है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि दोषसमूह भी वचनप्रवृत्तिका कारण नहीं है और इसी कारण यह दोष नहीं दिया जा सकता कि सर्वज्ञकी वाणी भी देश जातिका उल्लंघन नहीं करती अर्थात् वाणी होनेके कारण प्रभुमें भी इच्छा रागद्वेषादिक दोष होते हैं, यह बात नहीं कही जा सकती क्योंकि दोष जातिसे प्रकर्षके साथ वाक्प्रवृत्तिके प्रकर्षका सम्बन्ध नहीं है और दोष जातिके अप्रकर्षके साथ याने हीनता होनेके साथ वाणीमें हीनताका नियम, सम्बन्ध, व्याप्ति नहीं पायी जाती बुद्धि आदिककी तरह। जैसे कि बुद्धि और शक्तिकी उत्कृष्टता होनेपर वाणीमें उत्कृष्टता देखी जाती है और बुद्धि तथा शक्तिकी हीनता होनेपर वाणीमें भी निकृष्टता देखी जाती है। इस तरहसे दोष जातिके साथ वाणीमें प्रकर्ष और अप्रकर्षका सम्बन्ध नहीं है। बल्कि दोष जाति जिसमें प्रकर्ष रूपमें पायी जाती है उस पुरुषमें वचनका उपकर्ष देखा जाता है। उस की वाणी तुच्छ सदोष और निम्न प्रकारकी निकलती है तथा जब दोष समूहका अप्रकर्ष देखा जाता है, जिसमें रागद्वेष उद्वेलन नहीं है, हीन हैं, अथवा रहे ही नहीं, वहाँपर वाणीका प्रकर्ष देखा जाता है। तब दोष जातिसे वक्ताकी वाणीका नियम बनाया जाय, उसको ही हेतु कहा जाय सो बात सिद्ध नहीं होती। समग्र वक्ताओंमें दोष जातिका अनुमान किया जाय कि चूंकि यह बोलता है इसलिए इसमें रागद्वेष अवश्य है यह अनुमान नहीं किया जा सकता। यहीं हो देख लो, किसी किसी पुरुषके तो रागादिक दोष होनेपर भी यदि बुद्धि यथार्थ पदार्थका निश्चय कराने वाली है तो उसमें इस गुणके कारण वाणी सही निकलती है। यहाँ रागादिक दोषोंसे प्रयोजन साधारणरूपसे है और कोई कोई पुरुष ऐसे भी देखे गए हैं कि जो रागद्वेष नहीं करना चाहते लेकिन ज्ञानावरणका क्षयोपशम नहीं है विशेष बुद्धि यथार्थ पदार्थका निर्णय करने वाली बुद्धि नहीं है। तो देखो अयथार्थका निश्चय करनेका दोष वहाँ पाया जा रहा है। वहाँ असत्य वचन भी देखा जा सकता है। जिसको जिस विषयमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ मालूमात नहीं है, वह रागद्वेष न करके भी उस सम्बन्धमें यथार्थ नहीं बोल सकता है।

ज्ञानके प्रकर्षमें वाणीकी प्रकर्षताका समर्थन—उक्त कथनोंसे यही निर्णय करना कि ज्ञानके गुणसे वचनप्रवृत्तिमें गुण होता है और ज्ञानके दोषसे वचनप्रवृत्तिमें दोष आता है। विपक्षसे या रागद्वेषके होनेसे वचनमें गुण दोष नहीं माने गए हैं। ऐसा तो अनेक दार्शनिकोंने कहा भी है कि ज्ञानके गुणसे वचनप्रवृत्तिमें गुण होता है और ज्ञानके दोषसे वचनवृत्तिमें दोष होता है, तभी तो मंदबुद्धि पुरुष चाहते हुए भी कि मैं अमुक शासनके सम्बन्धमें व्याख्यान करूं और फिर भी वे बोल नहीं पाते हैं। तो इन बातोंसे यह सब सिद्ध हुआ कि वचनप्रवृत्तिका कारण इच्छा नहीं है और यों प्रभु अरहंत बिना इच्छाके ही तत्वोपदेश करते हैं उनकी दिव्य ध्वनि खिरती है और उससे फिर शासनकी परम्परा चलती है। गणधर देव उस दिव्य ध्वनिको द्वादशाङ्गके रूपमें गूथते हैं और उससे आचार्य शिक्षा ले लेकर शासनकी परम्परा चलाते हैं। तो प्रभु-प्रणीत जो शासन है वह शासन इष्ट शासन कहा गया है, सो इष्टपनेकी बात उपचारसे कही गई है अथवा वहाँ इष्टका अर्थ यह लगा लें कि सब प्राणियोंके लिए हितकारी और वस्तुतत्त्वके अनुरूप वाणीमें शासनमें प्रमाणसे बाधा नहीं आती।

अनेकान्तशासनकी प्रसिद्ध प्रमाणसे अबाधितता—अब "प्रसिद्धेन न बाध्यते" इस कारिकाके अंशका अर्थ करते हैं। भगवानका जो इष्ट शासन है वह प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधित नहीं होता है। प्रसिद्धका अर्थ है प्रमाणसे जो सिद्ध हो उसे प्रसिद्ध कहते हैं। किसी भी पदार्थमें बाधा दे सकने वाला वही हो सकता है जो प्रमाणसे सिद्ध हो। सो यह विशेषण परमतकी अपेक्षा कहा गया है। एकान्तवादी दार्शनिकोंकी जो बात प्रमाणसे असिद्ध है उससे भी बाधा नहीं आती। वस्तुतः एकान्तवादी दार्शनिकोंका वक्तव्य अप्रसिद्ध है। अप्रसिद्ध होकर भी उससे बाधा नहीं आती है। जो प्रमाणसे सिद्ध है उससे भी बाधा नहीं आती और जो परिकल्पित प्रमाण हैं, मन्तव्य हैं, एकान्तवादक धर्म हैं, उनसे भी बाधा नहीं आती। जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने माना कि वस्तुमें केवल अनित्यत्व ही धर्म है। तो उनके इस अभिमत अनित्यत्व आदिक एकान्त धर्मके द्वारा भी बाधा नहीं आती। जैसे कि सर्वथा नित्यत्व धर्मके द्वारा भी बाधा नहीं आती। जैसे कि सर्वथा नित्यत्व धर्मके द्वारा अनेकान्त शासनका बाधक नहीं है। उसपर भी विशेषतामें विचार कर लीजिये! अनेकान्त शासनका कोई अनित्यत्वादि धर्मबाधक प्रत्यक्षसे नहीं है याने कोई कहे कि अनेकान्त शासनका बाधक अनित्यत्व धर्म है। तो वह प्रत्यक्षसे सिद्ध ही नहीं है सर्वथा नित्यत्व आदिक धर्मकी तरह। जैसे नित्यत्व एकान्त अनेकान्त शासनका बाधक नहीं है इसी प्रकार अनित्यत्व एकान्त भी अनेकान्त शासनका बाधक नहीं है। यह बात प्रत्यक्षसे भी समझ ली जाती है। हम अनेक पदार्थोंको स्थूल पदार्थोंको देखते हैं कि उनमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्यत्व भी है और अनित्यत्व भी है। पर्यायरूपसे बदलते रहते हुए भी उनका सत्त्व बराबर प्रसिद्ध है।

क्षणिकवादमें तर्क प्रमाण न माना जानेसे व्याप्तिकी असिद्धताके कारण अनुमान प्रमाणसे भी अनेकान्तशासनकी अबाधता—शंकाकार कहता है कि अनेकान्त शासनका बाधक अनित्यत्व धर्म अनुमानसे सिद्ध हो जायगा। उत्तरमें कहते कि जब तर्क नामका प्रमाण ही नहीं माना शंकाकारने तो उसकी व्याप्ति ही सिद्ध नहीं हो सकती फिर अनुमान भी सिद्ध न होगा तो असिद्ध अनुमान किसीका बाधक कैसे हो सकता है ? यदि यह कहो कि तर्क नामके प्रमाणके बिना भी प्रत्यक्ष से ही व्याप्तिकी सिद्धि हो जायगी सो बात नहीं है। क्षणिकवादियोंका प्रत्यक्ष अग्नि और धूममें अथवा क्षणिकत्व और सत्त्वमें याने साध्य साधनमें सर्वरूपसे व्याप्ति जानने के लिए समर्थ नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो मुख्यतया क्षणिकवादियोंने माना है निर्विकल्प। सो जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह विचारक नहीं हो सकता, क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह विचारक नहीं हो सकता, क्योंकि क्षणिकवादियोंका परिकल्पित प्रत्यक्ष याने दर्शन निर्विकल्प ही तो है। वह विकल्प विचार तर्कणायें नहीं कर सकता है। और, जो विचारक नहीं है वह व्याप्तिका कैसे ग्रहण करेगा ? साथ ही साथ निर्विकल्प प्रत्यक्ष सन्निहित विषय वाला है क्योंकि वह विप्रकर्षी पदार्थका तो ग्रहण करता नहीं। जो सम्मुख हो, इंद्रिय सन्निधानमें हो उसको ही तो प्रत्यक्ष विषय करता है। तब निर्विकल्प प्रत्यक्ष साध्य साधनके समस्त रूपोंसे व्याप्ति जाननेके लिये समर्थ नहीं है।

योगिप्रत्यक्षसे भी व्याप्तिकी असिद्धि व अनुमानकी अनर्थकता—यदि कहो कि हम लोगोंका प्रत्यक्ष यदि सन्निहित विषय वाला है तो योगियोंका प्रत्यक्ष तो सन्निहित विषय वाला नहीं है। उस योगिप्रत्यक्षसे साध्य साधनकी समस्त रूपसे व्याप्ति मानली जायगी तो उत्तरमें कहते हैं कि हम लोगोंका प्रत्यक्ष साध्य साधन की व्याप्तिका ग्रहण करने वाला मानना चाहिए और उससे फिर व्याप्तिकी समीचीनता करना चाहिए।

सो हम लोगोंका प्रत्यक्ष तो साध्य साधनकी व्याप्तिका ग्रहण करता नहीं। योगि प्रत्यक्षकी बात आप कहते हो सो उससे व्याप्ति और अनुमानकी प्रयोजकता नहीं बनती, क्योंकि योगियोंने प्रत्यक्षसे जान लिया साध्यसे साधनकी व्याप्ति तो उससे हम लोगोंके अनुमान ज्ञानमें क्या आया ? अनुमान ज्ञान करते जा रहे हैं हम लोग तो हम ही लोगोंको तो व्याप्तिका ग्रहण होना चाहिए। और दूसरी बात यह है कि योगियोंको तो सब कुछ प्रत्यक्ष है, उनको अनुमान और व्याप्ति ज्ञानका प्रयोजन ही नहीं है, तब अनुमान व्यर्थ ही हुआ। देखिये ! योगियोंके प्रत्यक्षके द्वारा एकदेशरूपसे व समस्तरूपसे जब समस्त साध्य साधन एकदम साक्षात् कर लिया गया है तब उसमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न उन्हें संशय है, न विपर्यय है, न अनध्यवसाय है। तो समारोपके दूर करनेके लिए तो अनुमानका प्रयोग होता था लेकिन अब उस समारोपको दूर करनेका वहाँ प्रसंग ही नहीं। जब योगियोंने समस्त पदार्थोंको साक्षात्कार कर लिया तो समारोप कहाँ रहा? जिसके विच्छेदके लिए अनुमानका उपयोग बनाया जाय? तो यों योगिप्रत्यक्षसे साध्य साधनकी व्याप्तिका ग्रहण मानेंगे तो अनुमान प्रयोग व्यर्थ हो जायगा और, हम लोगों का प्रत्यक्ष व्याप्तिका ग्रहण कर नहीं सकता, क्योंकि जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह तो अविचारक है और सन्निधानका ही विषय करने वाला है।

सविकल्प प्रत्यक्षसे भी व्याप्तिकी सिद्धिका अभाव—अब रही सविकल्प प्रत्यक्षकी बात सो सविकल्प प्रत्यक्ष भी निर्विकल्प प्रत्यक्षकी तरह विचारक नहीं है, क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ही सविकल्प प्रत्यक्षकी उत्पत्ति क्षणिकवादियोंके यहाँ मानी गई है। और, जिसका जैसा कारण है उस कारणके गुणोंका अन्वय उत्तर कार्योंमें भी पहुँचता है, सो सविकल्प प्रत्यक्ष भी पूर्व और उत्तर विचारसे रहित है। साथ ही साथ यह भी सविकल्प प्रत्यक्षमें सिद्ध होता है कि वहाँ वचनालापका संसर्ग भी नहीं बन सकता। क्योंकि सविकल्प ज्ञान निर्विकल्पसे ही तो उत्पन्न हुआ है। शब्द के सम्बन्धसे ही तो साध्य साधन व्याप्तिका ग्रहण करना बताया है सो शब्दका संसग भी नहीं सम्भव हो सकता। इस बातको आगेकी कारिकामें विशेषरूपसे कहेंगे और बहुत मोटे रूपसे यह भी अंदाज किया जा सकता है कि जहाँ ज्ञान आत्मा सब कुछ क्षणिक ही है तो क्षण क्षणमें नष्ट होने वाले ज्ञानोंमें पूर्व उत्तरका विचार ही कैसे चल सकता है? साथ ही सविकल्प ज्ञान भी सन्निहितका विषय करने वाला है जो देशसे विप्रकृष्ट है मेरु पर्वत द्वीप समुद्र आदिक उनको भी सविकल्प ज्ञान ग्रहण नहीं करता। जो कालसे विप्रकृष्ट हैं राम रावण आदिक अति भूतकालके पुरुष उनको भी सविकल्प ज्ञान विषय नहीं करता और स्वभावसे विप्रकृष्ट है परमाणु आदिक जो अतिसूक्ष्म हैं उनको भी सविकल्प ज्ञान विषय नहीं करता। तो जब समस्त रूपसे व्याप्तिके ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है निर्विकल्प व सविकल्प प्रत्यक्ष तब उससे अनुमान प्रमाण कैसे बनाया जा सकता है. तो अनुमान प्रमाण भी बाधक सिद्ध नहीं होता अनेकान्त शासनका।

अनुमान प्रमाणसे व्याप्तिकी सिद्धि करनेपर दोषापत्ति—शंकाकार कहता है कि अनुमान प्रमाण तो समस्त रूपसे व्याप्तिका ग्रहण करने वाला बन जायगा। अर्थात् अनेकान्त शासनका बाधक तो है अनुमान प्रमाण और अनुमान प्रमाण में जो व्याप्ति बनाना आवश्यक है उस व्याप्तिको बना देगा अनुमान प्रमाण। तो ऐसा कहनेमें उत्तर देते हैं कि इस मन्तव्यमें अनवस्था दोष आयगा क्योंकि व्याप्तिका ग्रहण करने वाला जो दूसरा अनुमान प्रमाण बनाया गया वह अनुमान प्रमाण भी तो व्याप्तिके ग्रहण पूर्वक ही अपना काम करेगा सो दूसरे अनुमानकी व्याप्तिका ग्रहण करा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के लिए तृतीय अनुमानकी अपेक्षा होगी। फिर तृतीय अनुमानमें भी व्याप्ति ज्ञान पूर्वक ही बात बनेगी। ऐसी उस व्याप्तिके ग्रहण करनेके लिये फिर अन्य अनुमानकी आवश्यकता होगी। इस कारण इसमें अनवस्था दोष आता है। कहीं भी विश्राम नहीं हो सकता। अनवस्था बनी रहेगी। यदि कहो कि उस ही अनुमानसे व्याप्तिका ग्रहण कर लिया जायगा याने जो अनुमान अनेकान्त शासनका बाधक होगा वही अनुमान अपने अनुमानमें होने वाली व्याप्तिका ग्रहण भी कर लेगा तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। जब उस अनुमानकी व्याप्तिका ग्रहण हो तब अनुमान बने। जब अनुमान बने तब व्याप्तिका ग्रहण बने। तो इस तरह जिसकी व्याप्ति प्रसिद्ध नहीं है ऐसा एकान्तवादियोंका अनुमान अनेकान्त शासनका बाधक भी नहीं हो सकता। बाधक तो क्या उनका खुद माना गया अनित्यत्व आदिक एकान्त धर्मका साधक भी नहीं हो सकता, कोई प्रमाण। तो पहिले वे अपने सिद्धान्तका ही तो साधन करलें। वह भी उनके लिये सम्भव नहीं है। फिर सर्वथा एकान्त अनेकान्त शासनके बाधक हैं यह बात किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं हुई।

तर्क प्रमाण माने बिना स्वेष्ट शासनकी सिद्धिकी अशक्यता व तर्क प्रमाणकी सिद्धि—क्षणिकवादियोंने दो प्रमाण माने हैं प्रत्यक्ष और अनुमान सो न निर्विकल्प प्रत्यक्ष अनेकान्त शासनका बाधक बन सका, न उनका अनित्यत्व धर्म अनेकान्तशासनका बाधक प्रत्यक्षसे सिद्ध हो सका न सविकल्प प्रत्यक्ष बाधक बन सका और न अनुमानसे बाधकता सिद्ध हो सकी कारण कि उनके यहाँ व्याप्तिको ग्रहण करनेका उपाय ही नहीं है। किन्तु स्याद्वादियोंके कोई दोष नहीं आता। क्योंकि स्याद्वादियोंका परोक्ष प्रमाणके अन्तर्भूत तर्क नामक प्रमाणसे साधन साध्यकी व्याप्तिका सम्बन्ध माना है। अतएव स्याद्वाद शासनमें अनुमान प्रमाणकी सिद्धि हो जाती है। तर्क नामका प्रमाण विचारक है। विचार द्वारा सर्वत्र साध्य साधनकी व्याप्तिका ग्रहण करते हैं, पर क्षणिकवादियोंके यहाँ व्याप्ति ग्रहणका उपाय न मानने से अनुमान प्रमाणकी ही सिद्धि नहीं है। तर्क ज्ञान विचारक किस प्रकार है और व्याप्तिका ग्राहक कैसे बनता है, इस सम्बन्धमें अब कहते हैं कि प्रत्यक्ष और अनुपलम्भ से जिसका ज्ञान होता है, जो मतिज्ञानके भेदरूप परोक्षभूत तर्कज्ञानका आवरण करने वाला कर्म है उसका क्षयोपशम होनेसे और वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम होनेसे जो उत्पन्न हुआ है उस तर्क ज्ञानमें यह विचारकता है कि वह निर्णय बनाता कि जितना कुछ धूम है वह सब अग्निसे उत्पन्न हुआ होता है। अथवा क्या ऐसा भी है कि कोई धूम जो अग्निसे उत्पन्न हुआ नहीं होता। ऐसा शब्दयोजनापूर्वक विचार करता है और उस ही विचारके प्रसंगमें यह निर्णय बना लेता है तर्कज्ञान कि जितना कुछ धूम है वह अग्निजन्य है। तो इस तर्क ज्ञानने तीन कालवर्ती समस्त साध्य साधनके विषयमें निर्णय बनाया है। ऐसा तर्क ज्ञान व्याप्तिका ज्ञान करानेमें समर्थ ही है। तर्कज्ञान स्वयं व्याप्तिका परिज्ञान कर लेता है। उसमें यह प्रश्न नहीं उत्पन्न हो सकता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि उस व्याप्तिका ग्रहण किसी अन्य ज्ञानसे होगा। तर्क ज्ञान ही व्याप्ति ग्रहण पूर्वक हुआ है व्याप्ति ग्रहणको लिए हुये है प्रत्यक्षकी तरह। जैसे प्रत्यक्षका जो विषय है वह अपने विषयको जानकारी करानेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता इसी प्रकार तर्कज्ञान स्वयं व्याप्तिका ग्रहण करनेका विषय रखता है अतएव वह किसी अनुमान प्रमाणकी या अन्य तर्क ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखता। इसी कारण उसमें अनवस्थाका दोष नहीं आता। तर्क ज्ञान स्वय सम्वादक है और संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन सम्वादकोंका निराकरण करने वाला है अतएव प्रमाण स्वरूप है। जैसे कि प्रत्यक्ष सम्वादक है। जो पदार्थ जैसा है वैसा जानने वाला है उसके मध्य कोई विवाद नहीं रहता है। और फिर प्रत्यक्षसे जानकर वहाँ संशय विपर्यय, अनध्यवसाय का अवसर नहीं है। इसी प्रकार तर्क ज्ञान भी सम्वादक है और तर्क ज्ञानका जो विषय है समस्त साध्य साधनकी व्याप्ति समझ जाना उसमें संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय नहीं हैं इन दोषोंका निराकरण करते हुए ही तो तर्कज्ञान प्रकट होता है अतएव तर्क नामक ज्ञान प्रमाणभूत है। जो लोग तर्क प्रमाणको नहीं मानते हैं उनके यहाँ अनुमान प्रमाण बन ही नहीं सकता, क्योंकि अनुमानमें यह निर्णय होना बहुत आवश्यक है कि साध्य और साधनका परस्परमें अविनाभाव सम्बन्ध है। इस अविनाभाव सम्बन्धको कौन बतावेगा ? प्रत्यक्ष तो अविचारक है निर्विकल्प है, उस का तो यह विषय ही नहीं और अनुमान प्रमाण व्याप्तिके ज्ञानपूर्वक होता है। जो तर्क ज्ञानको प्रमाण माने बिना अनुमान प्रमाण बन ही नहीं सकता है। तर्क और अनुमानमें संशय, विपर्यय, अनध्यवसायके निराकरण करनेका सामर्थ्य है। तर्कसे सम्बन्धका परिज्ञान माननेपर संशय विपर्यय और अनध्यवसाय ठहर नहीं सकते।

क्षणिकवादाभिमत दर्शनके अधिगमत्वकी सिद्धि—क्षणिकवादियोंके प्रति कहा जा रहा है कि प्रत्यक्षसे अनेकान्तदर्शनमें बाधा देनेकी बात अभी जाने दो, प्रथम तो क्षणिकवादी स्वाभिमत प्रत्यक्षकी ही सिद्धि करलें। क्षणिकवादियोंका अभिमत प्रत्य[illegible] सिद्ध नहीं होता। निर्विकल्प ज्ञान कोई अधिगम है क्या ? जिस ज्ञानमें कोई निर्णय नहीं, निश्चय नहीं वहाँ समारोप भी नहीं हो सकता, समारोपके निवारणकी बात तो दूर रहो, फिर है क्या कि जो अधिगम होता है वह निश्चयात्मक होता है। यहाँपर व्याप्तिका ज्ञान करना अधिगम है तो वह अविकल्पात्मक ही हो होगा। विचार करके अन्वय व्यतिरेक द्वारा प्रत्यक्ष अनुपलम्भ द्वारा सर्व साध्य साधनका परामर्श करके तर्कज्ञान उत्पन्न होता है। क्योंकि स्वव्यवसायात्मकताकी अनुत्पत्तिमें दर्शन होनेपर भी साधनान्तरकी अपेक्षा रखनेसे दर्शनकी अप्रमाणता सन्निकर्ष के समान ही है। जैसे कि सुसुप्त मनुष्यका चेतन। सुसुप्त मनुष्यके चेतनमें स्वयं प्रमाणता नहीं है, वह साधनान्तरका अपेक्षी है। इसी प्रकार दर्शन निर्विकल्प स्वव्यवसायात्मक बननेके लिए सविकल्प ज्ञानकी अपेक्षा रख रहा है, तो जो अपने ज्ञानके लिए निश्चयके लिए साधनान्तरकी अपेक्षा रखता हो वह कैसे प्रमाण हो सकता है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संशय आदिक दोषोंका विच्छेदक होसकता है। सन्निधानका अर्थ है इन्द्रिय और पदार्थों का सन्निकर्ष वह स्वयं अप्रमाण है, ऐसा स्वयं क्षणिकवादी कहते हैं। तो साधनान्तर की अपेक्षा ही तो रखी फिर दर्शनने प्रत्यक्षमें, सो जैसे इन्द्रिय अर्थका सन्निकर्ष साधनान्तरकी अपेक्षा रखता है सो सन्निकर्ष प्रमाण नहीं है। इस ही प्रकार दर्शन प्रमाणभूत नहीं है। जैसे कि सुसुप्त मनुष्यका चेतन स्वयं संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय दोषका व्यवच्छेदक न होनेसे अप्रमाण है इसी प्रकार निर्विकल्प प्रत्यक्ष दर्शन भी समारोपका व्यवच्छेदक न होनेसे अप्रमाण है। जो जो प्रतिभास साधनान्तरकी अपेक्षा रखते हैं वे स्वयं अप्रमाण हैं। सन्निकर्ष भी तो स्वयं समारोपका निराकरण करने वाला स्वयं नहीं है, क्योंकि साधनान्तरकी अपेक्षा रखता है। तो जैसे सन्निकर्ष स्वयं अप्रमाण है साधनान्तरकी अपेक्षा रखनेके कारण। उसी प्रकार क्षणिकवादमें अभिमत प्रत्यक्ष भी अप्रमाण है, क्योंकि वह भी स्वका निश्चय करनेके लिए साधनान्तरकी, सविकल्प ज्ञान की अपेक्षा रखता है।

निर्विकल्प दर्शनमें प्रमाणत्वके माने जा सकनेकी अशक्यता—अब यहां पर शंकाकार कहता है कि समारोपका जो विच्छेदक है ऐसे निश्चयात्मक सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न तो करता है निर्विकल्प ज्ञान, इस कारण निर्विकल्प दर्शन प्रमाणभूत हो जायगा अर्थात् निर्विकल्प ज्ञान स्वयं तो समारोपका विरोधी नहीं है किन्तु समारोपका निराकरण करने वाला सविकल्प ज्ञान है ना, और उस सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न करता है यह दर्शन, निर्विकल्प प्रत्यक्ष। इस कारणसे निर्विकल्प ज्ञान याने मुख्य प्रत्यक्ष (दर्शन) प्रमाणभूत हो जायगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस ही पद्धतिसे फिर सन्निकर्ष भी प्रमाणभूत हो जावो! क्षणिकवादी दर्शनको तो प्रमाणभूत मानते हैं, पर सन्निकर्षको प्रमाणभूत नहीं मानते, लेकिन प्रमाणताके लिए निश्चयपनेकी आवश्यकता होती है और उस सम्बन्धमें जैसे सन्निकर्ष असमर्थ है इसी प्रकार दर्शन भी असमर्थ है। तो यदि यह हेतु देकर कि दर्शन स्वयं निश्चयात्मक नहीं है, लेकिन निश्चयात्मक सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न करने वाला है इस कारण प्रमाणभूत है, तो यही बात सन्निकर्षमें भी लगावो! क्या? कि सन्निकर्ष स्वयं अनिश्चयात्मक है लेकिन सन्निकर्ष निश्चयात्मक ज्ञानका उत्पन्न करने वाला है। अतएव उसे प्रमाण मान लीजिए। यद्यपि सन्निकर्ष प्रमाणभूत नहीं है लेकिन शंकाकार सन्निकर्ष जैसे प्रमाण नहीं है उस तरह दर्शनको अप्रमाण नहीं मानता, प्रमाण मानता है। तब अनिष्ट प्रसंगके लिए यह उदाहरण दिया जा रहा है। यदि कहो कि सन्निकर्ष तो प्रमितिके साधकतम नहीं है। प्रमिति कहते हैं ज्ञानक्रियाको। सन्निकर्ष ज्ञानक्रियामें साधकतम नहीं है अतएव उसमें प्रमाणता नहीं आ सकती। अतः सन्निकर्षकी भांई दर्शनकी भी हर बातमें समानता लाकर अप्रमाणता लायें वह युक्त नहीं है। इस शंकाके समाधानमें यह पूछा जा रहा है कि कैसे क्षणिकवादियोंने निश्चय किया कि सन्निकर्ष साधकतम नहीं है। यदि कहो कि अचेतन होनेसे निश्चय किया गया है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सन्निकर्ष ज्ञप्तिक्रियाके प्रति साधकतम नहीं है अचेतन होनेसे घट पट आदिक पदार्थोंकी तरह। तो उसका उत्तर यह है कि इस प्रकार दर्शन भी साधकतम न रहेगा, क्योंकि देखिये! यह भी नियम नहीं है कि जो चेतन हो वह साधकतम ही हो। यदि चेतनत्वके नाते ही किसीको प्रमिति क्रियामें साधकतम घोषित कर दिया जाय तो चेतन तो वह सुसुप्त मनुष्य भी है। वह क्यों न ज्ञप्ति क्रियामें साधकतम बन बैठेगा। अतएव दर्शन स्वयं प्रमाणभूत ही नहीं है, वह समारोपका व्यवच्छेद क्या करे?

यद्भावाभावहेतुक अर्थपरिच्छिन्नताकी नीतिसे दर्शनकी प्रमाणता माननेपर सन्निकर्षमें भी प्रमाणत्वका प्रसंग—क्षणिकवादमें माना गया निर्विकल्प प्रत्यक्ष सन्निकर्षकी तरह अप्रमाण है। इस प्रकरणमें निर्विकल्प दर्शनके प्रमाणपना साबित करनेका प्रयास शंकाकार कर रहे हैं और उसी प्रयासमें कहते हैं कि जिसके होनेपर पदार्थ परिच्छिन्न हुआ, अवगत हुआ, ऐसा व्यवहार किया जाता है और जिसके अभावमें पदार्थ अपरिच्छिन्न है ऐसा व्यवहार किया जाता है वह दर्शन साधकतम है। इस शंकाका समाधान करते हैं कि तब तो सन्निकर्ष भी प्रमिति क्रियामें साधकतम बन जाय, क्योंकि सन्निकर्षके भावमें तो अर्थ परिच्छिन्न होता है ऐसा व्यवहार होता है और सन्निकर्षके अभावमें अर्थ परिच्छेदन नहीं होता तो इस प्रकारकी साधकतमता कि जिसके होनेपर अर्थ परिच्छेदन हो, जिसके न होनेपर अर्थ परिच्छेदता न हो यह बात सन्निकर्षसे भी देखी जाती है। सन्निकर्षके सद्भावमें अर्थ परिच्छेदनका होना सन्निकर्षके अभावमें अर्थपरिच्छेदनका न होना यह बात अप्रतीत नहीं है। और अर्थपरिच्छेदनकी उत्पत्तिके सिवाय अन्य और कुछ अर्थकी परिच्छिन्नता नहीं है। अतएव जैसे कि जिसके सद्भावमें अर्थपरिच्छिन्न होता है और अभावमें अर्थ परिच्छिन्न नहीं होता एेसे दर्शनको साधकतम मानते हो तो ऐसे ही सन्निकर्षको साधकतम मान लीजिए।

[illegible] प्रत्यक्षसे सविकल्प (निश्चयात्मक) ज्ञानकी उत्पत्ति होनेके कारण निर्विकल्प प्रत्यक्षमें प्रमाणता माननेपर सन्निकर्षमें भी प्रमाणत्वका प्रसंग—अब शंकाकार कहते हैं कि निर्विकल्प दृष्टि (निर्विकल्प प्रत्यक्ष) होनेपर अर्थका परिच्छेदन निश्चयात्मक अर्थ परिच्छेदनके व्यवहारका कारण बनता है और यदि निर्विकल्प दृष्टि न हो तो निश्चयात्मक जो सविकल्प प्रत्यक्ष है उस सविकल्प ज्ञानमें भी यह अर्थ परिच्छेदन करता है, यह व्यवहार नहीं बन सकता। अर्थात् किसी भी प्राणीका सर्वप्रथम प्रत्यक्षकी विधिमें निर्विकल्प दर्शन होता है उसके पश्चात् उसका सविकल्प ज्ञान होता है। तो सविकल्प ज्ञानमें जो अर्थ परिच्छेदनकी बात जानी गई उसका कारण निर्विकल्प दृष्टिमें साधकतमता मानी गई है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह भी योजना समीचीन नहीं है। अर्थपरिच्छेदनकी उत्पत्तिकी अविरुद्ध तो सन्निकर्षसे भी है। सन्निकर्षसे भी अर्थपरिच्छेदन होता है, तो सन्निकर्षको

http://www.jainkosh.org

क्यों नहीं प्रमिति क्रियामें साधकतम मान लेते। अचेतन सन्निकर्षसे चेतन अर्थनिश्चय की उत्पत्ति भी तो अविरुद्ध है, उसमें विरोध किस तरह आयगा? यदि कहो कि सन्निकर्ष तो अचेतन है इस कारणसे अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति नहीं होती। अर्थ निश्चय तो चेतन है। सो अचेतन सन्निकर्षसे चेतनस्वरूप अर्थज्ञानकी उत्पत्तिका विरोध है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो तुम्हारे यहाँ भी अचेतन इन्द्रिय आदिकसे निर्विकल्प दर्शनरूप चेतनकी उत्पत्ति भी कहना अविरुद्ध हो जायगा। जैसे कि सन्निकर्षको बताया है अचेतन और अर्थ निश्चयको कहा गया है चेतन तो अचेतन से चेतनकी उत्पत्ति नहीं होती, यह सन्निकर्षमें स्वीकार किया है। ऐसे ही यहाँ भी इन्द्रियाँ है अचेतन और निर्विकल्प दर्शन (प्रत्यक्ष ज्ञान) है चेतन, तो अचेतन इन्द्रिय से चेतन निर्विकल्प दर्शन उत्पन्न कैसे हो जायगा?

इन्द्रिय सहकारी चेतन मनोव्यापारसे दर्शनकी उत्पत्ति होनेके कारण प्रमाणत्व माननेपर सन्निकर्ष सहकारी आत्मासे अर्थनिश्चयकी उत्पत्ति होनेसे सन्निकर्षमें भी प्रमाणत्वका प्रसंग—यदि कहो कि मनोव्यापारसे जो कि चेतन है और इन्द्रिय आदिकका सहकारी है, उससे दर्शनकी उत्पत्ति मानी गई है। मायने इन्द्रियाँ तो अचेतन हैं लेकिन मनका व्यापार तो चेतन है। उस मनके व्यापारका सहयोग मिला इन्द्रियोंको तब उस विधिसे दर्शनके निर्विकल्प प्रत्यक्षकी उत्पत्ति हुई है। तो सुनो—चेतन आत्मा सन्निकर्षका सहकारी है तो सन्निकर्षके सहकारी चेतन आत्मासे अर्थनिश्चयकी उत्पत्तिका भी कैसे विरोध होगा। जैसे इन्द्रिय आदिकके सहकारी मनोव्यापारसे निर्विकल्प दर्शनकी उत्पत्ति मानकर उसे प्रमाण स्वीकार करते हो तो ऐसे ही सन्निकर्षके सहकारी चेतन आत्मासे अर्थ निर्णयकी उत्पत्ति मानकर स्वीकार कर लो। तो जैसे दर्शनमें स्वार्थव्यवसायात्मकता सिद्ध करोगे ऐसे ही सन्निकर्षमें भी स्वार्थव्यवसायात्मकताकी सिद्धि हो बैठेगी। तो प्रथम तो निर्विकल्प दर्शन ही सिद्ध नहीं हो रहा है फिर उस अप्रसिद्ध प्रत्यक्षके द्वारा अनुमानकी व्याप्ति क्या बने और फिर उसे अप्रसिद्ध प्रत्यक्ष और अनुमानसे उन क्षणिकवादियोंका वह अभिमत अनित्यत्व एकान्तकी सिद्धि कैसे हो? और फिर उन अप्रसिद्ध प्रमाणोंसे अनेकान्तशासनमें बाधा ही कैसे कल्पित की जाय? तो देखो एकान्तवादियोंका अथवा इष्ट मंतव्य भी उनके अप्रसिद्ध अप्रमाणसे सिद्ध नहीं होता अनेकान्तवादमें तो बाधा ही क्या दे सकेंगे।

स्याद्वाददर्शनमें स्वार्थाधिगमक होनेसे ज्ञानमें स्वयं प्रमाणत्व एवं तर्ककी प्रमाणता होनेसे सर्वश्रुत व्यवस्था—स्याद्वादमें अर्थनिश्चयकी उत्पत्ति अपने अपने विषयमें अपनी सामर्थ्य प्रमाणसे हो जाती है। देखिये कि यहींपर जो कि व्याप्तिके अधिगमकी चर्चा चल रही है सो समस्त रूपसे साध्य साधनका सम्बन्ध तर्क प्रमाणसे ही हो रहा है अतएव तर्क नामक प्रमाणसे जब व्याप्तिका अवगम हो गया। फिर

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुमान सिद्धिमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती है तर्क प्रमाण है। क्योंकि अपने स्वार्थका अधिगम करनेरूप फल इसमें पाया जाता है। प्रमाणका फल बताया है अपने विषय का अधिगम कर लेना। अज्ञाननिवृत्ति तो साक्षात् फल बताया है। स्वार्थका अधिगम है तर्क प्रमाणसे यह बात अभी सिद्ध कर ही दो गई और भी युक्ति सुनो ! तर्क ज्ञान प्रमाण है क्योंकि समारोप व्यवच्छेदक होनेसे। अर्थात् तर्कज्ञान प्रमाण है क्योंकि वह समारोप व्यवच्छेदक है। अथवा तर्क ज्ञान प्रमाण है सम्वादक होनेसे अनुमान आदिककी तरह। इस सब कथनसे यह सिद्ध होता है कि स्याद्वादियोंके यहाँ व्याप्ति सिद्ध है और उससे अनुमानकी सिद्धि है परन्तु एकान्तवादियोंके यहाँ व्याप्ति सिद्ध नहीं है, अतएव अनुमान भी सिद्ध नहीं होता। जब अनुमान सिद्ध नहीं होता एकान्तवादमें तो सर्वथा एकान्तवादियोंके द्वारा अनेकान्त शासनमें बाधाकी कल्पना करना अयुक्त है। इस प्रकार प्रमाण सिद्धसे भी अनेकान्त शासनमें बाधा नहीं है। और अप्रसिद्धसे भी अनेकान्त शासनमें बाधाकी कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि अप्रमाण सिद्ध वचनसे बाधा कल्पित कर दी जाय तो उन होका, अपने मतका भी नियम नही बन सकता और तब यह बात बिल्कुल ठीक ही कही गई कि इस कारिकामें जो "प्रसिद्धेन न बाध्यते" यह विशेषण दिया है वह परमतकी अपेक्षासे दिया है वस्तुतः प्रमाणसे बाधा क्या आये अप्रसिद्ध प्रकारणसे भी बाधा नहीं आती।

युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्य होनेसे निर्दोष सर्वज्ञ अरहंत प्रभुमें आप्तत्व की सिद्धि—जो आशंका आरेकामें की गई थी, उन सबका निराकरण हो जानेसे यह भी समझ लेना चाहिए कि भट्टने जो अपने सिद्धान्तमें यह कहा है कि कोई मनुष्य सर्वज्ञ है अथवा असर्वज्ञ है, इसके लिए जो साधन दिया है वह प्रतिज्ञा मात्र है, सो बात अयुक्त है। सर्वज्ञत्वकी सिद्धि भली प्रकार कर दी गई है और उससे यह सिद्ध किया गया है कि चूंकि भगवान अरहत युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध वचन कहनेवाले हैं और सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें कोई बाधक प्रमाण उपस्थित होता ही नहीं है अतएव सर्वज्ञ हैं और वीतराग हैं। जो प्रकरण यह चल रहा था कि सर्वज्ञ तो सामान्यतया सिद्ध हो गया लेकिन वह सर्वज्ञ अरहत भगवान ही हैं, यह निश्चय कैसे किया गया ? उसके उत्तरमें यह छठवीं कारिका कही गई है कि ऐसे सर्वज्ञ और वीतराग हे अरहंत आप ही हो ! क्योंकि आप निर्दोष हो ! प्रभु निर्दोष हैं यह बात सिद्ध की गई है इस हेतुसे कि हे प्रभो ! अरहंत आप ही निर्दोष हैं, क्योंकि आपका उपदेश युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध है। प्रभुका उपदेश युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध है यह बात इस हेतु से सिद्ध की गई कि आपका इष्ट शासन, आपका उपदेश किसी भी प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधित नहीं होता है, इस कारण हे अरहंत देव ! तुम ही महान हो और मोक्ष मार्गके प्रणेता हो। आपसे अतिरिक्त अन्य कोई एकान्तवादका आश्रय देने वाला कोई सर्वज्ञ नहीं है। अब बताते हैं कि अनेकान्त शासनसे विरुद्ध सर्वथा एकान्तवादियोंका माना गया शासन कैसे बाधित होता है ? अब इस विषयको आगेकी कारिकामें कहेंगे। ●

Report any errors at vikasnd@gmail.com